छोड़नेको कौन बुद्धिमान् पुरुष प्रयत्न करेगा ॥३२॥

गच्छन्तं बदरीक्षेत्राद्विहसन्ति सुरादयः । चिंतामणिकरान्तःस्थं सिंधौ मुंचत्यसाविति ॥ ३३ ॥

हे नारद ! बदरीक्षेत्रको त्यागकर अन्यतीर्थमें जानेवालेको देखकर इन्द्रादिदेवता हंसतेहैं कि यह मूढ़बुद्धि हाथमें रक्खी हुई चिंतामणिको समुद्रमें फेंकताहै ॥ ३३ ॥

बदर्य्यां नारदीयेऽस्मिन् क्षेत्रे येन न लभ्यते । मरणं मणिकर्ण्यां तु तेन प्रार्थ्यं न चेतरैः ॥३४॥

बदरीक्षेत्रमें नारदकुंडपर जिसको मरण प्राप्त न हो उसको काशी मणिकर्णिका घाटपर मरणकी प्रार्थना करनी चाहिये औरोंको नहीं ॥ ३४ ॥

सूर्य्यसोमोपरागादौ बदरीं यत्नतो व्रजेत् । अलाभे तु कुरुक्षेत्रं गच्छन्नपि न दुष्यति ॥३५॥

सूर्य्य, चन्द्रमाके ग्रहणपर बदरीवनमें प्रयत्नपूर्वक जाना चाहिये यदि वहां न जासके तो कुरुक्षेत्र जानेमें भी कुछ दोष नहीं है ॥ ३५ ॥

शिरःकपालं यत्रैतत्पपात ब्रह्मणः पुरा । तत्रैव

प्रस्तावना ।

—:o:—

रीब दो ढाई हज़ार वर्ष से भारतवर्ष के सब
वि, पौराणिक, कीर्तनकार, आदि जिस ग्रंथ का
र अपने काव्य, कथा और कीर्तन सरसता के साथ
वह ग्रन्थ महाभारत है। ऐसा यह एक ही ग्रन्थ
में हिमालयपर्वत से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी
पश्चिम ओर सिंधुनद से पूर्व ओर ब्रह्मपुत्रा, किंबहुना
तो तक, भरतखंड के पूर्व समय के छप्पन देशों में
कर आबालवृद्धों को सर्वत्र समान ही प्रिय हुआ
की कथा भारत की कथा के समान ही भारत-
प्रिय हुई है; परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि, राष्ट्रीय
मायण से भी महाभारत की योग्यता अधिक है।
गों के व्यवहार में प्रति दिन जो अनेक प्रसंग आ
जिन संकटों से उन्हें पार होना पड़ता है, अथवा
खदुःखों का उन्हें अनुभव करना पड़ता है उन सब
र्णन महाभारत में है; इतना ही क्यों—अनेक विघ्नों
होने पर मनुष्यमात्र अपना बर्ताव किस प्रकार का
से इहलोक तथा परलोक में उसका कल्याण हो,
के समय में हमारे पूर्वज किस नीति से अपना
ते आये, हमारा धर्म कौन है, नीति कौन है, और
व्यवहार में, तारतम्य से, कैसे उपयोग करना
हलोक के वैभव के साधनों से पारलौकिक सुख
ब और कैसे अधिक महत्त्व के होते हैं, उनका
म्बन्ध क्या है और उनका विरोध किस प्रकार दूर
सकता है, इत्यादि, अनेक महत्त्व के प्रश्न, सहज और

सरल भाषा में, प्रासादिक वाणी से, और [illegible] मनोरंजक [illegible]
दृश्यों के रूप में, जिससे छोटे बालक तक समझ [illegible] [illegible]
ग्रन्थ में वेदव्यास ने मार्मिक रीति से [illegible] लिये हैं। इतना
होने पर भी यह ग्रन्थ पंचतंत्र के समान काल्पनिक कहानियों
से भरा हुआ नहीं है, अथवा मनु या याज्ञवल्क्य की स्मृतियों
की तरह केवल धर्मविषयक चर्चा का, अतएव एक प्रकार से
आबालवृद्धों की साधारण समझ के बाहर का, भी नहीं रहा
है। महाभारत-ग्रन्थ इतिहास के आधार पर रचा हुआ है
किन्तु [illegible] प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसे [illegible]
दिया गया है। अब अर्वाचीन ऐतिहासिक [illegible]
यह दृढ़ सिद्धान्त हो गया है कि भीष्म, युधिष्ठिर
श्रीकृष्ण, दुर्योधन, आदि जो इस आर्ष महा[illegible]
उपनायक अथवा प्रतिनायक हैं, ये सब ऐतिहा[illegible]
द्वापरयुग समाप्त होकर कलियुग प्रारम्भ होने
उस समय, जब कि भारतवर्ष की अत्यन्त
उज्वल स्थिति आ कर उसकी उतरती कला
महापुरुषों ने आर्यावर्त-देश पवित्र किया था;
इतने उदात्त, बोधप्रद और मनोरंजक हैं कि [illegible]
में आता है कि परमेश्वर ने इस कलियुग के [illegible]
पुरुषों को जानबूझ कर इसी लिए उत्पन्न [illegible]
उनके पीछे भारतवर्ष को जो दीन दशा [illegible]
भारतवर्षीय लोग सदा धर्माचरण में प्रवृत्त [illegible]
व्यास की वाणी काव्य-दृष्टि से तो रसीली [illegible]
वाणी के कुन्दन में जो हीरे जड़े हुए हैं वे कुछ तेज में भी कम
नहीं हैं। यही कारण है कि महाभारत-ग्रन्थ और उसके नायक,
उपनायक, आदि महापुरुष आर्यभूमि के आबालवृद्ध-स्त्री-पुरुषों
को कितने ही शतकों तक बराबर प्रिय होते आये हैं। थोड़े में
कहा जाय तो महाभारत एक अत्युत्तम राष्ट्रीय ग्रन्थ है। इसे

आर्यभूमि के अति श्रेष्ठ महाकवि ने अपनी प्रासादिक वाणी से रचा है और उसके नायक भी वही हैं जो हमारे पूर्वजों में महापुरुष हैं। इन्हीं कारणों से यह राष्ट्रीय ग्रन्थ हम आर्य लोगों को स्वभाव से ही अत्यन्त प्रिय है और हमारे लिए सैकड़ों वर्षों से यही ग्रन्थ चतुर्विध पुरुषार्थ साध्य करने में अचूक मार्गदर्शक हुआ है। अन्य राष्ट्रों में भी इस प्रकार के ग्रन्थ प्राचीन काल में निर्माण हुए होंगे। परन्तु हम लोगों को महाभारत के कथानक में जो कुछ अपनत्व जान पड़ता है वह [illegible] दूसरे ग्रन्थों के कथानकों के विषय में मालूम नहीं हो सकता। पृथ्वी पर भागीरथी नदी से भी बड़ी कुछ नदियां हैं, पर जिसने आर्यभूमि में जन्म लिया है, उस मनुष्य के लिए, गंगा के समान अन्य कोई भी नदी पवित्र नहीं हो सकती। [illegible] राष्ट्रीय ग्रन्थ के सम्बन्ध में भी समझ लीजिए। [illegible] इस आर्यभूमि में आर्यधर्म के व्यतिरिक्त दूसरे अनेक [illegible] चे हैं; और उनके कारण सारे देश के लोगों के [illegible] में बहुत ही भेद उत्पन्न हो गया है। तथापि भारत [illegible] प्रान्तों में आर्यधर्मानुयायी समाज अब भी जिन धर्म-[illegible] से, जिस नीति से, अथवा जिन व्यवहार-तत्वों से [illegible] है वे तत्व, वह नीति, वह धर्म, अथवा इन सब [illegible] महाभारत ही में ग्रथित हुआ है। भारतवर्ष के [illegible] प्रान्तों की द्राविड़ी भाषा यदि छोड़ दी जाय तो अन्य [illegible] भाषा-भेद प्रायः महाभारत-ग्रन्थ-काल के बाद ही [illegible] प्रचलित हुआ होगा; यह भाषाशास्त्रज्ञों का साधारण मत है। यदि कोई कहे कि महाभारत ग्रन्थ सब आर्यभूमि में, अर्थात् आ-सेतु-हिमाचल-पर्यन्त, सब के लिए समान ही प्रमाण-भूत क्यों माना जाता है, तो इसका एक कारण है। पांडवों का काल वह है जो भरत-भूमि के भाग्योत्कर्ष का काल था। भरत-खंड के बाहर के पराक्रमी देशों के लोगों से उस समय वै-

दिक धर्मी लोगों का सम्बन्ध पड़ता था; और उस समय के सब सभ्य राष्ट्रों में भारतवर्ष को अग्रस्थान प्राप्त हुआ था। उस समय की नीति, उस समय का धर्म, उस समय का व्यवहार-शास्त्र और उसी समय के अवतारी महापुरुषों के चरित्र यदि आगे के उतरते काल में लोगों को सर्वमान्य होकर शिरसावंद्य हुए तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

अस्तु; इतिहास, तत्वज्ञान, धर्म अथवा नीति या प्राचीन शास्त्रीय परिभाषा में जैसा कहा है, कि धर्मार्थ-काममोक्ष चतुर्विध पुरुषार्थ का ज्ञान, प्राप्त करने में इस ग्रन्थ की जो योग्यता है उसका जितना वर्णन किया जाय, थोड़ा ही है। भरतभूमि में चारो ओर जो हिन्दू-समाज, या आर्य-समाज, फैला हुआ है उसका. यह ग्रन्थ, यदि जीवात्मा ही कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। हममें से अनेक प्रकार के लोग उसका अध्ययन और अध्यापन, अनेक कारणों से, अब तक करते आये हैं। कालिदास के समान कवियों ने अपनी अलौकिक कवितःशक्ति के लिए आधारभूत मान कर जो कथानक लिए हैं उनमें से कुछ कथानक इसी 'रत्ननिधि' के हैं। उत्तरी भारतवर्ष के भाटों ने राजपूताने के राजपूत वीरों की शूरता का उद्दीपन करने के लिए इसी त्रैलोक्य-चिन्तामणि का उपयोग किया है; और अर्वाचीन धर्मशास्त्रकारों ने तथा राजनीतिज्ञों ने धर्म, नीति और व्यवहार के लोकोपयोगी समर्पक प्रमाण और वचन इसी सर्वोपजीवी आकर से उद्धृत किये हैं। तत्वज्ञान की ओर देखते हैं तो उसके लिए भी यही न्याय ठीक लगता है। सारांश, इस ग्रन्थ को जो 'पाँचवाँ वेद' कहते हैं सो बिलकुल ही यथार्थ है। स्वयं व्यास ही ने इस ग्रन्थ के विषय में कहा है कि "जो इसमें है वही सारे संस्कृत साहित्य में है और जो इसमें नहीं वह संस्कृत-साहित्य में कहीं भी नहीं* "। उन-

* यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।

का यह कथन कुछ अतिशयोक्ति का नहीं है। छोटे लड़के-लड़कियों के कोमल चित्त से लेकर अनुभव-द्वारा कठिन हुए जरठों के चित्त तक, सब पर, जिस ग्रन्थ ने भारतवर्ष में आज तक बराबर ही छाप बैठा दी है उसके कर्ता का बुद्धिवैभव, प्रतिभा अथवा सामर्थ्य कितना अलौकिक होना चाहिए, सो अलग बतलाने की आवश्यकता नहीं है। बिलकुल अर्वाचीन काल में अर्थात् श्रीशिवाजी महाराज के समय में, देशोन्नति, राष्ट्रोन्नति और धर्मोन्नति करने में यही ग्रन्थ कारण हुआ; और पेशवाई में भी धर्म, व्यवहार तथा राजनीति सिखाने में हमारी ओर इसी ग्रन्थ का उपयोग करते थे। श्रीमद्भगवद्गीता, जो धर्म के विषय में सर्वमान्य हो चुकी है, वह भी तो, दर-असल में, महाभारत ही की है न? और बारहवें शतक के करीब धर्मजागृति करने में उसीका भाषांतर कारणीभूत हुआ है। इससे कहा जा सकता है कि, भारतवर्ष में उन्नत पुरुषार्थ के बीज सदैव कायम रखकर, प्रसंगानुसार उन बीजों से योग्य अंकुर उत्पन्न करने के लिए, महाभारत ही राष्ट्रीय ग्रन्थ, मूल संस्कृत भाषा में, अथवा प्राकृत भाषान्तर-द्वारा, कारण हुआ है। पहले पहल अंगरेजी में भी, अर्थात् जब तक पूर्वपरम्परा थोड़ी बहुत बनी हुई थी तब तक, इसी ग्रन्थ की कथाएं, बखरी (तवारीखी पोथे) के रूप में लड़कों को पढ़ाई जाती थीं। पर वह चाल अब बन्द होने लगी है। मोड़ी अक्षरों की ही तरफ जब दुर्लक्ष है तब उन्हें सिखाने के लिए पांडवों की तवारीख ही कौन लिखने बैठा है? इसका यह परिणाम हो रहा है कि, जो साधारण बातें, अथवा नीति या धर्म के तत्व, स्वराज्य के समय में छोटे लड़कों को अनायास मालूम हो जाते थे, वे तत्व या वे बातें, अब विद्यार्थी के कालेज में जाने पर, उसकी संस्कृत पढ़ने की किताब में, जब कहीं उन बातों या तत्वों का उल्लेख आता है तब कहीं, इसके अनुषंग से, वह गुरु से पूछता है कि ये तत्व और बातें मूल की कहां की हैं,

अथवा स्वयं कोश में ढूँढ़ कर उसे वे याद करनी पड़ती हैं! इधर भारतवर्ष देश को एक-राष्ट्रीयता प्राप्त होने के लिये लोग, आज कल, जितने साधन हो सकते हैं उतने, ढूँढ़ निकालने में जुटे हैं; पर अत्यन्त खेद की बात है कि, आज सैकड़ों वर्ष से हिन्दू-समाज को एकत्र बांधने में जिस राष्ट्रीय ग्रन्थ का अत्युत्तम उपयोग हुआ है उसकी, हमारी नवीन पीढ़ी की ओर से, ऐसी अवहेलना हो रही है! इधर कुछ दिनों से, इस ग्रन्थ के अनुवाद, या संक्षेप गद्यपद्यरूप, इस हेतु से प्रसिद्ध होने लगे हैं कि जिससे उपर्युक्त शोचनीय स्थिति कुछ न कुछ दूर हो; अपने पूर्वजों का वैभव, शूरता, उदात्त विचार और महत्व, नवीन पीढ़ी के मन में, योग्य समय पर, भर जायँ और महाभारत के समान राष्ट्रीय ग्रन्थ के विषय में उनके मन में आदर उत्पन्न हो; तथा उसके द्वारा वे अपना आचरण सुधार कर देश-हित साधने के लिए दक्ष हों। पुण्यतीर्थ काशी में थिओसफिस्टों ने जो सेन्ट्रल हिन्दू-कॉलेज स्थापित किया है उसके विद्यार्थियों के लिए विदुषी ऐनी बेसंट ने इसी प्रकार की एक पुस्तक अँगरेजी में तैयार की है। तात्पर्य, बहुत विद्वान् और देश-हितैषी लोगों का अब इस ओर ध्यान लगा है कि, स्वराज्य के समय छोटे बच्चों को जिस प्रकार मोड़ी अक्षर बतलाते हुए, या अन्य तरह से, अर्थात् कथा-पुराण आदि सुनाकर, इस ग्रन्थ की पहचान सहज में करा दी जाती थी उसी प्रकार इस समय भी-अर्थात् जब कि सार्वजनिक शिक्षा के लिए-पाठशालाएं स्थापित हो चुकी हैं, ऐसे समय में भी-छोटे छोटे बालक इस ग्रन्थ से परिचित करा दिये जायँ। ऐसी दशा में श्रीयुक्त लिमये महाशय के कुछ मित्रों ने यह सूचना दी कि, मराठी पाठशालाओं के विद्यार्थियों के लिए भी एक आध ऐसी ही छोटी सी पुस्तक चाहिए। अतएव उन्होंने यह पुस्तक तैयार की है। यदि कोई कहे कि, महाभारत के समान विस्तीर्ण ग्रन्थ का सब

रहस्य हम एक ही छोटी सी पुस्तक में ला देंगे तो यह बात बिलकुल असम्भव है, इसके अतिरिक्त एक बात और है, कि मदरसों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों के लिए उपयोगी ग्रन्थ जो इस विषय में लिखे जायँ वे उनकी धारणाशक्ति के प्रमाणानुसार ही होने चाहिए। दस बारह वर्ष के बालकों को कथाएं जितनी प्रिय लगती हैं उतने वे नीतितत्व प्रिय नहीं होते जो कथाओं से निकलते हैं, या उनमें ग्रथित किये हुए हैं। वे नीतितत्व समझने के लिए और प्रिय लगने के लिए पहले बुद्धि का बहुत सा विकास होना पड़ता है। 'इसाप-नीति' की कहानियाँ पढ़ते हुए, अन्त का 'तात्पर्य' छोड़ देनेवाले लड़कों की कमी नहीं है। लड़कों का यही स्वभाव ध्यान में रख कर इस पुस्तक में सिर्फ महाभारत की मूल कहानी, अर्थात् सिर्फ कौरव-पांडवों की कथा ही, सरल और मनोरंजक भाषा में, लिखी गई है। और अब प्रस्तुत पुस्तक-कर्ता का दृढ़ विचार है कि यह पुस्तक यदि लोगों को प्रिय हुई तो, महाभारत के नीति-विषयक या धर्म-सम्बन्धी मूल आख्यानों में, अथवा उपाख्यानों में, जगह जगह जो कथाएं ग्रथित हैं वे दूसरे भाग में, इसी रीति से, रखी जायँगी। ये दोनों भाग मराठी पाठशालाओं की पांचवीं-छठी कक्षा के विद्यार्थियों को, अथवा अँगरेजी स्कूलों की पांचवीं कक्षा के विद्यार्थियों के लिए, उपयोगी हो सकते हैं। इसके बाद, अर्थात् विद्यार्थियों की बुद्धि जरा परिपक्व हो जाने पर, लिमये महाशय चाहते हैं कि, उनके लिए महाभारत के धर्म, नीति, तत्वज्ञान, राज-व्यवहार आदि के तत्व, सरल भाषा में, और प्रसंग-विशेष पर मूल संस्कृत के आधार देकर, तीसरे भाग में ग्रथित किये जायँ। इस क्रम से, इन तीनों ग्रन्थों के पढ़ने पर मराठी-छठवीं कक्षा की, अथवा अँगरेजी मैट्रिक की, परीक्षा पास होने के पहले, सब विद्यार्थी, निजभाषा के द्वारा, अनायास अपने इस राष्ट्रीय ग्रन्थ से पूर्ण परिचित हो जायँगे। इस

प्रकार, स्वधर्म से, उसके नीति-तत्वों से और व्यावहारिक शास्त्र से, हमारी तरुण पीढ़ी को परिचय करा देना, राष्ट्रीय शिक्षा के प्रधान अंगों में से एक अंग है। शिक्षा-विभाग ने आज कल देशी भाषाओं में जो पाठ्य पुस्तकें तैयार की हैं उनमें उपर्युक्त बात का बिलकुल ही ध्यान नहीं रखा गया है। हम यह नहीं कहते कि, अर्वाचीन शास्त्रों या आविष्कारों का ज्ञान महत्वपूर्ण नहीं। पर, जब इस पर ध्यान दिया जायगा कि, उक्त ज्ञान के लिए हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों से असूया न रखनी चाहिए, तब कहीं इस पुस्तक का महत्व, और उपयोग, ध्यान में आवेगा। सारांश, इस पुस्तक के लेखक और प्रकाशक की यह इच्छा है कि महाभारत की उक्त तीनों पुस्तकें तैयार होने पर, पाठ-शालाओं की पाठ्य पुस्तकों के साथ ही, उन सब का उपयोग किया जाय। यह इच्छा पूर्ण होना, सब प्रकार से, हमारे देश-बन्धुओं के आश्रय पर अवलम्बित है। इस दृष्टि से देखने पर, प्रस्तुत पुस्तक का बाह्य स्वरूप इससे अधिक मनोरंजक होना चाहिए था; पर किसी कारण से वैसा नहीं हो सका। यदि दूसरी आवृत्ति की आवश्यकता पड़ी तो उसमें यह दोष निकाल डाला जायगा। अन्त में यही कहना है कि, यह पुस्तक मूल संस्कृत ग्रन्थ पर से ही लिखी गई है और जगह जगह मूल ग्रन्थ के अध्यायों का उल्लेख किया गया है। इससे मूल कथा देखने में सुभीता होगा। अगले भाग भी इसी रीति से तैयार करने का विचार है। तथापि, पुस्तक पढ़ कर यदि किसीको कुछ सूचित करना हो तो पुस्तक-कर्ता को लिखना चाहिए। उसकी वह सूचना, धन्यवादपूर्वक, स्वीकार की जायगी और उस पर योग्य विचार किया जायगा।

पूना, आश्विन शुक्ल १०,
शाके १८२९।

बाल गंगाधर तिलक।

चार शब्द।
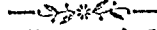
प्यारे पाठको, इस ग्रन्थ में अन्यत्र जो विस्तृत "प्रस्तावना" दी हुई है उसमें एक सर्वथा समर्थ और अधिकारी लेखनी ने बतला दिया है कि महाभारत ग्रन्थ का महत्व कितना है और उसका मुख्य रहस्य क्या है। अतएव, अब, यहां पर, इस विषय में कुछ विशेष लिखना हमारे लिए अनधिकार चर्चा होगी। तथापि यहां पर यह बतला देना आवश्यक है कि जिन लोगों के लिए यह पुस्तक प्रस्तुत की गई है उनके आगे इसका क्या महत्व है।

यह पुस्तक लिमये महाशय की मूल मराठी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। लिमये महाशय कई वर्षों से 'केसरी' के सहकारी सम्पादक हैं। आप महात्मा तिलक के अत्यन्त योग्य शिष्यों में से हैं। अतएव आप की लेखनी से जैसी उत्तम पुस्तक निकलनी चाहिए थी वैसी ही यह पुस्तक है। मराठी में इस पुस्तक का बहुत आदर हुआ है। आदर क्यों न हो--यों तो महाभारत की योग्यता ही राष्ट्रीय दृष्टि से बहुत बड़ी है, तिस पर भी एक राष्ट्रीय लेखक के द्वारा उसका रहस्य, मनोरंजक रीति से, दिखलाया गया है! अस्तु।

जिस समय हम लोगों ने इस ग्रन्थ का कार्य हाथ में लिया उसी समय मन में यह प्रश्न उठा कि, जब हिन्दी भाषा में महाभारत पर कई अच्छे अच्छे विद्वानों के द्वारा अनुवादित, और मूल लिखे हुए, छोटे-बड़े ग्रन्थ मौजूद हैं तब इस छोटी सी पुस्तक की क्या आवश्यकता है? परन्तु जब हम लोगों ने उक्त हिन्दी ग्रन्थ मँगा कर पढ़े तब हमें मालूम हुआ कि उन विद्वान् लोगों के लिखे "महाभारत" से इस "भारतीय युद्ध" में बहुत अधिक विशेषता है। हिन्दी में अभी तक जितने महाभारत-ग्रन्थ छपे हैं उनमें से किसीमें भी महाभारत की गूढ़ नीति का

आविष्करण नहीं किया गया; किन्तु सिर्फ कथानक ही का विस्तार किया गया है। परन्तु इस छोटी सी पुस्तक में यही विशेषता है कि इसमें नीति-विषय पर जोर अधिक दिया गया है; महाभारत के प्रत्येक पात्र के नैतिक चरित्र का इस पुस्तक में यथातथ्य फोटो खींच दिया गया है-और यही बात आज हमें महाभारत से सीखनी है, अन्यथा महाभारत की कथा तो सभी साधारण पढ़े लिखे लोग जानते ही हैं।

इसके सिवाय प्रकाशकों ने इसका बहिरंग भी चित्ताकर्षक बनाया है—सो पाठकगण स्वयं जान सकते हैं। चित्रों की भी इस पुस्तक में कमी नहीं है। भिन्न भिन्न प्रसंगों के विपुल चित्र इस पुस्तक में पाठकों को मिलेंगे। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहास-आविष्कारक श्रीयुत काळे महाशय का तैयार किया हुआ प्राचीन भारत का एक नकशा भी इसमें दिया जाता है। इस से महाभारत के मुख्य मुख्य घटना-स्थलों का परिचय पाठकों को हो जायगा। इन सब बातों के होते हुए भी इस पुस्तक की कीमत सिर्फ १) रु० इसी लिए रखी गई कि जिससे इस नैतिक और राष्ट्रीय ग्रन्थ का हिन्दी पढ़नेवालों में खूब प्रचार हो जाय। यदि यह आशा सफल हुई तो, महात्मा तिलक ने जैसा कि अपनी भूमिका में प्रकट किया है कि, इस ग्रन्थ के अगले दोनों भाग भी यथासमय हिन्दी-पाठकों की सेवा में उपस्थित किये जायँगे। ये दोनों भाग राष्ट्रीय दृष्टि से और भी अधिक महत्व के होंगे।

अन्त में परम पिता परमात्मा से हमारी यही प्रार्थना है कि हमारे प्रेमी पाठक इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ का अध्ययन और मनन करके इससे पूर्ण लाभ उठाने में समर्थ हों! तथास्तु!!

अनाथ-विद्यार्थि-आश्रम, पूना सिटी।
अक्षयतृतीया सं० १९७० विक्रमी।

माधवराव सप्रे
और
लक्ष्मीधर वाजपेयी।

अनुक्रमणिका।

तीसरा प्रकरण।

चौथा प्रकरण।

पांचवां प्रकरण।

छठवाँ प्रकरण।

सातवाँ प्रकरण ।

आठवाँ प्रकरण ।

नववाँ प्रकरण ।

दसवाँ प्रकरण ।

ग्यारहवाँ प्रकरण ।

बारहवाँ प्रकरण ।

चित्रों की अनुक्रमणिका।

हिन्दी-दासबोध ।

लीजिए जिस ग्रन्थ के देखने के लिए हजारों साहित्यप्रेमी उत्कण्ठित हो रहे थे वही ग्रन्थ अब छप कर तैयार हो गया ! महाराष्ट्र-केसरी छत्रपति शिवाजी महाराज के गुरु श्री-समर्थ रामदासस्वामी के नाम से सभी इतिहासप्रेमी परिचित हैं। उन्हीं के मराठी 'दासबोध' का यह हिन्दी अनुवाद है। यह कार्य प्रसिद्ध साहित्यसेवी पं० माधवराव सप्रे बी० ए० और पंडित लक्ष्मीधर वाजपेयी (भूतपूर्व सम्पादक हिन्दी-केसरी और वर्तमान सम्पादक चित्रमय-जगत्) ने मिल कर सम्पादित किया है। इस ग्रन्थ में धार्मिक, सामाजिक, राज-नैतिक इत्यादि जिस विषय का उपदेश आप चाहेंगे वही मिलेगा। सारांश यह ग्रन्थ ऐतिहासिक और राष्ट्रीय है। पुस्तक के आदि में समर्थ का अलौकिक चरित्र और ग्रन्थ की विस्तृत आलोचना भी दी गई है। दो चित्र भी दिये गये हैं। छपाई, कागज और बँधाई, इत्यादि "चित्रशाला" के नामानु-कूल है। पृष्ठ-संख्या ५५० के करीब है। मूल्य सर्वसाधारण के सुभीते के लिए सिर्फ दो रुपया रखा गया है।

मैनेजर—चित्रशाला स्टीम प्रेस, पूना सिटी।

भारतीय युद्ध।

पहला प्रकरण।
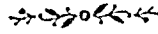
कौरवपांडवों का पूर्वजवृत्त, बाल्यावस्था और धनुर्विद्याप्राप्ति।

इक्ष्वाकु वंश में महाभिष नाम का एक बड़ा पुण्यवान् राजा हो गया। अश्वमेध और राजसूय आदि अनेक यज्ञ कर के उसने स्वर्ग प्राप्त किया था। एक समय की बात है, सब देव, ब्रह्मर्षि और राजर्षि ब्रह्मलोक को गये थे; उस समय उनके साथ राजा महाभिष भी गया था। पवित्र गंगा नदी भी वहां आई थी। जब ब्रह्माजी की सभा में सब देव आदि विराजमान् थे तब गंगा का शुभ्र वस्त्र वायु से उड़ा और एक किनारा थोड़ा सा नीचे फिसल पड़ा; इस लिए गंगाजी का उरोभाग कुछ खुल गया। यह देख कर सब देवताओं, ब्रह्मर्षिओं और राजर्षियों ने अपने अपने सिर नीचे कर लिये; जिससे गंगा को लज्जा न मालूम हो। परन्तु राजा महाभिष निःशंकता से उसकी ओर बराबर देखता रहा! उसका यह असभ्य बर्ताव देख कर ब्रह्माजी ने उसे यह शाप दिया कि, "तेरे मन में गंगा के विषय में पाप-वासना आगई है; इस कारण तू मृत्युलोक में जन्म पावेगा; तेरे साथ ही वहां गंगा भी अवतीर्ण

होगी और ऐसे कृत्य करेगी जो तुझे अप्रिय होंगे तथा जिनसे तुझे दुःख होगा!" ब्रह्माजी का यह शाप सुन कर गंगा वहां से चली गई। मार्ग में उसे अष्टवसु मिले। इन अष्टवसुओं में से द्यु नामक वसु वसिष्ट ऋषि की कामधेनु 'नन्दिनी' को एक बार चुरा लाया और बाकी सात वसु उस गौ को ले गये थे। इस पातक के लिए वसिष्टजी ने उन्हें शाप दिया था कि "तुम सब मृत्युलोक में जन्म पाओगे।" परन्तु जब वसुओं ने बहुत विनती की तब वसिष्ट ने यह उःशाप दिया कि "जन्म लेने से एक वर्ष के भीतर तुम शापमुक्त हो कर स्वर्ग को लौट आओगे; परन्तु द्यु ने चोरी का भारी पाप किया है; इस कारण इसे अवश्य मृत्युलोक में बहुत काल तक रहना होगा।" अन्त में उन सब वसुओं ने निश्चय किया कि मृत्युलोक में जब गंगा अवतार लेगी तब उसीके पेट से हम सब जन्म लेंगे। इस विषय में उन्होंने गंगा से भी यह बात तय कर ली कि, "हम मृत्युलोक में जब तेरी कुक्षि से जन्म ग्रहण करें तब तू एक वर्ष के भीतर ही हमें नदी में डुबो देना; ऐसा करने से हम मानवी शरीररूपी दुःखदायक कारागृह से छूट कर जल्दी ही मुक्त हो जायँगे और स्वर्ग को लौट आयँगे।" गंगा ने वसुओं की यह बात खुशी से मान ली — (आदिपर्व, अध्याय ९६)

इधर कुरु, दुष्यन्त, भरत, ययाति, पुरु इत्यादि पुण्यशील और महात्मा राजाओं के जन्म से पुनीत हुए कुरुवंश का प्रतीप नामक राजा गंगा-द्वार में बहुत वर्षों से तपस्या कर रहा था। एक दिन गंगा नदी अत्यन्त सुस्वरूप और तरुण स्त्री का रूप धारण कर के राजा प्रतीप के पास आई और एकदम उसके वाम अंक पर बैठ गई; और कहने लगी, "मेरा मन आपके चरणों में लग गया है; मैं कुलीन देवकन्या हूं; आप मुझे स्वीकार कीजिए।" ऐसे समय में यदि कोई दूसरा सामान्य राजा होता तो कदाचित् गंगा की बात मान भी ली

होती; परन्तु राजा प्रतीप पापभीरु, सदाचरणी और धर्मशील था, इस लिए वह गंगा का निषेध करता हुआ बोला, "पुरुष का दाहना अंक भार्या के लिए होता है और बायां अंक लड़के-लड़कियों के लिए या पुतोहुओं के लिए कहा है। तू स्वयं ही जब मेरे वाम अंक पर आ बैठी है तब तुझे, पत्नी के नाते से, मैं स्वीकार नहीं कर सकता। हां, तेरी इच्छा हो तो मैं तुझे अपनी पुत्रवधू बना लूंगा।" गंगा ने राजा प्रतीप की बात मान ली और यह बतला कर, कि प्रतीप की पुतोहू मैं किन शर्तों पर हो सकती हूं, वह अन्तर्धान हो गई। इसके बाद राजा प्रतीप अपनी रानीसहित, पुत्र-प्राप्ति के लिए तपस्या करने लगा। कुछ दिनों बाद, ब्रह्माजी के शाप से स्वर्गभ्रष्ट हुए राजा महाभिष ने उसके यहां जन्म लिया। तरुणाई की सब प्रकार की क्षुब्ध मनोवृत्तियां तप से शान्त हो जाने पर यह पुत्र हुआ; इस कारण उन्होंने उसका नाम "शान्तनु" रखा। शान्तनु जब तरुण हुआ तब गंगा-द्वार की पूर्व घटना बतला कर राजा प्रतीप बोला, "वह सुन्दर स्त्री जब तेरे पास आवे तब तू उससे "तू कौन? किसकी कन्या? कहाँ से आई?" आदि कुछ भी मत पूछना। मेरी आज्ञा से तू उसे अपनी भार्या समझ कर उसका स्वीकार कर लेना। वह चाहे जो काम कर डाले, तथापि तू यह भी न पूछना कि "यह काम क्यों कर डाला।" यदि आज कल का समय होता तो इस प्रकार की विलक्षण-शर्तों पर विवाह कर लेने की आज्ञा देने-वाले बाप का कहना वह तरुण कभी न मानता। परन्तु आज कल की तरह मनमाना बर्ताव करने का वह समय न था; किन्तु वह समय आज्ञाधारकता, स्वार्थत्याग और कर्तव्यनिष्ठा आदि सद्गुणों के अनुकूल था; इसी कारण शान्तनु ने पिता की आज्ञा, बिना किसी प्रकार का सोच विचार किये, मान ली। कुछ दिनों के बाद उसे राज्याभिषेक कर के प्रतीप अपनी भार्या-सहित फिर तपोवन को चला गया।

बाद को एक दिन जब राजा शान्तनु गंगा नदी के किनारे अकेले ही शिकार खेलता हुआ घूम रहा था तब अत्यन्त लावण्यवती, कमल के भीतरी भाग के समान शरीर-कान्ति-वाली और अति बारीक तथा चमचमदार वस्त्र परिधान किये हुए एक दिव्य स्त्री वहां आई। दोनों की चार आंखें होते ही, एक दूसरे का सौन्दर्य और तारुण्य देख कर, वे दोनों आपस में मोहित हो गये! शान्तनु ने जब उससे यह विनती की कि तू मेरी भार्या हो तब वह बोली, "मेरा कोई भी बर्ताव चाहे तुम्हें अच्छा लगे अथवा न लगे, तुम्हें मेरे किसी काम में भी विघ्न न डालना चाहिए; और अप्रिय भाषण कर के मुझे कभी दुःख न देना चाहिए। यह शर्त अगर तुम्हें कबूल हो तो मैं तुम्हारी पटरानी होने के लिए तैयार हूं। तुम जब कभी मुझसे कहोगे कि अमुक बात न करो अथवा तुम जब कभी अप्रिय भाषण मुझ से करोगे तभी तुरन्त मैं तुम्हें छोड़ कर चली जाऊँगी।" राजा शान्तनु पिता की आज्ञा और उसकी सुन्दरता से बद्ध हो गया था, इस कारण उसने गंगा की शर्त कबूल कर ली और उसे अपने साथ ले कर राजधानी को लौट आया। बाद को ज्योंही शान्तनु से गंगा के पुत्र उत्पन्न होता त्यों ही गंगा पुत्र से यह कह कर उसे पानी में डुबो देती कि "तेरे मन के अनुकूल बात मैं करती हूं!" इस प्रकार, एक के बाद एक, सात पुत्र उसने मार डाले! यह भयंकर और अमानुषी कृत्य देख कर राजा शान्तनु को अत्यन्त क्रोध और खेद होता ही था; परन्तु वह बिचारा इस डर से कभी उसे कुछ न कहता कि कहीं वह उसे छोड़ कर चली न जाय। आठवाँ लड़का होने पर जब गंगा उसे भी नदी में डुबोने लगी तब राजा शान्तनु, पुत्रप्रेम से मोहित हो कर, अपने पिता की आज्ञा और उससे की हुई प्रतिज्ञा भूल गया; और क्रोध तथा दुःख में आ कर वह गंगा से बोला, "अरी दुष्टे! तू

कहां की राक्षसी यहां आ गई है? अथवा तू कौन है, जो अपने ही लड़कों का बिना कारण प्राण लेती रहती है? अरी चांडालिन, तेरा पाप बहुत ही भयंकर दशा को पहुँच गया है!" राजा का यह क्रोधयुक्त भाषण सुन कर गंगा ने उससे यह सब हाल बतलाया कि हम दोनों कौन हैं, हमारे यहां जन्मे हुए पुत्र कौन थे और इस आठवें पुत्र 'द्यु' नामक वसु को किस शाप के कारण मृत्युलोक में जन्म लेना पड़ा। इसके बाद उसने इस आठवें पुत्र को न मारने का वचन दिया और शान्तनु को अपनी बतलाई हुई शर्तों की याद दिला कर गंगा, उस लड़के-सहित, एकदम गुप्त हो गई। इसी लड़के का नाम आगे चल कर, देवव्रत रखा गया और जो भीष्मपितामह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वसिष्ठ, जामदग्न्य, इत्यादि तपोनिष्ठ महान् ऋषियों से देवव्रत ने वेदविद्या और अस्त्रविद्या सीखी। गंगा के चले जाने पर, कई वर्षों के बाद, एक दिन राजा शान्तनु जब वन में शिकार खेलता फिरता था तब उसने क्या देखा कि गंगा नदी का प्रवाह बहुत ही छोटा हो गया है। इसका कारण जानने के लिए जब वह इधर उधर देखने लगा तो मालूम हुआ कि एक लड़के ने अपने अस्त्रसामर्थ्य से बाणों की राशि उत्पन्न कर के, उसके द्वारा नदी का प्रवाह रोक दिया है! शान्तनु ने उस लड़के को बिलकुल ही नहीं पहचाना। परन्तु, इतने ही में गंगा वहां आई और यह कह कर वह लड़का राजा को सौंप दिया कि "तुम्हारा आठवाँ पुत्र जो मुझ से पैदा हुआ था, यही है।" राजा शान्तनु उस लड़के को साथ ले कर अपने नगर को लौट आया; और कुछ काल बाद, धनुर्विद्या, अस्त्रविद्या और राजनीति-विषयक उसका ज्ञान देख कर, राजा शान्तनु ने उसे राज्याभिषेक कर के अपना युवराज बनाया-- (आदिपर्व, अ० ९७-१००)

उपरिचर नामक राजा एक वार मृगया के लिए वन को गया। वहां गिरिका नाम की अपनी तरुणी और अनुरक्ता भार्या का उसे स्मरण आया, इस कारण उसका वीर्य एक वृक्ष के पत्ते पर स्खलित हो गया। एक पक्षी यह पत्ता ले कर जब आकाशमार्ग में उड़ने लगा तब वह पत्ता यमुना नदी में गिर पड़ा। वहां अद्रिका नाम की एक अप्सरा ब्रह्माजी के शाप से मछली (मादी) हुई थी; उसके पेट में वह अमोघ वीर्य गया और वह गर्भवती हुई! वाद को एक मछवाहा उसे जाल में फाँस कर अपने घर ले आया; और उसने ज्योंही उसे चीर कर देखा त्योंही उसके पेट से एक लड़का और एक लड़की—दोनों जुड़े हुए निकले! यह चमत्कार उसने अपने राजा उपरिचर से प्रकट किया। राजा ने लड़का अपने पास रख लिया; और लड़की मछवाहे को सौंप कर, अपनी लड़की के समान उसका पालन-पोषण करने के लिए राजा ने उसे आज्ञा दी। वह लड़का आगे चल कर 'मत्स्य' नाम का प्रख्यात राजा हुआ। इधर यह लड़की (सत्यवती) यमुना नदी पर, अपने बाप की नाव चलाने का काम करने लगी। एक वार पराशर ऋषि तीर्थयात्रा करते करते उधर से आ निकले। सत्यवती का अप्रतिम लावण्य' देख कर उस तपोनिष्ट ऋषि का भी मन चञ्चल हो गया! पराशर ऋषि ने अपने तपोबल से नाव पर और आस-पास घने बादल उत्पन्न किये और यह वर देकर सत्यवती को अपने अनुकूल कर लिया कि " तेरा कौमार्य नष्ट न होगा; तेरे शरीर की दुर्गन्धि चली जायगी और तेरे शरीर में ऐसी सुवास आ जायगी जिसकी लहर आसपास एक योजन तक आती रहेगी!" (इसी वर के कारण सत्यवती आगे चल कर 'गन्धवती' और 'योजनगंधा' के नामों से प्रसिद्ध हुई।) पराशर से उसके जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसे उसने यमुना नदी के एक द्वीप (टापू) में डाल दिया; उससे उसका "द्वैपायन"

नाम पड़ा। यही आगे चल कर बहुत बड़ा ऋषि हुआ। उसने वेदों को व्यवस्थित स्वरूप दिया, इससे उसको 'वेदव्यास' भी कहते हैं। उसका रंग काला था; इस कारण उसे "कृष्ण-द्वैपायन" भी कहते हैं— (आदिपर्व, अ० ६३)

इधर देवव्रत को युवराज का पद पाये हुए तीन चार वर्ष बीत गये थे। उन्हीं दिनों, जब एक बार राजा शान्तनु यमुना नदी के तीर पर घूम रहा था तब अचानक, वायु के झोंकों के साथ, मनोमोहक उत्कृष्ट सुवास आने लगी। जब वह इस बात की खोज में था, कि यह सुगन्ध कहां से आती है, तब उसे नाव में बैठी हुई मछवाहे की लड़की (सत्यवती) देख पड़ी। उसका रूप, यौवन देखकर और उसके शरीर की अलौकिक सुगन्ध पाकर, यह चंचल मन का वृद्ध राजा उस पर अत्यन्त मोहित हो गया। और मछवाहे के पास जाकर, सत्यवती के साथ विवाह करने की अपनी इच्छा उसने प्रकट की। मछवाहे ने कहा, "इससे जो आपके पुत्र उत्पन्न होगा उसीको यदि आप राज्यसिंहासन पर बिठलाने का अभिवचन मुझे दें तो मैं प्रसन्नतापूर्वक आपको सत्यवती समर्पण करूंगा।" राजा यद्यपि सत्यवती के प्रेमपाश में फँस गया था तथापि देवव्रत को राज्य न देने का विचार उसे पसन्द नहीं आया। इस कारण मछवाहे की बात कबूल न करते हुए, अत्यन्त उद्विग्न होकर, वह राजमहल को लौट आया। देवव्रत ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक अपने पिता से उद्विग्नता का कारण पूछा। परन्तु उस समय राजा इसके सिवा और कोई सयुक्तिक उत्तर नहीं दे सका कि "देवव्रत, तेरे सिवाय मेरे और कोई दूसरा लड़का नहीं। धर्मशील पुरुषों का कथन है कि जिसके एक ही लड़का हो उसे निपुत्री ही समझना चाहिए। यह निस्सन्देह है कि तेरे समान शूर की मृत्यु युद्ध ही में होगी। इस प्रकार तेरी मृत्यु के बाद, हमारा यह भरतवंश और इतना बड़ा

राज्य कौन सम्हालेगा ? इसी बात से मेरा चित्त उद्विग्न हो रहा है ।" यद्यपि राजा ने यह बनावटी उत्तर देकर असली कारण छिपा डाला था, तथापि उसके एक वृद्ध अमात्य से उसकी खिन्नता का सच्चा कारण देवव्रत को मालूम हो गया। देवव्रत कुछ पुराने और अनुभवी मंत्रियों को साथ लेकर तुरन्त ही उस मछवाहे के घर गया; और अपने पिता की इच्छा उससे बतलाई। मछवाहे ने देवव्रत से इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की, "घर में सापत्नता होना अत्यन्त दुखदायक बात है। तेरे समान शूर और बड़ा सौतेला भाई होते हुए यह कभी नहीं सम्भव है कि राजा शान्तनु के पीछे सत्यवती के लड़कों को राज्य मिले।" यह सुनकर देवव्रत ने प्रतिज्ञापूर्वक यह वचन दिया कि सत्यवती से हमारे पिता के जो पुत्र होगा उसीको हम राजा बनावेंगे। तथापि, उस चतुर मछवाहे के मन में यह संशय आया कि सत्यवती के लिए कदाचित् देवव्रत अपना वचन पालेगा; पर क्या मालूम, इसके पुत्र इस वचन के अनुसार वर्ताव करें या न करें! यह संशय उसने देवव्रत पर प्रकट भी कर दिया। उस समय देवव्रत ने उत्तर दिया:—

राज्यं तावत्पूर्वमेव मया त्यक्तं नराधिपाः ।
अपत्यहेतोरपि च करिष्येऽद्य विनिश्चयं ।।
अद्यप्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति ।।

"राज्य-विषयक अपना अधिकार मैंने अभी से छोड़ दिया है। तुम्हें जो यह शंका आई है कि आगे मेरे पुत्र होंगे और उनके द्वारा सत्यवती के लड़कों को राज्य मिलने में विघ्न आवेगा उसका भी मैं अभी निरसन करता हूं। इसके लिए मैं तुमसे प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूं कि मैं आज से लेकर देहान्त तक ब्रह्मचर्य से रहूंगा!!" यह सुनकर मछवाहे ने राजा

शान्तनु को सत्यवती देना स्वीकार किया। देवव्रत की यह पितृभक्ति और उसका ऐसा स्वार्थत्याग देखकर आकाश से देवताओं ने पुष्पवृष्टि की! उसकी यह घोर प्रतिज्ञा, कि पितृ-सुख के लिए राज्यवैभव का और स्त्रीसौख्य का आमरण सेवन न करूंगा, सुनकर यह आकाशवाणी हुई कि 'भीष्मोऽयं' (अर्थात्, यह घोर प्रतिज्ञा करनेवाला-भीष्म-है!) इसके बाद भीष्म अपनी माता सत्यवती को रथ पर बैठालकर हस्तिनापुर ले आया और उसे अपने पिता राजा शान्तनु को अर्पण किया। पुत्र के इस बर्ताव से राजा बहुत प्रसन्न हुआ। और उसे "इच्छामरण" का वर दिया। कालान्तर में सत्यवती से शान्तनु के चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र हुए। विचित्रवीर्य छोटा ही था, जब राजा शान्तनु का देहान्त होगया। भीष्म ने चित्राङ्गद को सिंहासन पर बैठाया। चित्राङ्गद नाम के ही एक गन्धर्व के साथ, कुरुक्षेत्र के मैदान में, सरस्वती के तीर, बराबर तीन वर्ष तक, राजा चित्राङ्गद तुमुल युद्ध करता रहा। परन्तु अन्त में युद्धस्थल में ही पतन हुआ। उसके बाद भीष्म ने अल्पवयी विचित्रवीर्य को ही गद्दी पर बैठाया और उसके नाम से स्वयं राजकाज देखने लगे। कुछ काल बाद विचित्रवीर्य तरुण हुआ। उसी समय भीष्म ने सुना कि काशि-राज की अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नामक तीन राज-कन्याओं का स्वयम्वर होनेवाला है। इस लिए भीष्म स्वयं रथ साजकर वहां गये और उस काल की क्षत्रियों की रीति के अनुसार तीनों कन्याओं को बलात् उन्होंने अपने रथ में बैठा लिया और स्वयम्वर में आये हुए सब राजाओं को युद्ध के लिए ललकारा! अकेले भीष्म ने उन सब राजाओं को युद्ध में पराजित किया और राजकन्याओं को लेकर हस्तिनापुर की राह ली। मार्ग में शाल्व देश के राजा ने उनको घेर लिया।

भीष्म ने उसे भी पराभूत किया और कन्याओं को हस्तिनापुर ले आये। पहले उन्होंने उन तीनों कन्याओं का विचित्रवीर्य के साथ विवाह करने का निश्चय किया था; परन्तु बड़ी राजकन्या अम्बा शाल्व देश के राजा के साथ अपना पाणिग्रहण करना चाहती थी; स्वयम्वर में भी वह उसीको जयमाल पहनाना चाहती थी और उसके पिता की भी यही इच्छा थी। यह बात जब धर्मज्ञ भीष्म को अम्बा से मालूम हुई तब उन्होंने उसे शाल्व देश के राजा के पास जाने की आज्ञा दी और छोटी दोनों राजकन्याओं का विवाह विचित्रवीर्य के साथ कर दिया। अम्बिका और अम्बालिका नाम की दो रानियों के साथ विचित्रवीर्य केवल सात ही वर्ष राज्यसुख भोग सका। भरी जवानी में वह यक्ष्मा रोग से पीड़ित होकर परलोकवासी हुआ! (आदिपर्व, अ० १००, १०१)

इस प्रकार अपने दोनों पुत्रों के, निस्सन्तान रहकर, मृत्यु पाने के कारण सत्यवती के शोक का पारावार नहीं रहा। यह समझ कर, कि अब सारे भरतवंश और राज्य के लिए भीष्म को छोड़ कर और कोई आधार नहीं है, सत्यवती उससे बोली "मेरे दोनों लड़के, संतति न होते ही, मृत्यु पा चुके हैं; अब इस कुल की वृद्धि और राष्ट्र का हित सब प्रकार से तुम्हारे ही ऊपर अवलम्बित है। इस लिए तुम इन दो राजकन्याओं से नियोग-द्वारा पुत्रोत्पत्ति करो; अथवा अपना राज्याभिषेक कर लो और विवाह करके ऐसा प्रबन्ध करो, जिससे यह भारतवंश समूल नष्ट न हो।" इसी प्रकार अन्य नातेदारों और इष्टमित्रों ने भी भीष्म से आग्रह किया। इस प्रकार निष्कलंक रहकर राज्यसुख और पत्नीसुख भोगने की संधि भीष्म को अनायास प्राप्त होगई; तथापि अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए, मनुष्य के मन को अतिशय आकर्षित करनेवाले इन

दोनों सुखों पर उन्होंने लात फटकार दी ! सत्यवती को उन्होंने अपनी उस प्रतिज्ञा की याद दिलाई जो उन्होंने अपने मंत्रियों के सामने मछुवाहे से की थी। तथापि सत्यवती वार वार यह सोचकर रोती कि हमारी दोनों बहुएं निस्सन्तान ही रहीं और हमारे कुल तथा राज्य का अब अवश्य नाश हो जायगा। वह अपना कहना मानने के लिए भीष्म से फिर आग्रह करने लगी। परन्तु भीष्म ने अपने वचन पालने का व्रत नहीं छोड़ा। वे बोले, " सत्यवती, तू सत्य और धर्म का इस प्रकार त्याग मत कर।

सत्याच्च्युतिः क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रशस्यते ॥

कुछ भी हो, क्षत्री को कभी सत्यभ्रष्ट न होना चाहिए। यह धर्मशास्त्र का कथन है। तू इस बात के लिए मुझ से आग्रह मत कर; क्योंकि ऐसा करने से हम सब का नाश होगा। पञ्चमहाभूत कदाचित् अपना अपना गन्ध, रूप, स्पर्श, इत्यादि गुण छोड़ देंगे, सूर्य का तेज भी चाहे नष्ट हो जाय, चन्द्र चाहे अपनी शीतलता त्याग दे, परन्तु अपना प्यारा सत्य व्रत मैं कभी नहीं छोड़ सकता ! अधिक क्या कहूं ?

परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः ।
यद्वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन ॥

सारी पृथ्वी का राज्य और मृत्युलोक के सारे सुखों की तो कोई बात ही नहीं है; किन्तु खास तीनों लोकों के राज्यसुख के लिए अथवा उससे भी अधिक श्रेष्ठ किसी दूसरे सुख के लिए भी मैं अपना सत्य नहीं छोड़ सकता ! ! " भरतभूमि के उद्धार के लिए किस प्रकार के दृढ़प्रतिज्ञ, तेहेदार और

सत्यनिष्ठ लोगों की आवश्यकता रहती है, सो इस उत्तर से अच्छी तरह मालूम हो सकता है। अस्तु; भीष्म ने सत्यवती से यह बतलाया कि यदि इस प्रकार वंशक्षय होने का कठिन मौका आजाय तो वेदवेत्ता और तपोनिष्ठ ब्राह्मण-द्वारा नियोग से, पुत्रोत्पत्ति करा लेने की (उस समय के) क्षत्रियों को शास्त्र की सम्मति है। मछुवाहे के घर में रहते हुए पराशर मुनि से जिस प्रकार सत्यवती के व्यास नामक पुत्र उत्पन्न हुआ वह सब हाल उसने भीष्म से बतलाया और इस काम के लिए व्यास का उपयोग करने की सलाह दी। भीष्म को भी यह सलाह पसन्द हुई। सत्यवती ने ज्यों ही व्यास का स्मरण किया त्योंही वे वहां आ गये। व्यास को जब स्मरण करने का कारण मालूम हुआ तब वे बोले, "पहले इन दोनों राजकन्याओं को एक वर्ष तक व्रतस्थ रहना चाहिए।" परन्तु एक वर्ष तक मार्गप्रतीक्षा करने के लिए सत्यवती राजी नहीं हुई। इस पर व्यास ने कहा कि, "यदि राजकन्या मेरा कुरूप, कुवेष और मेरे शरीर की यह दुर्गन्ध सहन करेगी तो तुम्हारी इच्छा के अनुसार, वर्ष भर न ठहरते हुए, मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूरी करूंगा।" इस प्रकार विचार निश्चित होने पर सत्यवती ने अपनी दोनों बहुओं की अत्यन्त विनती करके उन्हें इस काम के लिए राजी किया। योग्य समय पर बड़ी बहू अम्बिका ऋतुस्नात हुई। बाद को सासु के कहने पर जब उसे यह मालूम हुआ कि हमारे पास हमारा देवर आवेगा तब वह भीष्म का ही विचार करते हुए शय्या पर गई; परन्तु वहां अचानक कृष्ण द्वैपायन आ पहुँचे। उनका वह विकट रूप, पीली जटाएं, बढ़ी हुई दाढ़ी और लाल लाल आंखें देख कर अम्बिका ने जो अपनी आखें बन्द कीं वे फिर जब तक व्यास वहां से नहीं चले गये तब तक नहीं खोलीं! इसी

कारण, व्यास ने सत्यवती से कहा,इसके जो पुत्र होगा वह सर्वगुणसम्पन्न होने पर भी जन्मान्ध निपजेगा। व्यास के इस भविष्यकथन के अनुसार अम्बिका के जन्मान्ध पुत्र हुआ। उसका नाम धृतराष्ट्र रखा गया। सत्यवती ने सोचा कि कुरुकुल के समान प्रख्यात राजकुल का राजा अन्धा होना ठीक नहीं है; इस लिए उसने एक बार फिर व्यास को बुलाकर, अपनी छोटी बहू अम्बालिका को उनके पास भेजा। वह उन्हें देखते ही भयभीत होकर पीली पड़ गई। इस लिए व्यास ने कहा कि इसका लड़का सफेद-पीले वर्ण का होगा। समय पर अम्बालिका के सफेद और पीले रंग का पुत्र पैदा हुआ; इस लिए उसका नाम " पांडु " रखा गया-अम्बालिका के लड़का होने पर सत्यवती ने अपनी बड़ी बहू अम्बिका से व्यास का फिर एक बार सत्कार करने के लिए कहा। परन्तु पहली बार के उनके रूप का और भयंकर वेष का स्मरण आ जाने से वह अपनी सासु की आज्ञा का पालन नहीं कर सकी। अपने बदले उसने अपनी एक सुन्दर दासी को अपने ही वस्त्र और गहने आदि पहना कर व्यास की सेवा में भेज दिया। उसने व्यास के मलीन रूप और भयंकर वेष पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया; किन्तु उनके तपःसामर्थ्य और ज्ञान का स्मरण करती हुई, अत्यन्त पूज्यबुद्धि से और प्रेम से उसने उनकी सेवा की और अपने वर्ताव से सब प्रकार उनको सन्तुष्ट किया। इस कारण व्यास ने उसे आशीर्वाद दिया कि "तेरे बुद्धिमान और धर्मात्मा पुत्र उपजेगा।" यही बात सत्यवती से भी बतलाकर व्यास चले गये। व्यास के आशीर्वाद से यह दासीपुत्र सद्गुणसम्पन्न हुआ; और उसका नाम विदुर रखा गया-(आदिपर्व अ० १०५, १०६)

भीष्म ने धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर तीनों लड़कों का अपने पुत्रों की तरह पालन किया और उन्हें बड़े बड़े तपस्वी और ज्ञानी ऋषियों से वेद, इतिहास, पुराण, नीतिशास्त्र, धनु-

विद्या और अस्त्रविद्या में प्रवीण कराया। धनुर्विद्या में पांडु विशेष कुशल था; धृतराष्ट्र शारीरिक सामर्थ्य में अप्रतिम था; और विदुर बुद्धिविषयक कामों में श्रेष्ठ था। तीनों पुत्र जब तरुण हुए तब भीष्म ने उन्हें राज्य सौंप देने का निश्चय किया। धृतराष्ट्र जन्मान्ध था और विदुर पारसव (ब्राह्मण पिता और शूद्रिणी माता से पैदा हुआ) था; इस कारण इन दोनों को राज्य सौंपना योग्य न था; इस लिए भीष्म ने पांडु को राज्याभिषेक किया। गांधार देश के 'सुबल' नामक राजा की कन्या गांधारी के साथ भीष्म ने धृतराष्ट्र का विवाह करना स्थिर किया। गांधार का राजपुत्र शकुनी अपनी बहन गांधारी को हस्तिनापुर ले आया। धृतराष्ट्र के साथ गांधारी का पाणिग्रहण हुआ। गांधारी के पतिप्रेम के विषय में एक बात भारत में प्रसिद्ध है, वह ध्यान में रखने योग्य है। यह मालूम होते ही, कि हमारा भावी पति जन्मान्ध है, उसने यह विचार किया कि जब हमारे पति को जन्म से ही दृष्टिसुख प्राप्त नहीं है तब फिर हम को ही उसकी क्या आवश्यकता है। इसी कारण उसने उसी दिन से लेकर देहान्त तक अपनी आँखें एक कपड़े की पट्टी से मजबूत बाँध रक्खीं थीं" !!
(आदिपर्व अ० १०९, ११०)

शूर नामक यादव कुल का राजा वसुदेव का पिता था; उसके पृथा नाम की एक कन्या थी। उसे राजा शूर ने अपने फुफेरे भाई राजा कुंतिभोज को दत्तक दिया था। भीष्म ने जब सुना कि उसका स्वयम्वर होनेवाला है तब उन्होंने राजा पांडु को वहां भेजा। स्वयम्वर के समय कुन्ती ने पांडु को जयमाला पहना दी। राजा पांडु उसे लेकर हस्तिनापुर लौट आया। फिर कुछ दिन बाद राजा पांडु का विवाह करना निश्चित करके भीष्म मद्रदेश की राजधानी को गये। उस देश के राजा की बहिन माद्री विवाह योग्य हो गई थी; इसलिए

भीष्म ने उसको माँगा। मद्रराज ने अपने कुलाचार के अनुसार लड़की का 'शुल्क' माँगा। भीष्म शुल्क देकर माद्री को हस्तिनापुर ले आये और उसके साथ पांडु का विवाह कर दिया। विवाह होने के करीब एक मास बाद भीष्म आदि बड़ों का आशीर्वाद लेकर पांडु दिग्विजय करने के लिए सेना के साथ निकले। उन्होंने दशार्ण, मगध, विदेह, सुह्म, पुंड्र आदि देशों के राजाओं को जीता और अगणित सम्पत्ति तथा बहुत सा कर आदि हस्तिनापुर ले आये। उन्होंने सब द्रव्य अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र की आज्ञा से भीष्म, सत्यवती और अपनी माता के चरणों में अर्पण कर दिया! बड़ों के विषय में इतना प्रेम और ऐसी पूज्यबुद्धि भरतखंड के राजपुरुषों में जितनी देख पड़ती है उतनी अन्य किसी देश में भी नहीं पाई जा सकती। देवक नामक राजा के एक 'पारसवी' कन्या थी उसके साथ भीष्म ने विदुर का विवाह कर दिया। उससे विदुर के ऐसे विनयशील पुत्र उत्पन्न हुए जो उनके सद्गुण के लिए शोभा देने योग्य थे। दिग्विजय करके लौटने पर, कुछ दिनों बाद राजा पांडु शिकार खेलने के लिए हिमालय के दक्षिण उतार पर अपनी दोनों रानियों के साथ अरण्य में जा रहे—(आदिपर्व, अ० ११३, ११४)

एक बार कृष्ण-द्वैपायन श्रम और भूख से व्याकुल होकर राजमहल में आये। गांधारी ने उनका, उत्तम प्रकार से, आदर सत्कार किया। इसलिए उन्होंने प्रसन्न हो कर उसे यह आशीर्वाद दिया कि "तेरे सौ पुत्र होंगे।" कालान्तर में गान्धारी गर्भवती हुई। परन्तु चमत्कार क्या हुआ कि वह गर्भ दो वर्ष तक उसके पेट में रहा और तब भी प्रसूत होने का कुछ भी चिन्ह नहीं देख पड़ा! इस कारण गान्धारी को अत्यन्त दुःख हुआ। उसी समय वन में कुंती के युधिष्ठिर नामक पुत्र

पैदा होने का समाचार मिला; फिर क्या कहना है; गान्धारी का वह दुःख और भी बढ़ा। वह चाहे जितनी पतिव्रता हो, तथापि यह थोड़े ही हो सकता है कि स्त्रीजाति के स्वाभाविक अवगुण, ईर्षा, मत्सर, आदि, उसमें बिलकुल ही न थे। धृतराष्ट्र आदि किसीको भी न बतलाते हुए उसने अपने पेट पर मूक मार दी! इस कारण प्रसूत होने पर लोहे के गोले की तरह कठिन एक मांसपेशी (मांस की गाँठ) उसके पेट से पैदा हुई!! एक दासी वह मांसपेशी बाहर ले जा कर फेंकने ही वाली थी कि इतने ही में व्यास वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उस मांसपेशी पर ज्यों ही ठंढा पानी छिड़का त्यों ही अँगूठे के समान उसके एक सौ एक टुकड़े हो गये! बाद को एक अच्छी बन्दोबस्त की जगह में एक सौ एक कुंड तैयार करवाये गये और उनमें घी भरा कर एक एक कुंड में एक एक गर्भ का टुकड़ा डाला गया और फिर कुंड बन्द कर दिये गये। इसी दशा में कुछ दिन तक उनकी रक्षा करने पर पहला कुंड खोलते ही उससे दुर्योधन पैदा हुआ। उस समय वह इस तरह रोता था जैसे गधा रेंकता हो। राजमहल के पास गधे, गीध, कौवे, स्यार आदि जीव भयंकर रीति से शब्द करने लगे; वायु सरसराहट के साथ बहने लगी; और दिशाएँ मानो आग से धधकती हुई भयानक देख पड़ने लगीं! उसके जन्म-समय के ये उत्पात और अपशकुन देख कर विदुर, विद्वान् ब्राह्मण और बड़े बड़े ऋषि मुनियों ने भी धृतराष्ट्र से संकेत-वार्ता कर के यह जताया कि "इस लड़के के कारण तुम्हारा कुलक्षय होगा; अपने राष्ट्र पर भयंकर संकट आवेंगे; इस लिए, इसे अभी फेंक दो।" परन्तु पुत्रप्रेम में फँस जाने के कारण, कुल और राष्ट्र के सम्बन्ध का अपना कर्तव्य धृतराष्ट्र के ध्यान में नहीं आया; और उन्होंने अपने लड़के को त्याग

करने से इन्कार कर दिया । अस्तु; इस प्रकार एक के बाद एक कुंड खोलने पर, एक मास के बीच में, उनसे सौ पुत्र और एक कन्या निकली ! धृतराष्ट्र की सेवा में एक वैश्य स्त्री भी थी, उससे भी धृतराष्ट्र के इसी समय एक पुत्र हुआ । उसका नाम रखा गया "युयुत्सु" । इस प्रकार पैदा हुए एक-सौ-एक पुत्रों का धृतराष्ट्र ने योग्य समय पर विवाह किया; और कन्या दुःशला सिंधु के राजपुत्र जयद्रथ के साथ व्याह दी--
(आदिपर्व, अ० ११५, ११७)

इधर कुन्ती और माद्री के साथ राजा पांडु शिकार के लिए हिमालय के वन में रहते ही थे । एक दिन की बात है कि किंदम नामक ऋषि हिरन का रूप धर कर, हिरनी का रूप धारण की हुई, अपनी स्त्री से रममाण हो रहा था । उन्हें हिरन समझ कर राजा पांडु ने उन पर पांच तीक्ष्ण बाण छोड़ दिये । बाण लगते ही वे दोनों उसी स्थिति में जख्मी हो कर पृथ्वी पर गिर पड़े । जख्मों से विह्वल हो कर मृग मनुष्यवाणी से राजा पांडु के प्रति बोला, " राजा, तू इतना धर्मशील हो कर भी ऐसा क्रूर काम कैसे कर सका ? हमने मृगरूप धारण किया था; इस लिए तुझे ब्राह्मणहत्या का पाप नहीं लगेगा; पर मृगया का यह नियम, कि लगे हुए मृग के जोड़े का वध न करना चाहिए, तूने क्रूरता से तोड़ दिया है; इस कारण मैं तुझे यह शाप देता हूं कि अब से, जब तू अपनी स्त्रियों से रममाण होने लगेगा तब मेरी ही तरह तेरा तत्काल अन्त होगा । " इतना कह कर उस मृगरूप ऋषि ने और उसकी पत्नी ने प्राण विसर्जन किये ! यह शाप सुन कर और अपने हाथ से इस प्रकार एक ऋषि और एक ऋषिपत्नी का वध देख कर राजा पांडु को अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ । यह सोच कर उनका मन उद्विग्न हो गया कि हमारा पिता विचित्रवीर्य, अतिशय विषयोपभोग के कारण ही, यक्ष्मा रोग से मरा और मैं भी भार्या के ही

प्रसंग में मरेगा। हस्तिनापुर न जा कर अरण्य में ही तपस्या करने का उन्होंने निश्चय किया और कुन्ती तथा माद्री को धृतराष्ट्र के पास हस्तिनापुर भेज देने का विचार किया। परन्तु उन साध्वी स्त्रियों को यह विचार बिलकुल नहीं पसन्द आया! कुन्ती और माद्री ने, अपने पति के साथ, वन में ही रह कर, तपस्या करने का निश्चय किया। अन्त में तीनों ने अपने अपने अमूल्य वस्त्र और बहुमूल्य गहने आदि ब्राह्मणों को दे डाले और तपस्वियों के योग्य वेष बनाकर शतशृंग पर्वत पर तपस्या प्रारम्भ की—(आदिपर्व, अ० ११८, ११९)

तपोवन में इस प्रकार तपस्या करते हुए भी पांडु के मन को समाधान न था। इस बात पर उन्हें बहुत खेद होने लगा कि हमारे आज तक पुत्र नहीं हुआ और आगे होने की आशा भी समूल नष्ट हो गई। उन्होंने सोचा कि चाहे जितना तप किया जाय; पर निपुत्री रहने के कारण स्वर्गप्राप्ति नहीं होगी। एक दिन कुन्ती से उन्होंने, नियोग-विधि से ब्राह्मणों द्वारा पुत्रोत्पत्ति कराने की बात निकाली। इस बात पर जब कुन्ती की अनुकूलता न देख पड़ी तब राजा पांडु ने ऐसे अनेक प्राचीन काल के उदाहरण देकर कुन्ती को समझाने का प्रयत्न किया। तथापि उसका निश्चय अटल रहा। पर अन्त में जब राजा ने बहुत आग्रह किया तब उसने उस वर का हाल बतलाया जो उसे नैहर में मिला था। कुन्ती बोलीः—जब मैं नैहर में थी तब एक बार दुर्वासा ऋषि की सेवा करके उन्हें प्रसन्न किया था। उन्होंने मुझे एक मंत्र देकर यह वर दिया कि वह मंत्र जप कर मैं जिस जिस देवता को बुलाऊंगी वही वही देवता मुझे दर्शन देगा और उनसे मेरे पुत्र होंगे। इस लिए अब यदि आपकी आज्ञा हो तो उन मंत्रों के उपयोग करने का यह समय है।" पांडु ने अपनी सम्मति दे दी। (इस समय गांधारी एक वर्ष की गर्भवती थी)। कुन्ती ने एक दिन यमधर्म के नाम से बलि-

दान करके दुर्वासा से पाये हुए मंत्र का विधिपूर्वक जप किया। उस समय साक्षात् यमधर्म ने उसे दर्शन दिये; उससे कुन्ती के गर्भ रहा और योग्य समय पर पुत्र उत्पन्न हुआ। कुछ दिन बाद पांडु ने 'बलज्येष्ठ' पुत्र उत्पन्न करने के लिए उसे आज्ञा दी। तब उसने उसी प्रकार मंत्र जप कर वायु का आवाहन किया; उससे उसके दूसरा पुत्र हुआ। उसी दिन हस्तिनापुर में गांधारी के दुर्योधन हुआ। राजा पांडु ने फिर "लोकश्रेष्ठ" और पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करने के लिए कहा; तब कुन्ती ने मंत्र जप कर इन्द्र को बुलाया, उससे तीसरा लड़का हुआ। इस प्रकार, पांडु को शाप होने पर, भी कुन्ती के तीन लड़के हुए; गान्धारी के भी सौ पुत्र और एक कन्या हुई; तथापि माद्री के अब तक कोई सन्तान नहीं हुई; इस कारण उसे बहुत खेद हुआ। उसने एकान्त में अपना दुःख राजा पांडु से बतलाया और कहा कि यदि कुन्ती हमें भी मंत्र दे देगी तो पुत्रसुख का अनुभव हमको मिल जायगा। राजा की आज्ञा पाकर कुन्ती ने माद्री को एक मंत्र सिखाया। उसने उस मंत्र का जप करके अश्विनी-कुमारों को बुलाया; उनसे उसके दो यमज पुत्र हुए। इस प्रकार एक एक वर्ष के अन्तर से राजा पांडु के पांच पुत्र हुए। तपोवन के ऋषियों ने क्रम से उनके युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव नाम रखे—(आदिपर्व, अ० १२१, १२३)

कुछ काल बाद कामी पुरुषों के अन्तःकरण प्रफुल्लित करने वाली वसन्त ऋतु आगई। शतशृंग पर्वत पर सब वृक्ष नवीन पुष्प-पल्लवों से भर गये; सुगन्धित और शीतल वायु चारों ओर से मन्द मन्द बहने लगी। ऐसे समय में अरण्य में फिरते फिरते राजा पांडु का मन काम से विह्वल हो गया। वैसी ही दशा में उस समय, उनके साथ, बहुत बारीक एक ही वस्त्र पहने हुए, माद्री भी अकेली ही थी। इस कारण

उनका मन न रुका और ऋषि के दिये हुए शाप का भी उन्हें विस्मरण हो गया! एकदम माद्री के पास जाकर उन्होंने उन्हें गाढ़ आलिंगन दिया। माद्री ने अपनी ओर से बहुत कुछ उन्हें रोका; पर कुछ उपयोग नहीं हुआ। अन्त में माद्री के साथ, बलात्कार से, रममाण होते हुए ही राजा पांडु का अन्त हुआ! अपने पति के शव से लिपटी हुई माद्री वैसी ही अरण्य में शोक करने लगी। कुछ देर बाद कुन्ती अपने पुत्रों सहित वहां आकर देखती है तो उसे यह भयंकर दृश्य देख पड़ा! पतिशोक के पहले वेग में ही कुन्ती माद्री से बोली, "ऐ चांडालिन, जब तुझे यह मालूम था कि राजा को शाप है तब तुझे ऐसी खबरदारी रखनी चाहिए थी जिससे उनका मन चंचल न होता। इसके विरुद्ध एकान्त में लाकर, और मोह डाल कर, तूने कैसे उनका घात किया?" इस प्रकार शोक करके वह माद्री को दोष देने लगी। परन्तु जब उसने सब सच्चा हाल बतलाया तब कुन्ती को मालूम हो गया कि वह निर्दोष है। इसके बाद, इस विषय पर, कि राजा के साथ सती कौन हो, उन दोनों पतिव्रता और साध्वी स्त्रियों में बहुत-सा वादविवाद हुआ। अन्त में यह निश्चय हुआ कि जब माद्री ही एक प्रकार से राजा पांडु की मृत्यु का कारण हुई है और राजा उसके ही आलिंगनसुख में निमग्न होकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं तब माद्री को ही उनके साथ सती होना चाहिए। माद्री ने अपने दोनों छोटे छोटे पुत्र कुन्ती को सौंपे और अपने ही लड़कों के समान उनका पालन पोषण करने के लिए उससे विनती करके माद्री राजा के साथ सती हो गई। माद्री तरुणावस्था में थी; उसके दो यमज पुत्र भी हाल ही में हुए थे; पुत्रसुख का कुछ अनुभव भी उसे नहीं मिला था; ऐसी दशा में यदि और कोई सामान्य स्त्री होती तो वह सती कभी न होती और न अपने प्यारे छोटे छोटे पुत्र सौत को सौंपती—फिर

चाहे विधवा होकर वह भले ही बनी रहती। पर माद्री को तो पुत्रप्रेम की अपेक्षा पतिप्रेम ही अधिक प्रिय था; इस कारण वह आनन्दपूर्वक सती हो गई। बाद को तपोवन के सब ऋषि कुन्ती और पाचों पांडवों को साथ लेकर हस्तिनापुर को चले और सत्रह दिन में वहां आ पहुँचे। वहां उन्होंने पांडवों के जन्म का और राजा पांडु की मृत्यु का सब हाल विस्तारपूर्वक कह सुनाया। इसके बाद कुन्ती और पांडवों को भीष्म के सिपुर्द करके सब ऋषि शतशृंग को लौट आये। इधर भीष्म, धृतराष्ट्र और विदुर ने गंगा-तीर जाकर पांडु और माद्री की उत्तर-क्रिया तथा श्राद्ध यथाविधि की। कुछ दिनों बाद, व्यास की सम्मति से सत्यवती अपनी दोनों बहुओं को साथ लेकर तपोवन में चली गई; और वहीं उन सब का, कुछ काल बाद, देहावसान हुआ—(आदिपर्व, अ० १२५, १२८)

धृतराष्ट्र के एक सौ एक पुत्र और पाँच पांडव अब एक जगह रहने लगे। पांडव, जो बालपन ही से श्रम और व्यायाम के खेलों में हिमालय के वन में ही जन्मे और बढ़े थे, राजमहल में जन्मे हुए कौरवों की अपेक्षा बहुत ही बढ़े चढ़े हुए थे। उनमें भीमसेन तो सब से अधिक सशक्त थे; इस कारण सामर्थ्य के काम में उनकी बराबरी करनेवाला कोई भी न था। भीम ऐबी भी कुछ कम न थे। पाँच सात कौरवों को कांख में दाबकर वे पानी में डुबकी लगाते और जब नाक मुहँ में पानी जाने के कारण कौरव घबड़ा जाते तब उन्हें वे छोड़ देते थे! पेड़ पर चढ़कर जब कभी कौरव फल तोड़ने लगते तब भीम नीचे से जाकर पेड़ को इतने जोर से हिलाते कि सब कौरव नीचे गिर कर लोटने लगते थे! ऐसे ही ऐबों के कारण सब कौरव—खासकर दुर्योधन—बालपन ही से भीमसेन का द्वेष करने लगे। दुर्योधन ने यह विचार किया कि पांडवों में सब से अधिक

शक्तिमान भीम को किसी न किसी युक्ति से नाश करना चाहिए। एक दिन गंगानदी पर जाकर जलक्रीड़ा करने का दाँव उसने सोचा और पांडवों को भी बुलाया। नियत किये हुए दिन पर कौरव पांडव नौकर चाकर साथ लेकर गंगा तीर के रमणीय उद्यान में गये। वहां सब लोग जब भोजन के लिए बैठे तब दुर्योधन ने कालकूट विष डालकर अच्छा और स्वादिष्ट अन्न भीमसेन को परोसा! जिसका मन स्वयं शुद्ध और निष्पाप होता है उसे सहसा ऐसा संशय नहीं आता कि दूसरे लोग हमारे साथ कपट करेंगे। इस लिए भीम के मन में कोई शंका नहीं आई और उन्होंने, अपने नित्य-नियम के अनुसार खूब तृप्त होकर भोजन किया। भोजन हो जाने पर सब लोग नदी में जाकर बहुत देर तक तैरते रहे। संध्याकाल होने पर सब लड़के पानी से निकले और सूखे वस्त्र पहन कर उसी बगीचे के महलों में रात को आ रहे। इधर तो सब लोग महलों में चले गये; पर भीमसेन विष से शुंग होकर नदी के किनारे ही सो रहे। उन्हें दुर्योधन ने मजबूत बेलों से जकड़कर गंगाजी में फेंक दिया: और आप सब के पीछे आनन्द से महलों में लौट गया! दूसरे दिन सुबह कौरव हस्तिनापुर चले गये; पर पांडव भीम को ढूँढ़ने लगे। उन्होंने उद्यान में और नदी-किनारे उनका बहुत खोज किया; पर जब कहीं पता न चला तब यह समझ कर, कि कदाचित् वे पहले ही नगर को चले गये होंगे, वे भी हस्तिनापुर को लौट आये। परन्तु भीमसेन वहां भी न थे; इस कारण सब पांडवों को और कुन्ती को अत्यन्त दुःख हुआ। कुन्ती ने विदुर से अपना यह संशय प्रकट कर दिया कि दुर्योधन दुष्ट है: उसीने भीमसेन को कहीं न कहीं नष्ट कर दिया होगा। परन्तु विदुर ने इस प्रकार समझा कर उसका समाधान किया

कि भीमसेन की आयुर्मर्यादा बहुत बड़ी है; उसमें कोई विघ्न नहीं आ सकता।

इधर भीमसेन पानी में डूबकर नीचे चले गये; वहाँ एक दह के बड़े बड़े नागों ने उन्हें दंश किया; इस कारण नागों के विष से उनके शरीर का कालकूट विष "विषस्य विषमौषधं" के न्याय से शान्त हो गया और भीम को होश आया! फिर नाग उन्हें नागलोक में वासुकी के पास ले गये। वासुकी कुन्ती का मातामह (मा की तरफ का आजा) था। अपने पनती को देखकर वासुकी को परम आनन्द हुआ। अतुल बल उत्पन्न करनेवाला एक प्रकार का अमृतरस उसने बहुत सा भीम को पीने के लिए दिया। अपने आजा का यह सत्कार भीमसेन ने अत्यन्त प्रेमपूर्वक स्वीकार किया और उस रस के आठ कुंड सोख डाले! बाद को वह रस पचाने के लिए भीमसेन की सवारी नींद लेने लगी और फिर आठ दिन के बाद जगी! उठने के बाद स्नान आदि नित्यकर्म से निपट कर अपने आजा के घर में भीमसेन ने अन्तिम भोजन किया और फिर वे उसी उद्यान के पास गंगाजी से आ निकले! इसके बाद हस्तिनापुर में आकर अपनी माता और सब भाइयों से प्रेमपूर्वक मिले। सब को बड़ा आनन्द हुआ। भीमसेन ने दुर्योधन का यह सारा कपट युधिष्ठिर से बतलाया; पर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से कह दिया कि यह बात किसीसे प्रकट न करना। इस घटना के बाद दुर्योधन ने फिर एक दो बार भीम के भोजन में विष डाला; परन्तु नागलोक से जो रस वे पान कर आये थे उसके कारण विष का कुछ भी परिणाम उनके शरीर पर नहीं हुआ। सच है, ईश्वर की जिस पर कृपा होती है उसके लिए विष भी अमृत हो जाता है—(आदिपर्व, अ० १२८, १२९)

धृतराष्ट्र ने सोचा कि इस प्रकार के दुष्ट उपद्रवों में इनके

दिन व्यर्थ जाना ठीक नहीं है; इस लिए उन्होंने सब को शिक्षा देने के लिए कृपाचार्य को सौंप दिया। कृपाचार्य का पूर्ववृत्तान्त यह है:—गौतम ऋषि के 'शरद्वान्' नामक एक पुत्र था। वेदाभ्यास की अपेक्षा धनुर्वेद का अध्ययन करने की ओर उसका अधिक ध्यान था। अन्य ऋषि जिस प्रकार तपोबल से वेद-विद्या सम्पादन करते थे वैसे ही इसने तप कर के अस्त्र विद्या सम्पादन की थी। उसके इस सामर्थ्य से भयभीत हो कर इन्द्र ने, उसका सत्व हरण करने के लिए, "जानपदी" नामक एक अप्सरा भेजी थी। उसे देखते ही शरद्वान् का मन चंचल हो उठा और उसके हाथ से धनुष-बाण छूट पड़ा। और उसे न मालूम होते हुए, उसका वीर्य नीचे बाण के दोनों तरफ गिर पड़ा। धनुष, बाण, कृष्णाजिन आदि वहीं डाल कर शरद्वान् इस अप्सरा के पीछे पीछे चला गया। इधर उस छिपा हुए वीर्य से एक लड़का-लड़की का जोड़ा उत्पन्न हुआ! राजा शान्तनु के एक सेना-रक्षक को ये दोनों वन में मिले; वह वन से राजा के पास ले आया। राजा ने उन दोनों का बड़ी 'कृपा' से पालन पोषण किया; इसी लिए उनके नाम, फिर स्वयं शरद्वान् ने राजा के पास आकर, 'कृप' और 'कृपी' रखे। कृपाचार्य ने अपने पिता शरद्वान् से धनुर्विद्या सीखी। अस्तु। कौरव, पांडव और साथ ही यादव तथा अन्य राजपुत्र भी कृपाचार्य के पास आकर धनुर्विद्या सीखने लगे।

भगवान् भरद्वाज ऋषि एक दिन गंगाद्वार में गंगास्नान करने गये। वहां घृताची नाम की एक सुन्दरी अप्सरा उन्हें नग्नस्नान करती हुई देख पड़ी। उस समय उनका वीर्य 'द्रोण कलश' नाम के एक यज्ञ-पात्र में गिर पड़ा। उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम उन्होंने 'द्रोण' रखा। द्रोण ने अपने पिता के ही आश्रम में वेदविद्या और धनुर्विद्या सीखी। भरद्वाज ने अग्निवेश को आग्नेयास्त्र सिखाया था; अग्निवेश से उसे द्रोणाचार्य

अश्वत्थामा यह कहते हुए नाचने-कूदने लगा कि "मैंने गाई का दूध पिया!" (पृ० २५).

ने सीखा। बाद को महेन्द्र पर्वत पर जा कर उन्होंने परशुराम से और भी कितने ही अस्त्र सम्पादन किये। जिस समय द्रोणाचार्य अग्निवेश के आश्रम में धनुर्विद्या सीखते थे उसी समय पांचाल देश का राजपुत्र द्रुपद भी उनका सहाध्यायी था। द्रुपद का पिता राजा पृषत् भी द्रोणाचार्य के पिता महर्षि भरद्वाज का मित्र था। द्रोण और द्रुपद में भी अत्यंत सख्य और प्रेम था। पृषत् के मरने पर द्रुपद सिंहासनारूढ़ हुआ। द्रोण ने अपने पिता की आज्ञा से कृपाचार्य की बहिन कृपी के साथ विवाह कर लिया। उससे अश्वत्थामा उत्पन्न हुआ। एक बार द्रोणाचार्य अपनी भार्या और पुत्र के साथ एक नगर में रहते थे। वहां अश्वत्थामा ने देखा कि श्रीमान् लोगों के बच्चे गाई का दूध पी रहे हैं। इस लिये वह भी पिता के पास रोता हुआ आया और दूध मांगने लगा। परन्तु उस निर्धन ब्राह्मण के पास गाय कहाँ से आवे? द्रोणाचार्य इस आशा से शहर में बहुत फिरे कि शायद कोई धर्मात्मा पुरुष गोप्रदान करनेवाला मिल जाय; पर निराश हुए। अन्त में अपनी भार्या से थोड़ा सा आटा पानी में घुलवाकर उन्होंने अश्वत्थामा को पीने के लिये दिया; उसे पीकर अश्वत्थामा यह कहते हुए नाचने कूदने लगा कि "मैंने गाई का दूध पिया!" यह देख कर द्रोणाचार्य को अपनी दरिद्रता पर बड़ा शोक हुआ। इतने ही में उन्हें स्मरण आया कि अपने मित्र पांचाल देश के राजा द्रुपद के पास जाकर कुछ द्रव्य माँगना चाहिये। वह यदि कुछ द्रव्य दे देगा तो हमारे कुटुम्ब का निर्वाह होगा। द्रोणाचार्य ने द्रुपद के यहां जा कर यह संदेशा कहला भेजा कि "तुम्हारा मित्र द्रोण आया है"। परन्तु राज्यमद से मतवाले राजा अपने मा बाप की भी परवा नहीं करते; फिर मित्र की क्या कथा? राजा ने उत्तर किया, "अरे ब्राह्मण, तेरी

और हमारी मित्रता होना बिलकुल सम्भव नहीं। दरिद्री मनुष्य धनवान् का, मूर्ख विद्वान् का और क्लीव शूर का कभी मित्र नहीं हो सकता!" यह उद्धटपन का उत्तर सुन कर द्रोणाचार्य को बहुत क्रोध आया। परन्तु उस समय वे राजा को बिना कुछ उत्तर दिये ही वहां से चल दिये और कुरुजांगल देश से प्रवास करते हुए वे हस्तिनापुर के पास आ पहुँचे।

उस दिन कौरव पांडव हस्तिनापुर के बाहर मैदान में अटई-डंडे का खेल खेलते थे। जब खेल का रंग खूब जम गया था तब अचानक अटई एकदम उड़कर एक सूखे कुएं में जा गिरी। कुआँ बहुत गहरा था। अटई ऊपर निकालने के लिये उन्होंने सब प्रयत्न कर डाले; पर कुछ फल न हुआ। जब उन्हें कोई उपाय न सूझने लगा तब वे एक दूसरे के मुख की ओर ताकने लगे। इतने ही में वहां से एक वृद्ध ब्राह्मण (द्रोण) आ निकला। उसने यह सब हाल देखा और कौरव पांडवों से सम्बोधन करके बोला, "तुम सब कौरव वंश में और क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुए हो और अस्त्रविद्या भी सीखे हो; तौ भी तुम यह अटई कुएं से नहीं निकाल सकते? तुम्हारी सब विद्या व्यर्थ है!" इस प्रकार उनकी निर्भर्त्सना करके द्रोण ने अपने हाथ की अँगूठी कुएं में डाल दी! और यह कह कर कि "वह अटई और यह अँगूठी दोनों मैं बाहर निकालता हूं।" उन्होंने मुट्ठी भर 'इषिका' (घास की लकड़ियां) हाथ में ली और ऐषिक अस्त्र से उन्हें मंत्रित करके ज्योंही उन्होंने कुएं में फेंकी त्योंही चमत्कार यह हुआ कि पहले घास की सिर्फ एक लकड़ी कुएं में जा घुसी; फिर उस लकड़ी में दूसरी लकड़ी जा लगी, दूसरी में तीसरी घुसी; इस प्रकार जब कुएं के ऊपर तक इषिकों की मालिका लग गई तब द्रोण ने वह अटई अचानक ऊपर निकाल ली! बाद को धनुष साज कर उन्होंने एक बाण उसमें लगाया; और उसे इस खूबी के साथ

उन्होंने कुएं में छोड़ा कि वह अँगूठी में प्रविष्ट होकर उसके साथ फिर बाहर निकल आया! यह हस्तकौशल देख कर राजपुत्रों को बहुत ही आश्चर्य हुआ और वे द्रोणाचार्य को भीष्म के पास ले आये। भीष्म ने उन्हें सन्मानपूर्वक अपने यहां रख लिया और राजपुत्रों को अस्त्रविद्या सिखाने का काम उन्हें सौंपा—(आदिपर्व, अ० १३०, १३)

सब राजपुत्रों को धनुर्विद्या और अस्त्रविद्या सिखाते हुए, अर्जुन की बुद्धिमत्ता, ग्राहकशक्ति और चातुर्य देख कर, द्रोणाचार्य की उन पर विशेष कृपा रहने लगी। एक बार उन्होंने सब राजपुत्रों को एक एक कमंडलु दिया और कहा कि इसे पानी से भर लाओ; देखें कौन पहले भर लाता है। सब राजपुत्र कमंडलु भरने के लिये नदी पर गये; परन्तु अर्जुन ने वहीं "वारुणास्त्र" का जप करके कमंडलु एकदम पानी से भर कर गुरुजी के सामने रख दिया! एक बार भोजन के समय जब हवा से दीपक गुल हो गया तब अर्जुन ने अँधेरे ही में भोजन किया। उस समय उनके मन में यह विचार उठा कि अँधेरे में हमारा हाथ भूल कर भी दूसरी ओर न जा कर ठीक मुहँ की ही तरफ जाता है; यह केवल दृढ़ अभ्यास ही का फल है। इससे जान पड़ता है कि ऐसा ही दृढ़ अभ्यास करने पर हम अँधेरे में निशाना भी लगा सकते हैं! इस प्रकार सोच कर उसी दिन से अर्जुन रात को अँधेरे में निशाना मारने का अभ्यास करने लगे। इसी अभ्यास से उन्हें 'शब्दवेधित्व'* प्राप्त हुआ। एक दिन द्रोणाचार्य किसी कुशल कारीगर से एक कृत्रिम भास पक्षी तैयार

---

* कुएं से अटई निकालना, शब्दवेधित्व, इत्यादि विशेष कुशलतापूर्ण प्रयोगों का उल्लेख महाभारत में अनेक बार आया है, उसे काल्पनिक न समझना चाहिये, भारत में जगह जगह राना सुरतानसिंह के प्रयोग जिन्होंने देखे हैं वे इस बात को सहज ही ध्यान में ला सकते हैं।

करवा लाये; और उसे एक वृक्ष की चोटी पर रखा। सब राजपुत्रों को बुला कर प्रत्येक से कहा, "धनुष साज कर, उसमें बाण लगा कर और डोरी खींच कर भास पक्षी के सिर पर ताक लगाओ और दो घड़ी वैसे ही खड़े रहो, और मैं ज्यों ही बाण छोड़ने के लिये कहूं त्योंही बाण छोड़ो।" पहले पहल युधिष्ठिर जब द्रोणाचार्य के उपर्युक्त कथन के अनुसार खड़े हुए तब उन्होंने उनसे पूछा, "अब तुझे वृक्ष, भास पक्षी, यहां खड़े हुए तेरे भाई और मैं—इन सब में कौन कौन देख पड़ता है?" इस पर धर्म ने उत्तर दिया कि "आप, मेरे भाई, वृक्ष और भास पक्षी, सब मुझे देख पड़ते हैं।" यह सुन कर द्रोणाचार्य ने समझ लिया कि यह पक्का शिष्य नहीं है। उन्होंने युधिष्ठिर से धनुष नीचे रख देने के लिये कहा। इसी प्रकार सब की परीक्षा ली गई; पर सब 'फेल' हुए। द्रोण ने सब की तरह अर्जुन से भी शरसन्धान करके खड़े रहने के लिये कहा। दो घड़ी होते ही उन्होंने अर्जुन से भी वही प्रश्न पूछा। अर्जुन ने उत्तर दिया कि "आप, मेरे भाई, वृक्ष अथवा भास पक्षी, इन में से कोई भी मुझे नहीं देख पड़ता; सिर्फ भास पक्षी का सिर देख पड़ता है!" यह उत्तर सुनते ही द्रोणाचार्य को मालूम हो गया कि यही सच्चा शिष्य है और इसीने हमारे श्रम की कीमत की। उन्होंने आनन्द-पूर्वक अर्जुन को बाण छोड़ने की आज्ञा दी। अर्जुन ने ज्योंही बाण छोड़ा त्योंही भास पक्षी का सिर उड़ कर पृथ्वी पर आ गिरा। बात छोटी ही है; परन्तु इससे बोध बहुत लिया जा सकता है। इस बात से यह अच्छी तरह मालूम हो सकता है कि मन की एकाग्रता का कितना महत्व है। जब कोई महत्व का काम हाथ में लिया जाता है उसी समय यदि दूसरी चार पांच बातों की तरफ ध्यान चला जाता है तो

फिर कोई भी बात पूरी नहीं पड़ती। किसी भी एक ही बात में जब मन लग जाता है और जब उसे छोड़ कर औरों के अस्तित्व का भी भान नहीं रहता तब उस काम में अवश्य सफ़लता प्राप्त होती है। यह तत्व, इस छोटी सी-परन्तु खूबी-दार-बात से अच्छी तरह ध्यान में आ जायगा। अस्तु। एक बार द्रोणाचार्य गंगास्नान के लिये गये। पानी में एक घड़ि-याल उनका पैर पकड़ कर खींचने लगा। द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों को पुकारा। परन्तु यह किसीको न सूझा कि घड़ियाल को किस तरह मारें कि जिससे अपने गुरुजी पर चोट न आवे। सब राजपुत्र एक दूसरे का मुहँ ताकने लगे। परन्तु अर्जुन ने अपने शब्दवेधित्व का उपयोग करके पानी में बाण चलाया। उस बाण से घड़ियाल तो मर गया, पर द्रोणाचार्य पर कोई चोट नहीं आई और उनके प्राण बच गये! इस प्रकार अर्जुन की हस्त-कुशलता देख कर और अन्य बातों से भी उनकी योग्यता जान कर द्रोणाचार्य ने उन्हें "ब्रह्मशिरस्" नामक अस्त्र सिखाया।

द्रोणाचार्य जी जब भरतकुल के राजपुत्रों को इस प्रकार धनुर्विद्या सिखला रहे थे, उसी समय निषादों के राजा का 'एकलव्य' नामक राजकुमार उनके पास आया और बोला, "मुझे भी धनुर्विद्या सिखलाइये।" परन्तु धनुर्विद्या में अस्त्र सिखाते समय मंत्र भी सिखाने पड़ते हैं। एकलव्य, निषाद होने के कारण, उन मंत्रों के लिये पात्र न था; इस कारण द्रोण ने उसे धनुर्विद्या की शिक्षा देना स्वीकार नहीं किया। एकलव्य अपने वन में लौट आया और द्रोणाचार्य की एक मिट्टी की प्रतिमा बना कर और उसे अपना गुरु समझ कर वह उसीके पास धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। कुछ दिनों में वह, केवल अपनी गुरुभक्ति और एकनिष्ठा के बल पर, उस विद्या में अत्यन्त प्रवीण हो गया। एक बार कौरव और पांडव उसी

निषाद के वन में शिकार खेलने गये। वहां एकलव्य को देख कर उनका शिकारी कुत्ता भौंकने लगा। एकलव्य ने धनुष साज कर कुत्ते के भौंकते हुए खुले मुहँ में, इस खूबी के साथ, सात बाण मारे कि कुत्ते पर तो किसी प्रकार की चोट नहीं आई और बाण उसके मुहँ में भर गये। कुत्ते का मुहँ बन्द हो गया और उसके मुख से शब्द ही न निकलने लगा! उसका यह हस्तकौशल और धनुर्विद्या सीखने की प्रणाली देख कर कौरव-पांडवों को परम कौतूहल हुआ। उन्होंने यह हाल द्रोणाचार्य से बतलाया। द्रोणाचार्य अर्जुन को साथ ले कर उस निषाद राजपुत्र के पास गये। एकलव्य ने भक्तिपूर्वक अपने गुरु द्रोणाचार्य को दण्ड प्रणाम किया। द्रोणाचार्य ने उससे कहा, "मुझे यदि तू गुरु समझता है; और इसी कारण यदि तेरी विद्या पूर्ण हुई है, तो अब मुझे गुरुदक्षिणा दे।" एकलव्य ने अपने गुरु को दक्षिणा देना कबूल किया। द्रोणाचार्य ने, अपनी दक्षिणा में, दाहिने हाथ का अँगूठा काट देने के लिये उससे कहा *। परन्तु एकलव्य ने, बिलकुल अधीर न होते हुए, तत्काल अपने दाहने हाथ का अँगूठा काट दिया!!"

(आदिपर्व, अ० १३२, १३३.)

इस कथा के विषय में श्रीमती एनी बेसंट ने जो कुछ लिखा है कि उसका आशय यह है:—कितने ही लोगों को द्रोणाचार्य का यह कृत्य क्रूरतापूर्ण जान पड़ेगा। परन्तु इस कृत्य के मूल में उनका एक महत्त्व का उद्देश पाया जाता है। मनुष्य पूर्वजन्म के कर्मों और वासनाओं के अनुसार भिन्न भिन्न जातियों में जन्म पाता है। उसका शरीर भी उसकी पूर्व-

* अब तक भिल्ल आदि जंगली लोग जब धनुष में तीर लगा कर डोरी खींचते हैं तब बाण में अँगूठा न लगाते हुए, बीच की उँगली और अंगूठे के पासवाली उँगली से ही तीर खींचते हैं। उपर्युक्त एकलव्य की कथा से इस बात का सम्बन्ध ध्यान में रखने योग्य है।

वासनाओं और पूर्वकर्मों का ही फल है। द्रोणाचार्य केवल ब्राह्मण और क्षत्रियों ही को धनुर्विद्या सिखाते थे; अन्य जातियों को न सिखलाते थे। इसमें उनका हेतु यह था कि जिन्होंने अपने अनेक पूर्वजन्मों की वासनाएं और कर्म उच्च प्रकार के रखे हैं; और इसी कारण जिन्हें ब्राह्मण और क्षत्रियों का जन्म मिला है उन्हींको, उनके उच्च कर्मों और वासनाओं के बदले में, धनुर्विद्यारूपी इनाम देना उचित है। एकलव्य अपनी पूर्व वासनाओं के कारण ही निषाद-कुल में जन्मा था। उसके पूर्वजन्म की वासनाएं और कर्म जब धनुर्विद्या प्राप्त करने के लिये योग्य न थे तब उसे उक्त विद्या पाने की इच्छा करना भी योग्य न था। वह यदि धनुर्विद्या चाहता ही था तो अनेक जन्मों तक उसे वह वासना अपने मन में रखनी थी और क्षत्रियकुल में जन्म पाने के योग्य कर्म करके वह विद्या प्राप्त करनी चाहिये थी। परन्तु जान पड़ता है, एकलव्य को इतने जन्मों तक मार्गप्रतीक्षा करते बैठना अच्छा नहीं लगा और जिस विद्या के लिये वह अधिकारी न था उसे उसने, एक प्रकार से, बलात् प्राप्त कर ली! उसके इस शारीरिक पातक के लिये उसके शरीर ही को दण्ड मिलना योग्य था और बलात् सम्पादन की हुई विद्या में कुछ न कुछ व्यंग रखना भी योग्य था; इसी कारण द्रोणाचार्य ने अपनी गुरुदक्षिणा में उसके हाथ का अँगूठा कटवा लिया!

एक बार द्रोणाचार्य ने भीष्म और धृतराष्ट्र आदि बड़ों को यह दिखलाने का विचार किया कि हमने जो विद्या राजपुत्रों को सिखलाई है उसका उन्हें कहां तक ज्ञान होगया है। इस लिए द्रोणाचार्य ने नगर के बाहर एक विस्तृत रंगभूमि तैयार करवाई। राजालोग, कुन्ती, गांधारी, अन्य राजस्त्रियां और नगर के सामान्य जनसमूह के लिए एक 'प्रेक्षागार' भी तैयार कराया गया। नियत समय पर सब लोग जमा हुए। राजपुत्रों

ने वहां यथाशक्ति अपना अपना शस्त्रास्त्र-कौशल दिखलाया। सारा समाज "धन्य है, धन्य है" की घोषणा करने लगा। इसके बाद भीम और दुर्योधन में गदायुद्ध शुरू हुआ। कुछ देर के बाद मालूम होने लगा कि ये कदाचित् मत्सर से एक दूसरे का घात करेंगे; इस लिए द्रोणाचार्य ने अश्वत्थामा के द्वारा वह युद्ध बन्द करवा दिया। इसके बाद अर्जुन सोने का कवच पहने हुए धनुषबाण लेकर रंगभूमि में उपस्थित हुए। उन्हें देखते ही प्रेक्षकों ने हर्ष के साथ, एकही बार, भारी जयघोष किया। अर्जुन ने अपना शस्त्रास्त्र-कौशल सब को दिखलाया। धनुर्विद्या के भिन्न भिन्न भागों में अर्जुन की हस्त-कुशलता सब राजपुत्रों से अधिक देख पड़ी, इस लिए प्रेक्षकगण उन्हींकी प्रशंसा करने लगे। उसे सुनकर कुन्ती के नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे। परन्तु दुर्योधन आदि कौरवों को उससे बहुत विषाद हुआ। इतने ही में कर्ण रणाङ्गण में उतरा और बहुत सा गर्वयुक्त भाषण करके इस प्रकार कहने लगा, "हे पार्थ, धनुर्विद्या के जो चमत्कार तूने कर दिखलाये हैं वही मैं भी तुझसे अधिक कौशल के साथ कर दिखलाता हूं। देख। अपनी हस्त-कुशलता का व्यर्थ घमंड मत दिखलाना।" इसके बाद कर्ण ने भी वही सब शस्त्रास्त्रों के प्रयोग कर दिखलाये जो अर्जुन ने किये थे। यह देखकर कौरवों को-विशेषतः दुर्योधन को-बहुत प्रसन्नता हुई। अर्जुन ने कर्ण से कहा, "रंगभूमि पर अस्त्र-कौशल दिखाने के लिए तुझे किसीने भी नहीं बुलाया, तू योंही आया है।" इस पर कर्ण ने उत्तर दिया, "रंगभूमि सब को बराबर ही है, यहां आने के लिए सब को स्वतंत्रता है। यहां मेरे साथ प्रसंग आ पड़ा है; व्यर्थ बक बक करने से काम नहीं चल सकता। तू यदि कुछ कर दिखलाना चाहता है तो व्यर्थ शब्दों को छोड़कर वह बाणों से ही कर दिखला। इसके बाद तत्कालीन युद्धशास्त्र के नियमानुसार अर्जुन और कर्ण का द्वंद्व-

युद्ध निश्चित हुआ। कृपाचार्य ने आगे आकर अर्जुन का नाम, कुल और मा बाप के नामों का उच्चार किया; तथा उन्होंने धिक्कारपूर्वक कर्ण से कहा, " तू भी अपने माबाप के नाम और कुल का उच्चार कर; हीन कुल में जन्मे हुए और राजपद से रहित किसी पुरुष से भी अर्जुन के समान राजपुत्र युद्ध नहीं करेगा! " यह बात सुनते ही दुर्योधन बोला, " राजाओं की योग्यता जन्म, शूरता और सेनानायकी तीन गुणों से ठहराई जाती है; केवल उत्तम कुल में ही जन्म लेने से योग्यता नहीं आती। राजपद-रहित क्षत्रिय के साथ यदि युद्ध न करना हो तो मैं अभी कर्ण को राजा बनाता हूं। " इतना कहकर उसने तत्काल अंगदेश का राज्य कर्ण को दिया और वहीं का वहीं उसे राज्याभिषेक भी कर दिया! उस समय कर्ण ने यह शपथ की कि आमरण दुर्योधन का पक्ष न छोडूंगा। इतने ही में कर्ण का वृद्ध पिता आधिरथ, हाथ में लकड़ी का सहारा लिए हुए, वहां आ पहुँचा। उसे देखते ही कर्ण ने धनुषबाण नीचे रख दिया और राज्याभिषेक से भींगा हुआ सिर उसके चरणों पर रखा। इस प्रकार उसका आशीर्वाद लेकर कर्ण युद्ध के लिए तैयार हुआ! यह देखते ही भीम आगे बढ़ कर बोले, " अरे कर्ण, अंगदेश का राजकाज सम्हालने का तुझमें सामर्थ्य नहीं है; राजदण्ड हाथ में लेकर राज्य-शकट चलाने की अपेक्षा, अथवा धनुष-बाण लेकर युद्ध करने की अपेक्षा तू अपना पहले का चाबुक हाथ में लेकर काठ का रथ हांकने का ही काम कर! " भीम के मुख से यह वचन सुनकर कर्ण ने सिर्फ एक लम्बी सांस लेकर सूर्य की ओर देखा; परन्तु दुर्योधन ने इस पर यह उत्तर दिया, " क्षत्रियों का मुख्य गुण उत्तम कुल नहीं है, किन्तु शूरता ही उनका सब से बड़ा मुख्य गुण है। शस्त्र लेकर क्षत्री जब आगे बढ़ रहा है तब

उससे युद्ध करना ही सच्चे क्षत्रिय पुरुष का धर्म है । कर्ण को मैंने अंगदेश का राज्य दिया है, यह जिसे पसन्द न हो वह रथ पर चढ़ कर और धनुष-बाण साज कर हमारे सामने आवे और हमसे युद्ध करने के लिए तैयार हो ! ” इस प्रकार यह झगड़ा बढ़ना ही चाहता था; परन्तु इतने ही में सूर्य डूब गया और सब मामला जहां का तहाँ ही रह गया । सब लोग प्रेक्षागार से निकल पड़े और वह उत्सव समाप्त हुआ; जिसको, एक प्रकार से, अगले भारतीय युद्ध की नान्दी ही कहना चाहिये— (आदिपर्व अ० १३४,१३७)

इस प्रकार जब सब शिष्यों का धनुर्विद्या-अध्ययन पूर्ण होगया तब द्रोणाचार्य ने उनसे गुरुदक्षिणा मांगी । वह गुरु-दक्षिणा यह थी कि सब कौरव-पांडव मिल कर पांचाल देश पर चढ़ाई करें और राजा द्रुपद को जीता पकड़ लावें । द्रोणाचार्य को यह गुरुदक्षिणा देने का विचार सब को पसन्द पड़ा और द्रोणाचार्य कौरव पांडवों को साथ लेकर पांचाल देश को चले । पहले पहल सबने मिल कर सारा पांचाल देश पादाक्रांत किया; फिर कौरवों ने उस देश की राजधानी पर हल्ला किया, परन्तु द्रुपद ने सारे कौरवों को पराजित करके भगा दिया । नगर से आध कोस पर पांडवों का शिविर था; वहां सब कौरव आश्रय पाने के लिए आये । बाद को, युधिष्ठिर को छोड़ कर, बाकी चारो पांडव राजा द्रुपद पर चढ़ गये । अर्जुन ने उसकी सेना को बाणों से और अस्त्रों से मारते मारते अपना रथ राजा द्रुपद के रथ से जा भिड़ाया । उन्होंने पहले पहल राजा द्रुपद के रथ के घोड़ों का वध किया; इसके बाद रथ, सारथी, ध्वज और धनुष का उन्होंने नाश किया । इतना हो जाने पर अर्जुन ने, हाथ में तलवार लेकर द्रुपद के रथ पर छलांग मारी और उसे पकड़ लिया तथा अपने रथ पर बैठा कर वे उसे द्रोणाचार्य के पास ले आये । जिस राजा द्रुपद ने,

राज्यमद से अंध होकर, द्रोणाचार्य का अपमान किया था वही, जब, कैदी के समान, द्रोणाचार्य के सामने आकर खड़ा हुआ तब द्रोणजी उससे बोले, "तेरा सारा राज्य और यह राजधानी मेरे इन शिष्यों ने जीत ली है, और अब, तेरा प्राण भी मेरे हाथ में आ गया है। मित्र, कहो अब तुम्हारी क्या इच्छा है?" इस प्रकार तानाजनी का प्रश्न करके फिर द्रोणाचार्यजी कुछ हँस कर बोले, "हे वीर, तुम इस बात का भय मत करो कि मेरे शिष्य तुम्हारा वध करेंगे। हम ब्राह्मण क्षमाशील हैं। अग्निवेश के आश्रम में रह कर हम तुम दोनों एकही जगह खेले हैं और धनुर्विद्या सीखे हैं; इस लिए तुम पर हमारा जो पहले प्रेम था वही अब भी बना हुआ है; और अब भी हमारी यही इच्छा है कि हमारा तुम्हारा पहले का स्नेह वैसाही कायम रहे। परन्तु तुम्हीं यह बात कह चुके हो कि "जिसके पास राज्य नहीं है वह राजा का मित्र नहीं हो सकता।" इस कारण तुमसे जो राज्य जीत लिया गया है उसमें से गंगा के दक्षिण ओर का आधा पांचाल देश मैं तुमको वापस देता हूं और उत्तर ओर का आधा भाग मैं अपने पास रखता हूं! अब हम तुम दोनों राजा हो गये; अब हम दोनों की मित्रता होने में कोई हर्ज नहीं।" यह सुन कर राजा द्रुपद बहुत लज्जित हुआ और कुछ उत्तर न देकर नगर को लौट गया—(आदिपर्व, अ० १३८)

दूसरा प्रकरण।
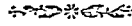
संकट, उनसे छुटकारा, उत्कर्ष और विवाह।

पहले प्रकरण में जिन घटनाओं का वर्णन हुआ उनके बाद एक वर्ष के भीतर ही, धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को सब से बड़ा समझ कर युवराज बनाया और अभिषेक किया। असियुद्ध रथयुद्ध, और विशेष कर गदायुद्ध में भीमसेन को दुर्योधन के साथ ही बलराम जी से शिक्षा मिलने लगी। नकुल भी चित्रयोधी और अतिरथी कहलाने लगे। अर्जुन तो धनुर्धरों में अत्यन्त श्रेष्ठ समझे जाने लगे। बलाढ्य सौवीर राजा को और यवनाधिपति को, जिसे पांडु भी न जीत सके थे, पांडवों ने जीत लिया। इनके सिवाय पाश्चात्य और दक्षिणात्य कई राजाओं को भी उन्होंने जीता। इस प्रकार दिग्विजय कर के और चारो दिशाओं के राजाओं को जीत कर पांडव लोग बहुत सा और बहुमोल धन समेट लाये। अंधे धृतराष्ट्र ने जब यह देखा कि शूरता, साहस और पराक्रम इत्यादि गुणों में पांडव ही बढ़ रहे हैं और सब जगह उन्हींकी प्रशंसा हो रही है तथा हमारे पुत्र कौरव पीछे पड़ रहे हैं तब उन्हें बहुत बुरा लगा। उनके मन में पांडवों के विषय में पापबुद्धि दौड़ने लगी। वे बारम्बार सोचते रहते कि किस उपाय से हमारे लड़कों की तारीफ हो और महत्व बढ़े; तथापि उन्हें कोई उपाय सूझ नहीं पड़ा। अन्त में धृतराष्ट्र ने कणिक नामक कुटिल राजनीतिज्ञ ब्राह्मण को अपने पास बुलवाया और एकान्त में ले जाकर यह पूछा कि वह कौन सा उपाय है जिससे पांडवों के उत्कर्ष

में बाधा पड़े। इस पर कणिक ने धृतराष्ट्र को जो उपदेश दिया वह 'कणिकनीति' के नाम से प्रसिद्ध है। पांडवों के नाश का उपाय पूछने पर कणिक ने यह बतलाया कि बलवान् शत्रु को निर्बल किस प्रकार पराजित करे। कणिक ने कहा, "अपने शत्रुओं के छिद्र हमेशा ढूँढ़ निकालते रहना चाहिये और होशियारी के साथ अपना ऐसा बर्ताव रखना चाहिये कि जिससे अपने दोष किसी पर प्रकट न होने पावें। यदि शत्रु का नाश करना है तो अधूरा न करके जड़मूल से नाश कर देना चाहिये; अन्यथा वही शत्रु इस प्रकार दुःख-दायक होता है जैसे अधूरा निकाला हुआ कांटा। जब देखे कि अंधापन या बहरापन स्वीकार कर लेने से लाभ होता है तब अंधे या बहरे की तरह बर्ताव करने लग जाना चाहिये। बहेलिया लोग जिस प्रकार हरिन के मन में विश्वास उत्पन्न करने के लिये, धनुष के आसपास घास लपेट कर और सोने का बहाना करके, जमीन पर भरी घास में पड़े रहते हैं और हरिन के पास आते ही बाण छोड़ कर उसका बध करते हैं, उसी प्रकार शत्रु से बर्ताव करना चाहिये। मौका देख कर शत्रु से मित्रता भी कर लेनी चाहिये। पर ज्योंही वह हाथ में आ जाय त्योंही उस पर दया माया न दिखा कर उसका समूल नाश कर डालना चाहिये। जिस प्रकार किसी अँकुसी से, फले हुए वृक्ष की डाल लचा कर, पके हुए फल तोड़ लेते हैं उसी प्रकार यज्ञकर्म, भगवें वस्त्र, जटा, इत्यादि साधनों से लोगों को अपने सामने नम्र करके फिर उन्हें खुशी से लूटना चाहिये!

वहेदमित्रं स्कंधेन यावत्कालस्य पर्ययः।
ततः प्रत्यागते काले भिन्द्याद्घटमिवाश्मनि॥

शत्रु प्रबल हो कर यदि सिर पर सवार हो जाय तो उसे वैसा ही सिर पर लिये हुए नाचना चाहिये। परन्तु मौका पाते ही, सिर के ऊपर की मिट्टी की गगरी जिस प्रकार पत्थर पर पटक कर फोड़ डाली जाती है, उसी प्रकार, उस शत्रु को एकदम नीचे मिट्टी में मिला देना चाहिये! शत्रु का नाश केवल दण्ड-(युद्ध) से ही नहीं करना चाहिये; किन्तु जैसा मौका मिल जाय उसी प्रकार साम (मैत्री), दान (घूस) और भेद (फोड़ कर) का भी उपयोग करना चाहिये। क्रोध यदि आ जाय तो उसे प्रकट न करना चाहिये और जो कुछ कहना हो हँसते हँसते कहना चाहिये। इसका कारण यह है कि क्रोध प्रकट हो जाने पर शत्रु सावधान होने लगता है। मौका आने तक, अपने प्रबल शत्रु के सामने, हाथ जोड़ना चाहिये, शपथें लेना चाहिये और मीठी मीठी बातें करना चाहिये, अपना सिर उसके पैरों पर रखना चाहिये, उसे आशा देनी चाहिये, आगे आने पर उसकी अगवानी करनी चाहिये और आसन देना चाहिये। और इस प्रकार विश्वास उत्पन्न होते ही, ठीक मौका देखकर, अपने तीक्ष्ण दांत और नख उसके शरीर में जोर से भोंक देना चाहिये! जिस शत्रु को शीघ्र ही नष्ट करना हो उसके घर में आग लगा कर उसका सत्यानाश कर देना चाहिये। शत्रु के विषय में सदा अपनी वाणी में नम्रता और हृदय में कठोरता रखनी चाहिये।

प्रहरिष्यन् प्रियं ब्रूयात् प्रहृत्यैव प्रियोत्तरं।
असिनापि शिरश्छित्वा शोचेत च रुदेत च ॥

चाहे शत्रु पर प्रहार करने का निश्चय हो चुका हो, तथापि उससे मधुर बोलना चाहिये; प्रहार करते समय भी मीठा ही बोलना चाहिये; और प्रहार करके उसका वध कर चुकने पर

भी बड़ी दया दिखलानी चाहिये, शोक करना चाहिये और रोने तक लगना चाहिये!

> नाच्छित्वा परमर्माणि नाकृत्वा कर्म दारुणं।
> नाहत्वा मत्स्यघातीव प्राप्नोति महतीं श्रियं॥

सारांश, यह तत्व सदा ध्यान में रखना चाहिये कि दूसरे के मर्मस्थान और छिद्र मालूम हुए बिना, दारुण कर्म किये बिना, और धीवर लोग जिस प्रकार मछली पकड़ते हैं उस कृति का अवलम्बन किये बिना, किसी हालत में भी, भारी वैभव प्राप्त नहीं हो सकता।" इस प्रकार कुटिल नीति का उपदेश करके अन्त में कणिक ने धृतराष्ट्र से एक कल्पित कहानी बतलाई, वह इस प्रकार है, "एक वन में स्यार, बाघ, चूहा, भेड़िया और लोमड़ी बड़ी प्रीति से रहते थे। उन्होंने एक दिन एक मोटी ताजी स्याही देखी और उसे मार डालने का निश्चय किया। स्यार की सुझाई हुई युक्ति के अनुसार, स्याही के सोते समय, चूहे ने उसके खुर कुतर डाले! इस कारण जब वह न भाग सकी तब बाघ ने उसे मार डाला। बाद को उसका मांस खाने के पहले स्यार ने सब को नदी पर स्नान करने के लिये भेज दिया और स्वयं मुर्दे की रक्षा करते हुए बैठा रहा। पहले पहल बाघ नदी से स्नान करके लौटा; स्यार उससे बोला, "अभी चूहा कहता था कि 'इतना बड़ा बाघ है; पर स्याही का पीछा करके उसे मारने का सामर्थ्य उसमें नहीं है। जब पहले मैंने उसके खुर कुतरे तभी बाघ उसे मार सका। आज अपने बाहुबल पर मैंने जो मांस कमाया है उसे खाकर बाघ तथा मेरे और स्नेही तृप्त होंगे!' यह बात चूहे ने बड़े तेहे के साथ कही है, इससे मेरी इच्छा नहीं है कि यह मांस खाया जाय।" यह सुन कर मानी बाघ निज-सामर्थ्य से भक्ष्य प्राप्त करने के लिये वहां से चलता

हुआ । बाद को नदी से स्नान करके मूसे मामा की सवारी आई; उससे स्यार बोला, ' अभी लोमड़ी कहती थी कि स्यारों का मांस विषैला होता है; इस लिये न खाना चाहिये । आज हम चूहे को खा कर ही अपनी भूख बुझावेंगे । ' यह बात मैं तुझे पहले ही से बतलाये रखता हूं, इस पर तुझे अपनी जान बचाने का जो उपाय करना हो सो कर । " यह सुन कर चूहा भग कर अपने बिल में जा छिपा ! बाद को भेड़िया आया, उससे स्यार बोला, " बाघ आज बहुत क्रुद्ध हो गया है । यह मांस खाने के लिये वह अपनी बाघिन को बुलाने गया है, इस लिये उसके आने के पहले ही हम लोग भग चलें तो अच्छा है ! " यह सुन कर भेड़िया ने स्यार के बतलाए हुए मार्ग का ही अवलम्बन किया ! अन्त में लोमड़ी वहां आ पहुँची; उससे स्यार बड़े तेहे के साथ बोला, " चूहा, भेड़िया और बाघ से युद्ध करके मैंने उन्हें जीत लिया है; और उन्हें भगा दिया है । तू यदि यह मांस खाना चाहती हो तो पहले मुझसे युद्ध कर । " लोमड़ी ने समझ लिया कि अत्यन्त बलवान् बाघ, क्रूर भेड़िया और चपल तथा चतुर चूहे को भी जिसने जीत लिया उसके सामने मेरी क्या चल सकती है; इसलिये लोमड़ी भी वहां से चलती हुई । बाद को स्यार ने अकेले ही वह मांस यथेच्छ रीति से खाया । इस प्रकार जैसा शत्रु मिल जाय वैसा ही वर्ताव करना चाहिये । ऐसा करने से स्यार की तरह सफलता प्राप्त होगी "- (आदिपर्व, अ० १३९,१४०)

पांडवों का वैभव और सामर्थ्य दिन दिन ज्यों ज्यों बढ़ने लगा त्यों त्यों दुर्योधन आदि भाइयों के मन में, पांडवों के विषय में, द्वेषाग्नि अधिकाधिक ही भड़कने लगी । विचित्रवीर्य के धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर तीन पुत्र थे । दासी पुत्र

होने के कारण विदुर को राज्य मिल ही न सकता था। रहे धृतराष्ट्र और पांडु; इनमें धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे; इस कारण राज्य पांडु को मिला था। धृतराष्ट्र यदि अंधे न होते तो राज्य उन्हींको मिलता; क्योंकि वे बड़े भाई थे और उनके बाद क्रम से फिर दुर्योधन को मिल कर उसकी अनिवार्य राज्य-तृष्णा पूर्ण हुई होती। परन्तु धृतराष्ट्र का अंधापन बीच में विघ्न आ गया; इस कारण छोटे चाचा के ही लड़कों को राज्य मिल कर राजकुल में उत्पन्न होने पर भी, दुर्योधन को साधारण क्षत्री की तरह रहना था। और इसी नियम के अनुसार कुछ बातें होने भी लगी थीं। धृतराष्ट्र ने युधिष्टिर को ही युवराज बनाया; और उनके भाई अन्य पांडवों ने दिग्विजय करके उनकी कीर्ति चारों ओर फैला दी। धर्म (युधिष्टिर) की दयालुता और न्यायबुद्धि तथा भीम-अर्जुन का सामर्थ्य और पराक्रम देखकर चारों ओर लोग उनकी प्रशंसा करने लगे और खुल्लमखुल्ला कहने लगे कि हम धर्म ही को अपना राजा चाहते हैं! इस प्रकार राज्यलक्ष्मी पांडवों को ही जयमाल पहनावेगी और हम राज्यहीन होकर पीछे पड़े रहेंगे-इस प्रकार के विचार दुर्योधन के मन में बारम्बार आने लगे और दुःख से उसका हृदय जलने लगा! वह न्याय के उपायों से भी इस दुःख का परिहार कर सकता था। न्याय का यह उपाय सहज ही किया जा सकता था कि कौरव-पांडव जब कि पितृपरम्परागत राज्य के एक समान ही स्वामी हैं तब दोनों को बराबर बराबर भाग कर लेने चाहिये। परन्तु अपनी स्थिति के लिये दुष्टों को जितना दुःख होता है उतना ही उन्हें सज्जनों पर मत्सर भी होता है। दुर्योधन सभी राज्य छीनना चाहता था। इस लिये दुर्योधन, कर्ण, शकुनी और दुःशासन ने आपस में यह विचार किया कि

किसी न किसी उपाय से पांडवों को हस्तिनापुर से बाहर भेज कर कुछ दिन के लिये राज्य अपने हाथ में ले लेना चाहिये; और फिर मंत्री तथा अन्य अधिकारी अपने अनुकूल करके अपनी जड़ जमा लेना चाहिये; इतने के बाद पांडव यदि लौट भी आवें तो वे फिर हम लोगों से राज्य छीन नहीं सकते! दुर्योधन ने, मौका पाकर, यह विचार धृतराष्ट्र से भी प्रकट किया। दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहा, कि पितृपरम्परा-क्रम से राज्य के सच्चे अधिकारी तुम्हीं हो; परन्तु केवल तुम्हारी जन्मान्धता के कारण राज्य पांडु को मिल गया। वास्तव में इतने ही से राज्य का हमारा हक नहीं जाता। परन्तु पांडु को मिला हुआ राज्य अब हमारी ओर कैसे आवेगा; पांडव पराक्रमी और शूर हैं; इस कारण प्रजा भी उन्हींकी तरफ झुकती है; इस लिये राज्य उन्हींके पास रहेगा और हम राजकुल में उत्पन्न हो कर भी पराधीन बने रहेंगे। अब ऐसी कुछ तजवीज करो कि जिससे यह प्रसंग हम सौ भाइयों पर-तुम्हारे सौ बच्चों पर-न आवे। अपनेको और अपने पुत्रों को राज्यहीन देख कर धृतराष्ट्र के मन में भी पहले ही से कपट आ गया था! परन्तु पांडव शूर और सद्गुणी थे और न्याय के अनुसार राज्य भी उन्हींका था; इस कारण धृतराष्ट्र ने उनके विषय में अपना द्वेष प्रकट नहीं किया था। अन्त में दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, शकुनी और धृतराष्ट्र की मसलहत हुई और दुर्योधन ने अपने कुछ लोभी मंत्री वश में कर लिये और उनसे कहा कि तुम पांडवों के पास जाकर ऐसी बातें निकालो कि "वारणावत नगर में महादेवजी का बड़ा उत्सव होनेवाला है, वह देश और वह नगर देखने लायक है।" धृतराष्ट्र ने भी अपनी यह इच्छा प्रदर्शित की कि पांडव कुन्ती-सहित वह उत्सव देखने के लिये जावें। युधिष्ठर के मन में उसी समय यह संशय आया कि इसमें कुछ न कुछ कपट

अवश्य है; तथापि उन्होंने यह विचार करके, कि धृतराष्ट्र चाहे जैसे हो, बड़ों की आज्ञा के अनुसार चलना चाहिये; फिर उसमें हमारा कुछ भी हो, उत्सव में जाना स्वीकार किया। दुर्योधन को ज्योंही यह बात मालूम हुई कि पांडव वहां जानेवाले हैं त्योंही उसने अपने विश्वसनीय मंत्री पुरोचन को अपने पास बुलाया: और आज्ञा दी कि पांडवों के पहुँचने के पहले ही तुम वारणावत को जाओ और वहां इनके लिये शीघ्र जल उठनेवाली लकड़ियों तथा अन्य द्रव्यों का महल तैयार करो तथा उसकी दीवालें राल, लाख इत्यादि ज्वालाग्राही पदार्थों की तैयार करो। जब पांडव उसमें रहने लगें तब एक दिन रात को, उन्हें न मालूम होते हुए, उस महल में सब जगह आग लगा दो! दुष्टबुद्धि पुरोचन ने यह सब स्वीकार कर लिया: और गधों के रथ में बैठ कर पांडवों से आगे वारणावत में जा पहुँचा तथा दुर्योधन के आज्ञानुसार उसने महल तैयार कर रखा।

इधर अपनी मा कुन्ती और भाइयों के साथ युधिष्ठिर भी भीष्म आदि बड़ों की आज्ञा लेकर वारणावत के लिए चले। दुर्योधन और पुरोचन का दुष्ट विचार विदुर को मालूम हो गया था। युधिष्ठिर को पहुँचा कर लौटने के पहले विदुर ने म्लेच्छ भाषा में यह सूचित कर दिया कि अलोह (विना लोह के) शस्त्रों से सावधान रहना और वननाशक तथा हिमनाशक पदार्थों (अग्नि) से स्यार की तरह (जमीन में विवर बनाकर) अपनी रक्षा कर लेना।" इस पर धर्म ने भी उसी भाषा में उत्तर दिया कि "समझा;" और फिर यह हाल उन्होंने कुन्ती तथा अपने भाइयों से भी बतला कर सदा सावधान रहने की ताकीद कर दी। कुछ दिन चल कर वे सब वारणावत में आ पहुँचे; और पुरोचन के तैयार किये हुए महल में

रहने लगे। शिकार के निमित्त से वे प्रति दिन वन में इस लिए घूमने लगे कि जिससे मौका पड़ने पर रात को भी वन में मार्ग मिल जाय। फिर कुछ दिन के बाद विदुर ने अपना एक विश्वसनीय खनक (खोदनेवाला) विवर खोदने के लिए पांडवों के पास भेजा, जिससे लाक्षागृह से वे लोग बाहर निकल जा सकें। उनके द्वारा महल के बीचों बीच एक अच्छा बड़ा विवर तैयार करवाया और उसे भीतर ही भीतर खोल कर उसका दूसरा द्वार वन में ला पहुँचाया; और महल का यह द्वार होशियारी के साथ बन्द कर दिया कि जिससे और किसीको न मालूम हो सके। इस प्रकार सावधानी से और बन्दोबस्त के साथ पांडव उस महल में करीब एक वर्ष रहे। पुरोचन यह जान कर कि, अब पांडव असावधान हैं और हमारे काम का यही अच्छा समय है, उस महल में शीघ्रही आग लगानेवाला था। पर वह विचारा क्या जाने कि परमेश्वर सज्जनों की रक्षा करता है और उन्हें वह सब संकटों से मुक्त करता है। पांडवों ने उसीकी युक्ति से उसीका काम तमाम कर दिया! एक बार कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को कुन्ती ने ब्राह्मणभोजन कराया था। उस समय एक निषादी (भिल्लिन) अपने पांच लड़कों के साथ वहां आई; वे छै मनुष्य खूब दारू पीकर और बेहोश होकर उस रात में उस महल में ही सोये; यह बात भीमसेन को न मालूम थी। उस दिन जब चारों ओर गहरा अँधेरा छा गया कौर सुनसान हो गया तब आधी रात के लगभग भीमसेन ने, दरवाजे के पास जिस आयुधागार (शस्त्र रखने की जगह) में दुष्ट पुरोचन गहरी नींद सो रहा था उस आयुधागार में ही पहले पहल बत्ती लगा दी; इसके बाद सारे महल के अन्य स्थानों में भी आग लगा दी! बाद को विवर का द्वार खोल कर अपने भाइयों और कुन्ती

के साथ भीमसेन निकल गये और दूसरे द्वार से वन में जा निकले। रातही रात जल्दी से मार्ग चल कर वे गंगानदी के समीप आ पहुँचे। उस जगह विदुर ने अपने एक विश्वासू मल्लाह की नाव रखवा दी थी। उसमें बैठ कर वे पार उतर गये; और फिर रात ही में शीघ्रता के साथ मार्गक्रमण करने लगे (इधर पांडवों के महल में आग लगी हुई देख कर वारणावत के निवासी दौड़ आये। उसी समय लोगों को मालूम हो गया था कि किसी न किसी निमित्त से पांडवों को हस्तिनापुर से बाहर भेज देने में धृतराष्ट्र का कोई न कोई दुष्ट हेतु अवश्य होना चाहिये। अब तो, जिस महल में वे रहते थे उसमें आग लगी हुई देख कर कौरवों की दुष्टता के विषय में सब का विश्वास हो गया। दूसरे दिन जब अग्नि शान्त हुई तब पुरोचन, एक स्त्री और पांच पुरुषों के शव निकले। सब ने समझा कि ये लाशें कुन्ती और पांडवों ही की हैं; इस लिये सब को अत्यन्त दुःख हुआ। ज्योंही यह समाचार हस्तिनापुर पहुँचा त्योंही कणिक गुरु के उपदेशानुसार धृतराष्ट्र, दुर्योधन, आदि ने बड़ा शोक मनाया और कुन्ती तथा पांडव के राजकुल को शोभा देने योग्य उनकी उत्तरक्रिया की। केवल विदुर को सच्चा हाल मालूम था; इस कारण उन्होंने विशेष शोक आदि न करके औरों के साथ थोड़ा दुःख प्रदर्शित किया।

इधर कुन्ती और अपने भाइयों को साथ लिये भीमसेन वन वन चले आ रहे थे। एक दिन मार्ग में कुन्ती को बहुत प्यास लगी। तब उन सब को एक बरगद के वृक्ष के नीचे उतार कर भीमसेन पानी ढूँढ़ते हुए घूमने लगे। पानी मिलने पर उन्होंने स्वयं पिया और अपने भाइयों तथा माता के लिये थोड़ा सा अपने वस्त्र में डुबो कर ले आये। यहां बरगद की साया में, मार्गश्रम के कारण, चारों पांडव और कुन्ती को निद्रा आ गई थी। कुन्ती के समान राजस्त्री और पांडवों

के समान राजपुत्रों को, राज्यलोभी और दुष्ट कौरवों के कपट से, अरण्य में, वृक्ष के नीचे, पृथ्वी पर, सोने का मौका आया; इस कारण भीमसेन का चित्त बहुत उद्विग्न हुआ। उस दुःख-दायक विचार के कारण उन्हें नींद नहीं आई; इस लिये वे उनके पास ही बैठे जागते रहे। उस वन में हिडिंब नामक एक नरमांस-भक्षक क्रूर राक्षस अपनी बहन के साथ रहता था। उस राक्षस को मनुष्य की बास पहुँची और उसके मुँह में पानी भर आया। उसने हिडिंबा को यह देखने के लिये भेजा कि बरगद के वृक्ष के नीचे कौन और कितने मनुष्य बैठे हैं। वह पांडवों के पास आई और भीम का यह शरीर तथा सुन्दरता देख कर तत्काल मोहित हो गई; और मनोहर रूप धारण करके तथा अपने भाई का दुष्ट-हेतु भीम से बतला कर इस प्रकार बोली, "मैं तुम पर मोहित हो गई हूं; यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मैं अपने भाई से तुम्हारी सब की रक्षा करने के लिये तुम सबको पीठ पर लेकर आकाश में उड़ जाऊं।" परन्तु सद्गुणी और शूर भीमसेन को यह बात पसन्द नहीं आई कि हमारी माता और भाई सोते हुए जगाये जायँ और हम जीवन की आशा से डरकर भग जायँ। इधर हिडिंब राक्षस ने जब देखा कि हमारी बहन के लौटने में देर लगी तब वह स्वयं वहां आया और उसने अपनी बहन का उपर्युक्त कथन सुना। जब उसे मालूम हुआ कि हमारी बहन राक्षसी होकर मनुष्य के वश होना चाहती है तब उसे बड़ा सन्ताप हुआ और वह पहले अपनी बहन का ही वध करने के लिये उस पर टूट पड़ा। प्रेम में पागल परन्तु निरपराधी स्त्री को-बहिन को-मार डालने के लिये हिडिंब आगे बढ़ा; इस कारण भीमसेन ने उसकी बड़ी निर्भर्त्सना की और उन्होंने यह निश्चय किया कि नरमांस-भक्षक इस राक्षस को मार कर इस वन को, और आस पास के प्रदेश को, निर्भय कर देने का यह अच्छा मौका

है। हिडिंब ने अपनी बहन पर जो हाथ उठाया था उसे भीम ने पकड़ लिया और तुरन्त ही दोनों में, बड़े आवेश के साथ बाहुयुद्ध शुरू हो गया! वह युद्ध बहुत देर तक जारी रहा; उसी गड़बड़ में कुन्ती और पांडव जगे; देखते क्या हैं कि एक सुन्दर स्वरूपवान् स्त्री आगे खड़ी है? कुन्ती के पूछने पर उसने अपना सब हाल बतलाया और कहा कि भीम और हिडिंब का बाहुयुद्ध हो रहा है। यह सुनते ही चारों पांडव वहां गये जहां युद्ध हो रहा था। अर्जुन ने भीम को यह सूचित किया कि "संध्याकाल के समान 'रौद्रमुहूर्त' के समय राक्षस अधिक प्रबल हो जाते हैं; इस लिये उस वेला के पहले ही इस राक्षस को मार डालो।" यह संकेत पाते ही भीमसेन ने राक्षस को एकदम ऊपर उठा लिया और बड़े वेग से चारों ओर फिरा कर पृथ्वी पर पटक दिया। राक्षस मर गया। मरते समय उसने "आर्द्र (पानी से भीगी हुई) दुंदुभी" की तरह, दुःख से, किलकारी छोड़ी। निर्बल मनुष्यों को सतानेवाले क्रूर पुरुष जब बहुत प्रबल होते हैं तब उनका संहार करके पृथ्वी का भार उतारने के लिये परमेश्वर भीमसेन के समान शक्तिमान और दीनदुखियों की सहायता करनेवाले पुरुष उत्पन्न करता है। भीमसेन के हाथ से हिडिंब के समान और भी बहुत से राक्षस यमसदन को जानेवाले थे, इस सत्कार्य का श्रीगणेशायनमः ही उन्होंने हिडिंब को मार कर किया! अस्तु, भीमसेन यह समझ कर कि, राक्षसों की जात मायावी और दीर्घद्वेषी होती है, हिडिंबी को भी उसके भाई के पीछे ही यमलोक को पहुँचाना चाहते थे। परन्तु युधिष्ठिर ने उनसे कहा कि हिडिंब राक्षस का वध करनेवाले भीम को हिडिंबी से क्यों डरना चाहिये; इसके सिवाय स्त्री-

हत्या करना ठीक भी नहीं है। इधर राक्षसी ने भी कुन्ती की अत्यन्त दीनवाणी से विनती की; इस लिये उन्होंने भीम से उसके न मारने की शिफारिस की। भीम के विषय में उसकी जो लालसा थी वह उसने कुन्ती से पहले ही बतला रखी थी। इस लिये सब के विचार से यह निश्चय हुआ कि "संध्याकाल होने तक वह भीम को चाहे जहां ले जा कर रखे; परन्तु रात के समय उनको पांडवों के पास लाकर पहुँचा दे।" भीम ने भी अपनी यह शर्त उससे बतला दी कि जब तक तेरे पुत्र न होगा तभी तक तुझसे ऐसा सम्बन्ध रखा जायगा। हिडिंबा ने ये दोनों शर्तें कबूल कर लीं और उस दिन से वह दिन में भीम को वन के रमणीय स्थानों में ले जाने लगी और रात को उन्हें कुन्ती तथा पांडवों के पास पहुँचा जाने लगी। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर उसके एक लड़का हुआ। उसका नाम उसने 'घटोत्कच' रखा।

इसके बाद पांडवों ने जटावल्कल पहन कर तपस्वियों का वेष धारण किया; और मत्स्य, त्रिगर्त, पांचाल, कीचक, इत्यादि देशों से प्रवास करते हुए वे आगे बढ़े। प्रवास में जो समय मिलता था उसमें उन्होंने उपनिषदों और वेदांगों का अध्ययन किया। फिर भगवान् व्यास ने आकर उन्हें दर्शन दिया! "इस वनवास से तुम्हारा कल्याण ही होगा; सब संकटों से मुक्त हो कर धर्मराज पृथ्वीपति होंगे।" यह आशीर्वाद देकर उन्होंने कुन्ती और पांडवों का समाधान किया। इसके बाद पास ही की एकचक्रा नामक नगरी में लाकर व्यास ने उन्हें एक ब्राह्मण का घर बतलाया और वहां एक मास रहने के लिये कह कर वे अपने आश्रम को लौट गये—(आदिपर्व, अ॰ १५२-१५६)

एकचक्रा नगरी में उस ब्राह्मण के घर में रह कर पांडव
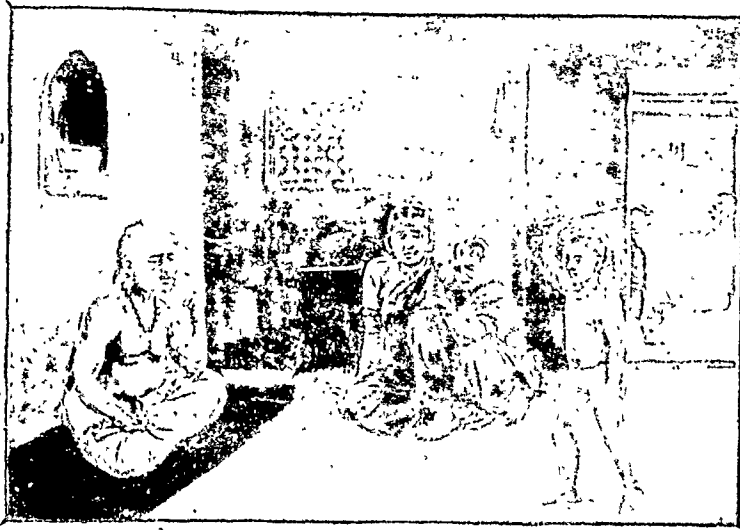
"मैं अभी उस राक्षस को मारे डालता हूं।" (पृ० ४६)

भीम ने उसकी ओर पीठ फिरा कर अपने भोजन का क्रम वैसा ही जारी रखा। (पृ० ५०)
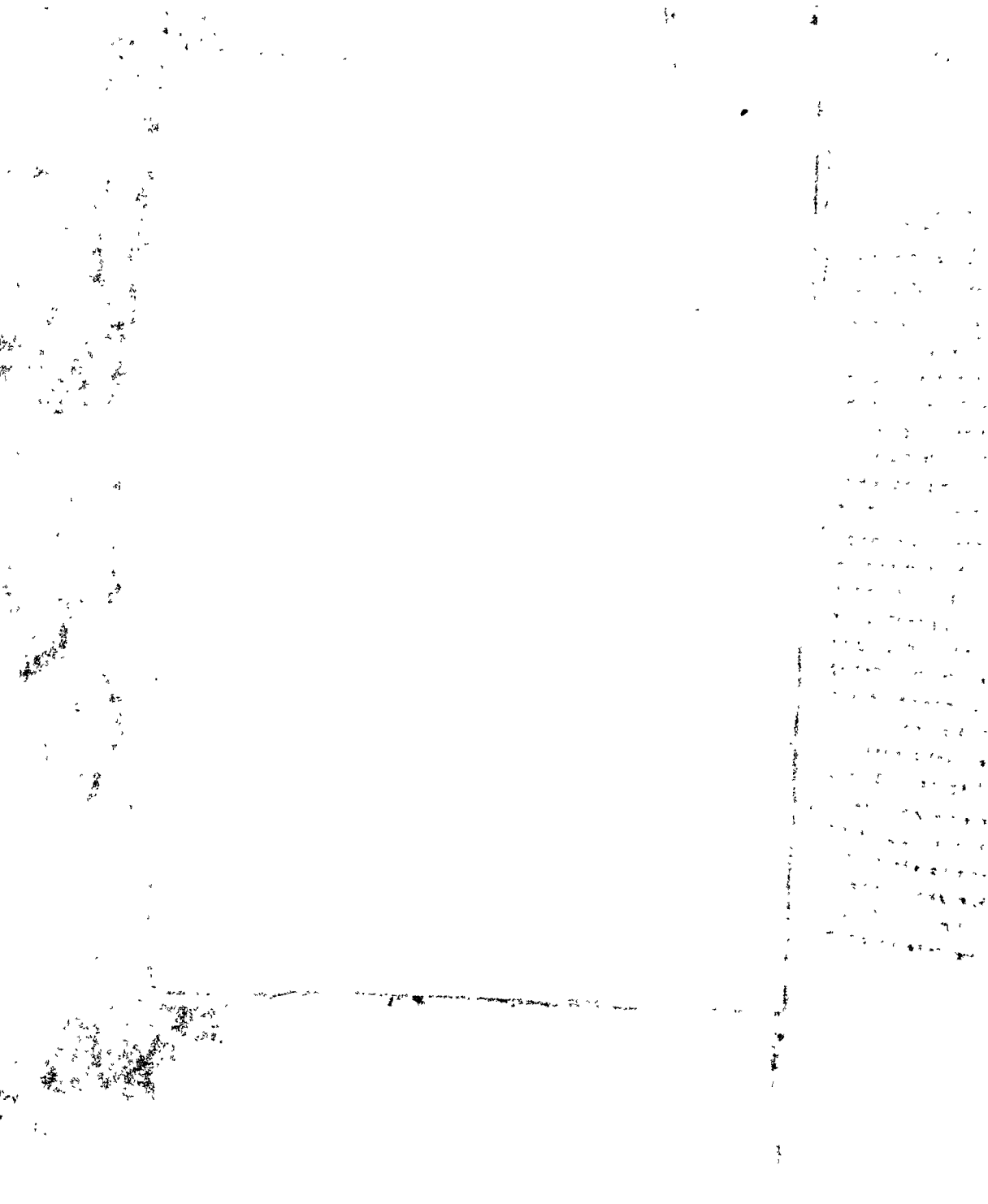
क्षत्रियों का कर्तव्य है, यह कर्तव्य पूर्ण करने के लिये हमें अपने प्राणों की भी कुछ परवा न करके हरदम तैयार रहना चाहिये।" इस पर धर्म ने विशेष बहुतसा और कुछ उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन सुबह होते ही भात एक गाड़ी में लाद कर और उसमें दो भैंसे जोत कर उसे हांकते हुए भीमसेन राक्षस के वन में गये। राक्षस को पहले बहुत पुकार कर फिर भीमसेन, उसके लिये लाया हुआ अन्न स्वयं ही खाने लगे। वह उनकी सुबह की कलेवा थी! राक्षस ने देखा कि गाड़ी के साथ आया हुआ मनुष्य हमेशा की तरह डर से जो पहले ही मृतप्राय हो जाता था वह आज वैसा नहीं हुआ और हमारे लिये लाया हुआ अन्न स्वयं ही बैठा खा रहा है। यह देख कर राक्षस बहुत ही क्रुद्ध हुआ और बड़ी बड़ी किलकारें मारते हुए वहां आया। इधर भीम ने उसकी गर्जना की ओर कुछ भी ध्यान न दिया; किन्तु उसकी ओर पीठ फिराकर अपने भोजन का क्रम वैसा ही जारी रखा! यह देख कर तो वह और भी जल उठा और भीम की पीठ पर लगातार मुष्टि-प्रहार करने लगा। परन्तु कलेऊ समाप्त होने तक भीम ने उसकी ओर कुछ बहुत ध्यान नहीं दिया! इसके बाद वह राक्षस एक पेड़ उखाड़ कर भीम की ओर बड़े वेग से दौड़ने लगा। इतने ही में इनकी सुबह की कलेवा समाप्त हुई और ये भी हाथ मुँह धो कर, डकार कर, युद्ध के लिये तैयार हुए। वृक्षों और शिलाओं से दोनों का बहुत देर तक भयंकर युद्ध होता रहा। अन्त में भीम ने उस राक्षस को जमीन पर पेट के बल गिरा दिया। इसके बाद दाहना हाथ उसके गले के नीचे डाल कर बाएं हाथ से उसका कमरपट्टा पकड़ कर भीम ने उसकी पीठ पर गांठ भिड़ाई; और दोनों हाथों से मरोड़ कर उसके शरीर की घड़ी कर दी! बाद को वह मुर्दा खींचते हुए लाकर

नगर के मार्ग में आड़ा रख दिया; और भीमसेन, किसीको न मालूम होते हुए, लोगों के जगने के पहले ही, अपने निवास-स्थान में आ गये। सुबह राक्षस का वह भयंकर शव मार्ग में पड़ा हुआ जब लोगों ने देखा तब सब को बहुत आश्चर्य और आनन्द हुआ। इस बात का खोज लगाने के लिये, कि इस राक्षस को किसने मारा, कुछ लोग उस ब्राह्मण के पास आ कर पूछने लगे। इस पर पांडवों के यजमान उस ब्राह्मण ने यह कह कर उन ब्राह्मणों को टाल दिया कि, "कोई सिद्ध पुरुष आकर आज का अन्न ले गया था; उसीने राक्षस को मारा होगा।" भीम के इस कृत्य से आस पास के राक्षसों में इतनी दहशत उत्पन्न हो गई कि उस दिन से नरमांस भक्षण करना उन्होंने बिलकुल ही छोड़ दिया-(आदिपर्व, अ० १५७-१६४)

एकचक्रा नगरी में कुछ दिन रहने के बाद एक समय उनके घर में एक पांथस्थ ब्राह्मण आया। उसके कहने से पांडवों को मालूम हुआ कि पांचाल देश की राजकन्या द्रौपदी का स्वयंवर है। उस ब्राह्मण ने राजा द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न और कन्या द्रौपदी के विषय में पांडवों से यह कथा बतलाईः-द्रोणाचार्य ने राजा द्रुपद को जीत कर जब उसका आधा राज्य ले लिया तब उसका मन बहुत उद्विग्न हुआ और वह इस विवंचना में पड़ा कि द्रोणाचार्य का वध करके बदला लेनेवाला पुत्र हमारे किस प्रकार पैदा हो। वह सब ब्राह्मणों से यह पूछते हुए चारों ओर घूमने लगा कि इस प्रकार का पुत्र होने के लिए क्या उपाय किया जाय? उसने इसी हेतु से 'उपयाज,' नामक ऋषि की वर्षभर सेवा की। उस ऋषि ने द्रुपद को अपने भाई 'यांज' के पास भेजा। याज ने उससे पुत्र-कामेष्टि यज्ञ करने के लिए कहा। द्रुपद ने यह यज्ञ याज के ही हाथ से करना शुरू किया। उस समय यज्ञ में तैयार किये हुए हवि-र्भाग का सेवन करने के लिए याज ने द्रुपद की रानी को बु-

लाया, परन्तु तब तक उसने स्नान आदि न किया था, इस कारण वह समय पर नहीं आ सकी। इधर याज ने जब देखा कि रानी नहीं आती तब हविर्भाग अग्नि ही को अर्पण कर दिया। तुरन्त ही खड्ग कवच और धनुष धारण किये हुए, रथ पर आरूढ़, एक कुमार अग्नि से बाहर प्रकट हुआ! और वेदी से ही एक काली सांवली परन्तु अत्यन्त सुन्दर कन्या बाहर निकली! उस समय यह आकाशवाणी हुई कि 'यह सब स्त्रियों में श्रेष्ठ होगी और इसके कारण सब कौरवों तथा क्षत्रियों का नाश होगा और इस बालक के हाथ से द्रोणाचार्य का वध होगा।' कुमार का नाम धृष्टद्युम्न और कन्या का नाम कृष्णा रखा गया!" ब्राह्मण के इस भाषण से यह जान कर कि द्रौपदी का स्वयम्वर होनेवाला है, पांडवों ने सोचा कि वहां जाना चाहिए। व्यास ने भी वहां आकर द्रौपदी के पूर्व जन्म का हाल उनसे बतलाया। वे बोलेः—"पहले एक ऋषि के एक सुन्दर रूपवान् कन्या थी; परन्तु दुर्दैव से उसे पति न मिलने के कारण उसका विवाह नहीं हो सका; इस कारण तपस्या करके उसने महादेवजी को प्रसन्न किया। वर मांगते हुए वह पाँच बार इस प्रकार बोली कि "पतिं देहि," "पतिं देहि"। उस समय शंकर ने उसे यह वर दिया कि "अगले जन्म में तेरे पाँच पति होंगे।" वही कन्या सांप्रत राजा द्रुपद के यज्ञ की वेदी से प्रकट हुई है। वह तुम पाँचों की भार्या होगी, इस लिए तुम उसके स्वयंवर को जाओ।" इतना कहकर व्यासजी वहां से चले गये। इसके बाद एक शुभ दिन कुन्ती और पांडव द्रुपद की राजधानी को चले। प्रवास में रात को मार्ग देख पड़ने के लिए अर्जुन दिया लेकर सबके आगे चलते थे। इस प्रकार मार्गक्रमण करते हुए वे गंगा नदी के किनारे आ पहुँचे। सोमाश्रयण तीर्थ के पास रात्रि की शान्त वेला में अंगारपर्ण नामक गन्धर्व अपनी स्त्रियों सहित जल-

क्रीड़ा कर रहा था। पांडवों के आने से उसकी क्रीड़ा में व्यत्यय आया; इस कारण क्रोधित होकर उसने पांडवों पर बाणवर्षा शुरू कर दी; पर अर्जुन ने ललकार कर कहा कि समुद्र-किनारे, नदी के तीर और हिमालय पर्वत की तराई में किसीकी सत्ता नहीं है, वहां आने के लिए सब को अधिकार है। इतना कह कर, गंधर्व के बाणों के बदले में, उन्होंने आग्नेयास्त्र छोड़ कर उसका रथ भस्म कर दिया: इस पर वह भागने लगा; परन्तु अर्जुन ने उसकी चोटी पकड़ कर उसे पीछे खींच लिया और उसे कैद करके युधिष्ठिर के पास ले आये। उसकी स्त्री कुंभीनसी ने युधिष्ठिर से प्रार्थना की कि हमारे पति को जीवदान दिया जाय। धर्म यह बात जानते थे कि शत्रु चाहे हाथ में आजाय, तथापि, यदि वह शरणागत हो तो, उसकी रक्षा करना क्षत्रियों का कर्तव्य है; इस कारण उनकी आज्ञा से अर्जुन ने उसे जीवदान दिया। अर्जुन ने उसका रथ जला डाला, इस कारण आगे से उसने अपना नाम 'चित्र-रथ' धारण किया। अर्जुन और गन्धर्व की मित्रता हो गई, अर्जुन ने उसे आग्नेयास्त्र दिया और उससे स्वयं गन्धर्वास्त्र लिया। इसके सिवा गन्धर्व ने उन्हें चक्षुर्विद्या दी और सौ कान्तिवन्त घोड़े नजर किये—(आदिपर्व, अ० १६५-१७०)

इसके बाद चित्ररथ के बतलाने पर वे सब 'उत्कोचक' तीर्थ को गये। उस जगह देवल ऋषि का छोटा भाई धौम्य था, उसे अपना पुरोहित बना कर पांडवों ने उसको अपने साथ ले लिया और आगे मार्ग चलने लगे। मार्ग में उन्हें स्वयंवर के लिए ही पांचाल देश को जानेवाले कुछ ब्राह्मण मिले। उनके ही मेले में शामिल होकर ये ब्राह्मण-वेषधारी पांडव भी जाने लगे। बाद को दक्षिण पांचाल में मंजिल-दर-मंजिल चलते हुए सब लोग कुछ दिनों में द्रुपद की राजधानी में जा पहुँचे।

पांडवों ने उस नगर में एक कुम्हार के घर में अपना डेरा डाला और फिर अपनी पूर्व की भिक्षावृत्ति स्वीकार की-(आदिपर्व, अ० १८३)

नगर की ईशान दिशा में एक विस्तीर्ण और भव्य स्वयंवर-मंडप तथा उत्तर दिशा की ओर स्वयंवर के लिए आये हुए राजाओं के शिविर द्रुपद ने तैयार करवाये थे। वह अपनी कन्या वीरश्रेष्ठ अर्जुन ही को देना चाहता था। इस लिए उसने एक दृढ़ धनुष तैयार करवाया और एक 'वैहायस' (आकाश में घूमनेवाला) यंत्र तैयार करवाया; और उसे स्वयंवर-मण्डप में खड़ा किया। इसके बाद द्रुपद ने प्रकट किया कि उस धनुष से पाँच बाण, उस घूमते हुए यंत्र के छिद्र से डाल कर, जो पुरुष यंत्र के ऊपर लटकती हुई मछली को भेद कर नीचे गिरा देगा उसे द्रौपदी जयमाल पहनावेगी। राजा द्रुपद का हेतु यह था कि अर्जुन को छोड़ कर न और कोई यह कठिन कार्य कर सकेगा और न अन्य किसीको द्रौपदी मिलेगी। इस प्रकार सब तैयारी हो जाने पर नियत समय पर राजा, राजपुत्र, ब्राह्मण, ऋषि, प्रेक्षक, पौरजन आदि लोगों से सारा मंडप भर गया। राजा द्रुपद के पुरोहित ने आरम्भ में यथाविधि स्वस्तिवाचन करके होमहवन किया। बाद को नहा कर शुभ्र साड़ी पहने हुए और हाथ में सुवर्ण-माला लिए हुए, द्रौपदी अपने भाई धृष्टद्युम्न के साथ रंगमण्डप में आई। सब वाद्य बन्द होकर चारों ओर शान्ति हो जाने पर अपनी बहन का नाम, कुल और गोत्र उच्चार करके धृष्टद्युम्न बोलाः—"यहां जो यह धनुष रखा है उसे टेढ़ा करके और उसमें प्रत्यंचा चढ़ा कर ये पांच बाण यंत्र के छिद्र से डाल कर, ऊपर का लक्ष्य भेद कर जो नीचे गिरा देगा और जो कुल, रूप और बल से युक्त होगा-ऐसे पुरुष को द्रौपदी वरेगी।" इसके बाद, जितने राजा जमा हुए थे उन सब के नाम धृष्टद्युम्न ने

द्रौपदी को वतला दिये। वहां वलराम के साथ श्रीकृष्ण भी आये थे। यद्यपि और किसीको न मालूम था कि ये पांडव हैं; तथापि ब्राह्मणों के समुदाय में वैठे हुए अपने फुफेरे भाइयों को श्रीकृष्ण ने पहचान लिया और वलराम को भी उन्होंने दिखाया।

पण के अनुसार लक्ष्यभेद करके द्रौपदी के समान रत्न प्राप्त करने के लिये अनेक राजा, वड़े उत्साह के साथ, आगे वढ़े। परन्तु वह धनुष वहुत प्रयत्न करने पर भी कोई नहीं नवा सका; फिर मत्स्यभेद की वात तो दूर ही है। जव वहुत से राजा इस काम से निराश हो गये तव कर्ण आगे वढ़ा; और उसने तुरन्त धनुष लचा कर और उसे सज्ज करके उस पर वाण चढ़ा दिया! कर्ण वाण छोड़ना ही चाहता था कि द्रौपदी कहने लगी "नाहं वरयामि सूतम्" (मैं सारथी के लड़के को न वरूंगी।) यह सुन कर कर्ण किंचित् हँसा और सूर्य की ओर देख कर धनुष नीचे रख दिया। इसके वाद शिशुपाल, जरासंध, शल्य, इत्यादि राजाओं के वल की भी परीक्षा हुई। इस प्रकार जव सव राजाओं के प्रयत्न निष्फल हुए और सव लज्जित हुए तव ब्राह्मण-मंडली में अर्जुन खड़े हो गये। उन्हें देखते ही कुछ ब्राह्मण आपस में कहने लगे "अरे यह तो विलकुल ही छोकरा है! जो काम वड़े वड़े क्षत्रियों से नहीं हो सका उसे करने के लिये तैयार होकर, इस राजमण्डल में, सव ब्राह्मणों की हँसी कराने के लिये इसे कारणीभूत न होना चाहिये। दूसरे कितने ही ब्राह्मणों ने उनके तेज, सामर्थ्य और 'सिंहखेलगति' की तारीफ़ की और यह समझ कर, कि द्रौपदी इन्हें अवश्य मिलेगी, आनन्द से उन्होंने अपने मृगासन ऊपर उड़ाये! मंडप के मध्यभाग में जा कर अर्जुन ने पहले पहल धनुष की प्रदक्षिणा की, और यह जान कर, कि सव सामर्थ्य और यश ईश्वरी कृपा का फल है, उन्होंने महादेव को भक्ति-

पूर्वक नमस्कार किया और श्रीकृष्ण का स्मरण करके धनुष हाथ में उठा लिया! और कौतुक ही से उसे एक क्षण में सज्ज करके पांचों बाण यंत्र के छिद्र से पार करके, ऊपर के मत्स्य का भेद करके उसे नीचे गिरा दिया! उस समय चारों ओर से अर्जुन पर पुष्पवृष्टि हुई। अर्जुन का हस्तकौशल, तेज और स्वरूप देख कर द्रौपदी ने, आगे बढ़ कर, हर्षपूर्वक, उनके गले में जयमाला पहना दी। इसके बाद अर्जुन पांडवों के साथ स्वयंवर-मंडप से ज्योंही बाहर निकले त्योंही द्रौपदी भी अपने पति के पीछे पीछे बाहर निकली उस समय सब राजा लोग यह कह कर द्रुपद और उन ब्राह्मणरूपी पांडवों से युद्ध करने के लिये तैयार हुए कि "स्वयंवर क्षत्रियों के लिये है। उसमें यदि ब्राह्मण लोग पड़कर गड़बड़ करें तो यह अयोग्य बात है। ब्राह्मण यदि पण जीत कर क्षत्रिय राजकन्या द्रौपदी प्राप्त करें तो यह क्षत्रियों का अपमान है।" द्रौपदी के साथ, शुल्क (दायज) के तौर पर, जो धनुष प्राप्त हुआ था उसे अर्जुन ने हाथ में लिया; और भीम ने पास ही से एक पेड़ उखाड़ कर हाथ में लिया! और दोनों ने लगातार युद्ध शुरू किया। थोड़े ही समय में अर्जुन ने कर्ण को रणांगण से भगा दिया; और दूसरी ओर भीम ने शल्य को बाहुयुद्ध में जीत लिया। इसके बाद जब श्रीकृष्ण ने सब को यह समझा दिया कि द्रौपदी जिन्होंने प्राप्त की है उन्होंने उसे न्याय से ही प्राप्त किया है तब सब राजा युद्ध बन्द करके अपने अपने देश को लौट गये। इधर द्रौपदी को साथ ले कर पांडव भी कुम्हार के घर आये। उस समय कुन्ती भीतर की तरफ़ थीं; उन्हें बुला कर वे हँसी से बोले, "आज की भिक्षा ले आये।" यह सुन कर वे भीतर ही से बोलीं "सर्वे समेत्य भुंक्त" (सब लोग मिलकर बाँट लो!) और बाहर आ कर देखती हैं तो पांडव राजकन्या द्रौपदी को ले आये हैं! यह देख कर उन्हें आश्चर्य और दुःख

हुआ। उन्होंने युधिष्ठिर से यह पूछा कि, कहना भी झूठ न हो और अधर्म भी न हो, ऐसा कौन सा उपाय करना चाहिये। परन्तु धर्म (युधिष्ठिर) की यह सलाह पड़ी कि "चूंकि अर्जुन ने अपने पराक्रम से उसे प्राप्त किया है; इस लिये वही द्रौपदी को वरे।" परन्तु धर्मराज और भीमसेन के पहले अपना विवाह करना अर्जुन को पसन्द नहीं आया। अन्त में जब जान पड़ा कि उसे देख कर सब के मन में उसके विषय में प्रेमभाव उत्पन्न हो गया है और इधर व्यास के भविष्यकथन का भी स्मरण आया तब युधिष्ठिर ने कहा कि "द्रौपदी हम सब की ही भार्या होगी। यह बात सब को कबूल हुई। इतने ही में बलराम और श्रीकृष्ण अपनी फूफू और फुफेरे भाइयों से मिलने के लिये वहां आये। उन्होंने कुन्ती, धर्म और भीम को नमस्कार करके अन्य पांडवों से कुशल-प्रश्न पूछा। थोड़ी देर वहां रह कर वे शीघ्र ही वहां से इस कारण चले गये, जिससे किसी को संशय न हो। कुन्ती की आज्ञा से उस दिन की भिक्षा का बाँट द्रौपदी ने किया। पांडवों का भोजन हो जाने पर कुन्ती और द्रौपदी ने भी भोजन किया। रात को दर्भों के बिछौने पर पांचों पांडव एक दूसरे के पास, एक ही पाँत में, सोये। उनके सिरहाने कुन्ती और पाँयताने एक ओर द्रौपदी सोई। ब्राह्मणवेषधारी पांडव आपस में अस्त्र, रथ, गदा, खड्ग, युद्ध आदि के विषय में बातें करते हुए सो गये।

इधर इस बात का पता लगाने के लिए, कि हमारी बहन को ले जानेवाला ब्राह्मण कौन है, धृष्टद्युम्न गुप्त रीति से कुम्हार के घर में घुस कर छिपा बैठा था; उसने पांडवों का उपर्युक्त सब भाषण सुना; और उससे उसने समझ लिया कि ये ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र नहीं हैं; किन्तु खास क्षत्रिय ही हैं। इतना जान कर वह जैसा आया था वैसा ही गुप्त रीति से चला गया-(आदिपर्व, अ० १८४-१९२)

राजमहल में लौट आने पर धृष्टद्युम्न ने जो देखा था और सुना था वह सब हाल द्रुपद से बतलाया; और अपना तर्क भी बतलाया कि ये ब्राह्मणवेष से घूमनेवाले क्षत्रिय हैं। दूसरे दिन सुबह, इस बात का पता लगाने के लिए, कि द्रौपदी को ले जानेवाले ब्राह्मण कौन हैं, राजा ने अपना पुरोहित भेजा। वह जब कुँभार के घर पहुँचा तब पांडवों ने उसका बड़ा सत्कार किया। पुरोहित बोला, "राजा द्रुपद अपनी कन्या महा पराक्रमी अर्जुन को देना चाहता था; परन्तु पण को जीत कर तुम्हींने उसे प्राप्त कर लिया; इस कारण राजा बड़ी चिन्ता में पड़ा है। इस लिये अब आप कृपा कर के अपनी सच्ची जाति, कुल और नाम बतलाइये। इस पर युधिष्ठिर ने अपना पूरा पता न दे कर, सिर्फ इतना ही कहा, "आप का पण यह था कि धनुष साज कर पाँच बाणों द्वारा छिद्र से जो लक्ष्य-भेद करेगा उसे द्रौपदी मिलेगी। इसमें आपने यह शर्त बिलकुल नहीं रखी थी कि पण जीतने का प्रयत्न सिर्फ क्षत्रियों ही को करना चाहिए, ब्राह्मणों को नहीं। आपका पण जीत कर जो मैंने द्रौपदी को प्राप्त किया सो न्याय से ही प्राप्त किया है। इससे अब यही अच्छा है कि राजा द्रुपद अपनी लड़की के विषय में व्यर्थ चिन्ता न करें।" पुरोहित ने पांडवों का यह सन्देश द्रुपद से जाकर बतलाया, इसके बाद राजा ने द्रौपदी, कुन्ती और पांडवों को राजमहल में बुलवाया। विवाहोत्सव के लिए जो तरह तरह के उत्तम और कौशल के पदार्थ मँगाये गये थे वे सब वहां लगा रखे गये थे। वहां पांडव लोग अन्य पदार्थों की ओर विशेष ध्यान न देते हुए, अस्त्र शस्त्रों तथा दूसरे युद्धोपयोगी सामान की ओर विशेष उत्सुकता के साथ देख रहे थे; इससे द्रुपद को विश्वास होगया कि ये क्षत्रिय ही हैं, इसके बाद द्रुपद ने अत्यन्त नम्रता और दीनता से पूछा कि "आप कौन

हैं ? आपकी जात और कुल कौन है ? " तब युधिष्ठिर ने राजा को अधिक समय तक संशय में न रख कर यह बतला दिया कि हम क्षत्रिय हैं, राजा पांडु के पुत्र हैं और यह हमारे साथ में हमारी माता कुन्ती हैं। यह सुन कर राजा द्रुपद के नेत्रों से आनन्दाश्रु बहने लगे; और सब लोगों को भी बहुत हर्ष हुआ। कुछ दिन बाद द्रुपद ने यह बात चलाई कि " आज शुभ दिन है, इस लिए आज ही अर्जुन और द्रौपदी का विवाह हो जाना चाहिए। " इस पर युधिष्ठिर ने कहा " मेरा भी विवाह होना है। " द्रुपद ने उत्तर दिया " आप पांडवों में से चाहे जिसको मैं द्रौपदी दे सकता हूँ। " युधिष्ठिर ने कहा, " हमारी माता ने हमसे कहा है कि हम सब को द्रौपदी के साथ विवाह करना चाहिए। मेरा कथन है कि जिस प्रकार अन्य रत्नों का हम सब भाई मिलकर उपयोग करते हैं उसी प्रकार अर्जुन-द्वारा प्राप्त किया हुआ यह कन्यारत्न भी हम सब को बराबर मिले। " एक स्त्री के अनेक पति होना लोक-विरुद्ध और वेद-विरुद्ध बात है; इसके लिए राजा द्रुपद बिलकुल तैयार नहीं हुआ; इतना ही क्यों; युधिष्ठिर के मन में जो यह पाप-विचार आया उसके लिए उसने उनकी बड़ी निर्भर्त्सना की। इस पर युधिष्ठिर ने कहा, " मैं आज तक कभी झूठ नहीं बोला और मेरा मन कभी पाप की ओर नहीं दौड़ा। हमारी माता की आज्ञा यही है; और हम सब भाइयों की इच्छा भी यही है। " यह कह कर धर्म (युधिष्ठिर) ने अपना आग्रह कायम रखा। इतने ही में भगवान् व्यास भी वहां आगये। तब द्रुपद और धृष्टद्युम्न ने उनसे पूछा कि इस समय धर्म ने लोक-व्यवहार और वेद इन दोनों से असम्मत बात करना मन में ठाना है; इस लिए अब क्या करना चाहिए ? व्यास ने उन्हें एकान्त में ले जाकर उत्तर दियाः–" अर्जुन को छोड़ कर बाकी चार पांडव पहले के चार इन्द्र हैं और अर्जुन वर्तमान

इन्द्र का पुत्र है। वैसे ही द्रौपदी इन पांचों की पहले के उप-भोग की हुई 'स्वर्गश्री' (स्वर्ग की राज्यलक्ष्मी) है। इसका एक जन्म ऋषिपत्नी से हो चुका है। इसने शंकर से "पतिं देहि" वाक्य पांच बार कहा था; इसी लिए इस जन्म में उसे ये पाँच पति मिलते हैं।" इतना कह कर व्यास ने द्रुपद को दिव्य दृष्टि दे कर पांडवों के प्रथम के इन्द्रस्वरूप और द्रौपदी का स्वर्गश्रीस्वरूप दिखलाया! इस प्रकार द्रुपद की शंका दूर होने पर उसी दिन पांडवों के साथ द्रौपदी का विवाह हो गया। श्रीकृष्ण बहुमोल रत्न, उत्तम उत्तम वस्त्र, दासी आदि उपहार में लाये, पांडवों ने पूज्यभाव-पूर्वक उसका स्वीकार किया-(आदिपर्व, अ० १९३-१९९)

गुप्तचरों-द्वारा ज्योंही हस्तिनापुर में यह समाचार पहुँचा कि वारणावत नगर में लाहागृह में जो आग लगाई गई उससे कुन्ती और पांडव जीते हुए निकले; इतना ही नहीं किन्तु जिन्होंने द्रौपदी को जीता वे ब्राह्मण-वेषधारी पांडव ही थे त्योंही दुर्योधन आदि की निराशा की सीमा नहीं रही। इनके बड़े प्रयत्न से रचा हुआ अपना व्यूह इस प्रकार ढसला था देख कर उन्हें पश्चात्ताप तो हुआ नहीं; किन्तु उनका द्वेष अवश्य दूना हो गया। इस विवाह का समाचार विदुर ने जब धृतराष्ट्र से बतलाया तब वह अंधकपटी भी ऊपर ऊपर से इस प्रकार के समाधान-वाक्य बोलने लगा कि "जैसे मेरे पुत्र मुझे प्रिय हैं वैसे ही किंबहुना उनसे भी अधिक मुझे पांडव प्रिय हैं"। इस पर विदुर सिर्फ इतना ही उत्तर दे कर चले गये कि "तुम्हारी बुद्धि ऐसी ही सदा बनी रहे।" जब दुर्योधन और कर्ण आदि ने सुना कि धृतराष्ट्र ने पांडवों के अनुकूल विदुर से बातें कीं और उनके विवाह का अभि-नन्दन किया तब वे सब उनको दोष देने लगे। तब उस कपटी बुड्ढे ने यही उत्तर दिया कि "विदुर से अपने विचार

छिपाने के लिए मैंने वैसा कहा, वे सब बातें बनावटी थीं—वे मेरे हृदय के सच्चे विचार नहीं थे।" पांडवों का यह उत्कर्ष दुर्योधन, आदि को सहन नहीं हुआ और उनके मन में अधिकाधिक यही विचार आने लगे कि पांडवों का नाश किसी न किसी उपाय से होना ही चाहिये। राज्यलोभ और मत्सर से किसी राजा का मन जब एक बार ग्रस जाता है तब उसे इस बात का भी विचार नहीं रहता कि अपना इष्ट हेतु सिद्ध करने के लिये किन उपायों की योजना करनी चाहिये और कौन से उपाय सम्भव अथवा न्याय्य हैं। दुर्योधन का भी यही हाल हो गया था। दुर्योधन के पापमय अन्तःकरण में इस प्रकार के अनेक दुष्ट उपाय आने लगे कि "बहुत सा द्रव्य देकर द्रुपद को ही वश में करना चाहिये, अथवा ऐसा कुछ उपाय भिड़ाना चाहिये कि जिससे पांडव वहीं रहने लगें; अथवा द्रौपदी पाँच पुरुषों की पत्नी है; उसीके पातिव्रत्य के विषय में पांडव में ही आपस में द्वेष उत्पन्न करना चाहिये; अथवा बलत्कार से द्रौपदी को ही हरण कराना चाहिये; किंवा किसी न किसी उपाय से शूर अर्जुन और बलवान् भीम को मार डालना चाहिये; नहीं तो सुन्दर स्त्रियों द्वारा पांडवों का मन आकर्षित करा कर द्रौपदी ही को दुःख देना चाहिये।" ये सब उपाय उसने कर्ण, शकुनी और दुःशासन से प्रकट किये। परन्तु कर्ण जानता था कि ये सब उपाय व्यर्थ हैं; इनसे कुछ काम न निकलेगा। उसने ऐसी सरल सलाह दी कि "जब तक राजा द्रुपद सावधान नहीं हुआ, श्रीकृष्ण भी अपनी यादवसेनासहित पांडवों की मदद को नहीं आये, जब तक अपना पक्ष प्रबल और पांडवों का दुर्बल है और जब तक प्रजा की भक्ति युधिष्ठिर पर और भी दृढ़ नहीं हो गई, तभी

तक एकदम पांचाल देश पर चढ़ाई करके युद्ध करना चाहिये और पांडवों को कैद कर यहां लाकर कारागार में बन्द कर देना चाहिये!" इसके बाद धृतराष्ट्र ने भीष्म, द्रोण और विदुर को बुला कर, कर्ण की इस सलाह के विषय में उनका मत लिया। उस समय पहले पहल भीष्म ने उत्तर दिया, "धृतराष्ट्र, तू और तेरे पुत्र जैसे मुझे प्यारे हैं वैसे ही पाडु और उसके पांडव भी मुझे प्यारे हैं-ऐसी दशा में, उनका राज्य हरण करने के लिये, उनसे युद्ध करने की सलाह मैं तुम्हें कैसे दे सकता हूं? यह बात मुझे अच्छी ही कैसे लगेगी? दुर्योधन जिस प्रकार समझता है कि यह राज्य हमारा है उसी प्रकार पांडव भी समझते हैं। पांडवों का आजा विचित्र-वीर्य और बाप पांडु जब कि सिंहासन पर क्रम से बैठ चुके हैं तब सब से पहले पांडवों ही का हक इस राज्य पर पहुँचता है। तुम कहते होगे कि पांडवों को राज्य न मिले; पर दुर्योधन को यह कहने का क्या अधिकार है कि यह राज्य हमारे ही पास रहे? राजा पांडु के मरने पर क्रम से-न्याय से-यह राज्य युधिष्ठिर को पहले ही मिल चुका है। किसी न किसी निमित्त से उन्हें यहां से दूर भगा कर तुमने अन्याय से यह राज्य अपने हाथ में कर लिया है: और अब तुम उन्हें देते नहीं हो यह तो बिलकुल अन्याय है। अरे धृतराष्ट्र, जिस समय प्रजा ने यह सुना कि कुन्ती और पांडव लाक्षागृह में जल मरे उस समय उसने तुझको जितना दोष दिया उतना पुरोचन को नहीं दिया, जिसे आग लगाने का काम सौंपा गया था। अब सौभाग्य से पांडव कुन्ती-सहित जीते बच गये हैं; इस कारण तेरा यह अपवाद टल गया है, यह तेरा भाग्य ही है। जब तक पांडव जीते हैं तब तक राज्य का उनका हिस्सा छीनने के लिए स्वयं इन्द्र भी समर्थ नहीं है; फिर तुम्हारी क्या कथा? अरे धृतराष्ट्र,

यदि धर्मस्त्वया कार्यो यदि कार्यं प्रियं च मे ।
क्षेमं च यदि कर्तव्यं तेषामर्धं प्रदीयताम् ॥

यदि तुझे न्याय से चलना है; मेरा कहना मानना है; अपना राष्ट्र और कुल जीवित रखना है तो पांडवों को सन्मानपूर्वक यहां बुलाओ और चुपके उन्हें आधा राज्य दे दो।" भीष्म का यह उपदेश द्रोणाचार्य और विदुर को भी पसन्द पड़ा। परन्तु दुर्योधन और कर्ण ने अपनी ओर से बहुत प्रयत्न किया कि जिससे धृतराष्ट्र इस उपदेश के अनुसार न चले। पर उसका कुछ भी उपयोग नहीं हुआ। अन्त में पांडव, कुन्ती, द्रौपदी, द्रुपद, धृष्टद्युम्न, इत्यादि को व्यवहार देने के लिए रत्न, वस्त्र, आदि ले कर विदुर धृतराष्ट्र की ओर से द्रुपद के नगर को गये। उन्होंने वहां जा कर धृतराष्ट्र का यह सन्देश द्रुपद से बतलाया कि "प्रख्यात कुरु-पांचाल-कुलों का जो यह सम्बन्ध हो गया उससे मैं अपनेको कृतकृत्य समझता हूं।" कुछ दिन वहां रह कर विदुर, पांडव और श्रीकृष्ण द्रुपद की आज्ञा ले कर कुन्ती और द्रौपदी सहित हस्तिनापुर चले आये। उस समय, कई वर्षों में पांडवों के कुशलपूर्वक लौटने के लिए, नगरनिवासियों ने बड़ा भारी उत्सव किया। नगर में आने पर पांडवों ने भीष्म आदि बड़ों को आदरपूर्वक नमस्कार किया। धृतराष्ट्र ने धर्मराज से कहा "कौरवों का और तुम्हारा बिना कारण झगड़ा न हो, इस लिए तुम्हें आधा राज्य बाँट दिया है। तुम खांडवप्रस्थ में नवीन नगर बसा कर यमुना के पश्चिम ओर आधे देश पर सुख से राज्य करो। हम हस्तिनापुर में रहेंगे।" इस पर पांडवों ने इन्द्रप्रस्थ नामक नवीन नगर बसाया और वहां वे, धर्म तथा न्याय के साथ, प्रजा का पालन करते हुए, राज्य करने लगे। शीघ्रही इस नगर में तपोनिष्ठ और विद्वान् ब्राह्मण, भिन्न भिन्न भाषाओं के बोलनेवाले

व्यापारी और कुशल कारीगर आकर बस गये। नगर में बड़ी बड़ी हवेलियां खड़ी हो गईं और बाहरी भाग में सुन्दर बाग-बगीचे लहराने लगे। इस प्रकार कुछ काल बाद, नारद मुनि पांडवों के पास आये। उन्होंने सुन्दोपसुन्द और तिलोत्तमा की कथा बतला कर उन्हें यह बात सुझाई कि तुम्हारे पांच भाइयों में एक ही स्त्री है; इस लिये उसके कारण कदाचित् आपस में वैमनस्य होकर कहीं सभी का नाश न हो जाय। इस पर नारद के ही बतलाने के अनुसार पांडवों ने आपस में यह निर्बन्ध ठहरा लिया कि "प्रत्येक पांडव दो महीने बारह दिन के क्रम से द्रौपदी के साथ सम्बन्ध रखे; जो कोई द्रौपदी के साथ एकान्त में दूसरे भाई को देखे वह बारह वर्ष वनवास स्वीकार करके ब्रह्मचर्य से रहे–(आदिपर्व,अ० १९९-२०२)

इस प्रकार का नियम बहुत समय तक चलता रहा। बाद को एक दिन एक ब्राह्मण की गौएं चोरों ने चुरा लीं। तब वह ब्राह्मण यह चिल्लाते हुए इन्द्रप्रस्थ की सड़कों पर घूमने लगा कि "चोर को सज़ा देकर मेरी गौएं मुझे ढूँढ़ दो।" उसकी पुकार सुन कर जब कोई मदद के लिये न आया तब

> अरक्षितारं राजानं बलिषड्भागहारिणम्।
> तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रं पापचारिणम्॥

वह ब्राह्मण यह कह कर भी चिल्लाने लगा कि "रियाया से उसकी आमदनी का छठवां हिस्सा कर लेकर भी जो उसके जानमाल की हिफाजत नहीं करता वह राजा अत्यन्त नीच और पापी है!" अन्य साधारण राजाओं की तरह यदि पांडव राजधर्म से अनभिज्ञ और राज्यमद से अंधे होते तो उन्होंने भी, इस दुर्भाषण पर, उस ब्राह्मण को, कारागार में डाल दिया होता। पर उसकी वह पुकार और भाषण

सुनते ही यह कह कर कि "तू मत डर" अर्जुन उसी दम शस्त्र लाने के लिये आयुधागार में जाने लगे। पर जब यह मालूम हुआ कि वहां धर्मराज द्रौपदी के साथ एकान्त में हैं तब वे बड़े सोचविचार में पड़े। भीतर जाते हैं तो नियम का भंग होता है और बारह वर्ष वनवास करना पड़ता है और यदि नहीं जाते हैं तो क्षत्रियधर्म में बाधा आती है। परन्तु अर्जुन यह विचार कर वैसे ही आयुधागार में चले गये कि "अन्य सब कर्तव्यों से प्रजा का पालन करना और दुष्टों का नाश करना क्षत्रियों का सब से श्रेष्ठ कर्तव्य है; यह कर्तव्य पूर्ण करते हुए उन्हें कितने ही कष्ट पड़ें, सब सहना ही चाहिए।" अर्जुन ने पहले धर्मराज से भीतर आने का कारण बतला दिया और धनुष-बाण तथा शस्त्र लेकर बाहर निकल आये; और चोरों का पीछा करके तथा उनको शासन करके उन्होंने ब्राह्मण की गौएं उसे ला दीं। राजमहल में लौट कर अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा, "मैंने नियम तोड़ा है, इस लिये अपने नियम के अनुसार मैं बारह वर्ष वनवास करूंगा।" इस पर धर्मराज ने अर्जुन को बहुत समझाया कि "हम दोनों के एकान्त में होते हुए यद्यपि तू भीतर आया, तथापि इसके लिये मेरे मन में बिलकुल विषमता नहीं। मैं कहता हूं कि तू वन को मत जा। मेरी बात तुझे मानना ही चाहिये।" लेकिन बड़े भाई के इस भाषण का लाभ उठा कर, अर्जुन ने वनवास के बारह वर्षों का दुःख टालने का प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने अपना मन सत्य से नहीं डिगने दिया।

न व्याजेन चरेद्धर्ममिति मे भवतः श्रुतम्।
न सत्याद्विचलिष्यामि सत्यमायुधमालभे॥

आप ही ने तो मुझे अनेक बार बतलाया है कि धर्म, सत्य,

प्रतिज्ञा और वचन का परिपालन करते हुए, कोई न कोई शुष्क कारण निकाल कर, टालाटूली न करना चाहिए। सत्य ही मेरा शस्त्र है: उसे छोड़ने के लिये आप मेरे समान क्षत्रिय से कुछ न कहिये। इतना कह कर अर्जुन वन को चलते हुए। कुछ दिन प्रसिद्ध तीर्थों का दर्शन करते हुए वे गंगाद्वार को पहुँचे। वहां स्नान करने के लिये जब वे गंगा में उतरे तब उलूपी नामक एक नागकन्या उन्हें नागलोक को खींच ले गई। उसकी विनती पर वे एक रात उसके यहां रहे और फिर सुबह गंगाद्वार को लौट आये। इसके बाद, पूर्व दिशा के तीर्थ देखते देखते, वे समुद्र-किनारे से मणिपुर गये। वहां चित्रवाहन राजा की कन्या चित्रांगदा को देख कर वे मोहित हो गये; और राजमहल में आकर उन्हों-ने राजा से अपना नाम और कुल बतला कर चित्रांगदा मांगी। राजा ने कहा, "उसके पेट से जो पुत्र उत्पन्न हो वह यदि मुझे देने कहो तो मैं तुमको चित्रांगदा दे सकता हूं।" यह शर्त कबूल करके अर्जुन ने उसका पाणिग्रहण किया। वहां वे तीन वर्ष रहे। इतने अवकाश में उनके एक पुत्र (बभ्रुवाहन) हुआ। बाद को दक्षिण तीर्थों में घूमते हुए वे सौभद्र तीर्थ में आये। वहां एक ब्राह्मण के शाप से वर्गा और अन्य चार अप्सराएं घड़ियाल होकर रहती थीं। उन्हें शाप-मुक्त करके वे फिर मणिपुर को लौट आये। वहां चित्रांगदा को यह वचन देकर, कि अश्वमेध यज्ञ के समय तुझे हस्तिना-पुर ले जाऊंगा, वे फिर तीर्थाटन को चले गये। गोकर्ण आदि महापवित्र स्थान देखते हुए वे प्रभास तीर्थ को आये। वहां श्रीकृष्ण से भेट हुई। बलराम, प्रभृति यादव अर्जुन को सत्कार-पूर्वक द्वारका ले गये। वहां एक उत्सव में सब यादव अपनी स्त्रियोंसहित जब रैवतक पर्वत पर जमा हुए तब श्रीकृष्ण की

वहन सुभद्रा को देख कर अर्जुन का मन मोहित हो गया। उन्होंने सुभद्रा-विषयक अपना प्रेम जब श्रीकृष्ण से प्रसन्नता-पूर्वक बतला दिया तब, उस समय के रानियों के अनुसार, श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बलात्कार सुभद्राहरण करने की सलाह दी। एक दूत के द्वारा यह विचार उन्होंने धर्मराज से प्रकट किया और उनकी सम्मति मँगाई। आगे, कुछ दिन बाद, एक दिन सुभद्रा दासियों के साथ रैवतक पर्वत पर गई। वहां के सब देवताओं के दर्शन करके और पर्वत को प्रदक्षिणा करके वह द्वारका को चली। इतने में उसको, बलात्कार से, अपने रथ पर बैठा कर, अर्जुन इन्द्रप्रस्थ की ओर चल दिये! ज्योंही यह खबर यादवों को मालूम हुई त्योंही वे युद्ध की तैयारी करके अर्जुन को प्रतिबन्ध करने के लिये निकले; परन्तु श्रीकृष्ण ने अर्जुन के शौर्य और पराक्रम आदि गुणों की प्रशंसा करके सब को समझा दिया कि "सुभद्रा को अर्जुन के समान और कौन पति मिल सकता है? अर्जुन को युद्ध में जीत ही कौन सकता है? हम सब यादवों को युद्ध में जीत कर यदि वे सुभद्रा को ले गये तो यादवों की अपकीर्ति होगी; इससे तो यही अच्छा है कि, अर्जुन को सन्मानपूर्वक लौटा लें और स्वयं सुभद्रा का विवाह उनके साथ कर दें।" तब अर्जुन को लौटा कर बलराम ने सुभद्रा को उन्हें अर्पण किया। बारह वर्ष में जो दिन बाकी रहे थे वे पुष्करतीर्थ में व्यतीत करके अर्जुन सुभद्रासहित इन्द्रप्रस्थ को लौट आये। सुभद्रा ने, कुन्ती इत्यादि को, द्रौपदीसहित, नमस्कार किया और नम्रता के साथ कहा कि "यह दासी भी सेवा में रख ली जाय!" कुछ वर्षों में सुभद्रा से अभिमन्यु उत्पन्न हुआ। वह श्रीकृष्ण को प्राणों से भी प्यारा हुआ। द्रौपदी के भी, प्रत्येक पति से, क्रमशः प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकर्मा, शतानीक और श्रुतसेन नामक पांच पुत्र पैदा हुए—(आदिपर्व, अ० २१३–२२१)

एक दिन अर्जुन और श्रीकृष्ण यमुना नदी पर जलक्रीड़ा करने गये, वहां अग्नि ब्राह्मणरूप से उनके पास आया और खांडव वन जला डालने की आज्ञा मांगने लगा। वह बोला, "इस अरण्य में इन्द्र का मित्र तक्षक रहता है। इस लिये मैं जब जब यह वन जलाने लगता हूं तब तब वर्षा करके इन्द्र मुझे बुझा डालता है; इस लिये मेरी इच्छा अभी पूर्ण नहीं हुई।" इस पर अर्जुन ने उसे यह उत्तर दिया कि "मुझे उत्तम उत्तम अस्त्र मालूम हैं; पर मेरे पास ऐसे धनुष, रथ, घोड़े और बाणों के तरकस नहीं हैं जो मेरे बल और पराक्रम के अनुसार हों। ये यदि मुझे तू देगा तो मैं तेरी इच्छा पूर्ण करूंगा।" इसके बाद अग्नि ने अर्जुन को सोम का दिव्य रथ, गांधर्व अश्व, गांडीव धनुष और दो अक्षय्य तरकस वरुण से दिलवाये। वरुण ने श्रीकृष्ण को सुदर्शन चक्र और कौमोदकी नामक गदा दी। इस प्रकार सब तैयारी होने पर अग्नि ने खांडववन जलाना शुरू किया। वन के दोनों तरफ़ कृष्णार्जुन ने अपने रथ खड़े किये; और अग्नि के भय से जो जो प्राणी अथवा श्वापद वन से भगने लगे, उनका उन्होंने संहार शुरू किया। वन की वह आग बुझाने के लिये इन्द्र ने उस पर मूसलाधार पानी बरसाया; परन्तु अर्जुन ने अपने अस्त्रप्रभाव से मानो उस वन पर बाणों का मंडप ही खड़ा कर दिया था; उन्होंने एक बूंद भी अग्नि पर नहीं पड़ने दिया! वन जलना शुरू होने के पहले ही तक्षक वहां से कुरुक्षेत्र को चला गया। उसकी स्त्री अपने पुत्र अश्वसेन को निगल कर आग से बाहर भगने लगी; अर्जुन ने तुरन्त ही उस पर बाण चला कर उसका शिर उड़ा दिया। अश्वसेन की पूंछ उसके मुंह की ओर थी, इस कारण उसके घाव नहीं लगा; इतने ही में इन्द्र ने बड़े जोर से हवा चलाई और उसका जीव बच गया। यह देख कर, कि अब सारे वन का बिलकुल नाश होता है, सब देव युद्ध के लिये तैयार हुए।

इन्द्र ने मन्दराचल का एक शिखर कृष्णार्जुन पर फेंका; पर अर्जुन ने अपने बाणों से उसे धूल धूल कर दिया! जब यह आकाशवाणी हुई कि "इस वन में तेरा मित्र तक्षक नहीं है, वह कुरुक्षेत्र में कुशलपूर्वक है।" तब इन्द्र ने यह युद्ध बन्द किया। शिल्पकर्म में अत्यन्त प्रवीण मयासुर तक्षक के घर से निकल कर बाहर भगा जाता था; श्रीकृष्ण ने सुदर्शन लेकर उसका पीछा किया। परन्तु वह अर्जुन के शरण आया, अर्जुन ने उसे अभय-वचन दिया, इस लिये श्रीकृष्ण ने उसका वध नहीं किया। यह खांडववन बराबर पन्द्रह दिन तक जलता रहा! उस भयंकर अग्निप्रलय से मयासुर, तक्षक का पुत्र अश्वसेन और चार शार्ङ्क पक्षी, कुल छै प्राणी बचे। बाकी सब को अग्नि ने अथवा श्रीकृष्णार्जुन के बाणों ने भस्मीभूत कर दिया—(आदिपर्व, अ० २२२-२२८)

अपने पुत्र का पराक्रम देख कर इन्द्र को भी सन्तोष हुआ। नीचे आकर उसने उन दोनों को दर्शन दिया। अर्जुन ने इन्द्र से दिव्य अस्त्र माँगे, इन्द्र ने कहा कि "जब तू महादेव को प्रसन्न करेगा तब तुझे वे मिलेंगे।" श्रीकृष्ण ने इन्द्र से यह वर माँगा कि "पार्थ से मेरी निरन्तर मित्रता रहे।" यह वर दे कर इन्द्र स्वर्ग को चला गया और कृष्णार्जुन मयासुर-सहित विश्रान्ति लेने के लिये यमुनातीर आये—(आदिपर्व, अ० २३४)
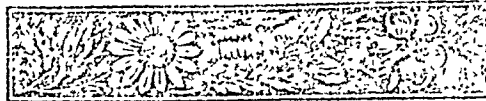
तीसरा प्रकरण।

द्यूत और संकट।

यासुर ने यह सोचा कि खांडववन के अग्नि-प्रलय से अर्जुन ने हमारी रक्षा की है; इस लिए इस उपकार का बदला हमें भी किसी न किसी तरह देना चाहिए। एक दिन जब अर्जुन के सामने उसने यह बात निकाली तब अर्जुन ने यह उत्तर दिया कि "यदि मेरे उपकार का बदला तुम देना चाहते हो तो श्रीकृष्ण जो कुछ कहें वही करो।" श्रीकृष्ण ने कुछ देर विचार करके, युधिष्ठिर के लिए एक अति उत्तम सभागृह तयार करने के लिए उसे आज्ञा दी। बाद को इन्द्रप्रस्थ में कुछ दिन रह कर, कुन्ती, धर्मराज और भीम को नमस्कार करके और सब से प्रेमपूर्वक आज्ञा लेकर श्रीकृष्ण द्वारका को चले गये। मयासुर ने एक अच्छे दिन, सभागृह के लिए, दस हज़ार हाथ घेरे की जमीन नाप ली। फिर उसने कहा कि "कैलास पर्वत के उत्तर ओर, मैनाक पर्वत के पास, बिन्दु नामक एक सरोवर है। वहां पहले वृषपर्व ने एक यज्ञ किया था। उस समय वह चारों ओर से जो मणिरत्न लाया था उनका एक बड़ा भांडार वहीं है। वह आपके सभागृह के लिए लाने के लिए मैं जाता हूं।" इतना कह कर वह इन्द्रप्रस्थ से ईशान की ओर चला। कैलास के पास जाकर वह बिन्दु सरोवर पर पहुँचा। वहां से स्फटिकों की शिलाएँ, सोना, वैदूर्य मणि, आदि रत्न, इत्यादि सभागृह की सामग्री, और एक रत्नखचित दिव्य गदा तथा देवदत्त शंख लेकर

मयासुर इन्द्रप्रस्थ को लौट आया। वह गदा उसने भीमसेन को और शंख अर्जुन को दिया और जो सामग्री साथ लाया था उससे चौदह महीने में उसने एक उत्कृष्ट और दिव्य सभागृह निर्माण किया। उसके खम्भे और बाहरी घेरे सोने के थे तथा दरवाजे रत्नखचित थे। सभागृह के मध्यभाग में एक छोटासा कृत्रिम सरोवर तैयार किया था। उसके कमल, मछलियां और पक्षी आदि सब स्वर्ण तथा रत्नों आदि से बनाये थे। चारों ओर स्फटिक की सिड़्ढियां थीं और आस पास के घाट तथा फर्श मणि-रत्नों की बड़ी बड़ी शिलाओं के बनाये थे। यह गृह देखने के लिए चारों ओर के ऋषि, मुनि, तपस्वी, भिन्न भिन्न देश के राजा, आदि लोग जमा हुए।

इस प्रकार सब तैयारी होने पर धर्मराज ने ब्रह्मभोज, यज्ञ, देव-पूजन आदि विधिपूर्वक करके, अच्छे मुहूर्त पर, उस सभागृह का गृहप्रवेशोत्सव बड़ी धूम-धाम से किया। सब राजा लोगों के साथ पांडव उस नवीन सभागृह में बैठे थे, इतने में नारद मुनि वहां आये। युधिष्ठिर ने अपने सब बन्धुओं के साथ उनका स्वागत किया और उन्हें अपने सिंहासन पर बैठाया; और भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। इसके बाद नारद मुनि ने "कच्चित्" प्रश्नरूप से उन्हें जो राजनीति बतलाई है उससे यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि राजा किस प्रकार का होना चाहिए, उसका प्रजा के सम्बन्ध में सच्चा कर्तव्य क्या है और इस विषय में प्राचीन आर्य लोगों के कैसे उदात्त विचार थे। नारद मुनि बोले " धर्म, अर्थ, काम ये तीन पुरुषार्थ साध्य करने के लिए, हे राजा, तूने अपने समय के योग्य विभाग किये हैं या नहीं? तूने जो मंत्री नियत किये हैं वे कुलीन और तुझ पर निष्ठा रखनेवाले हैं या नहीं? तू अपने सैनिकों का वेतन ठीक समय पर देता है ? राज्यप्रबन्ध में अनुचित

कठोरता दिखा कर तू प्रजा के मन में असन्तोष तो नहीं उत्पन्न करता ? तेरे लिए युद्ध करके जो सिपाही रण में कट मरते हैं उनके बालबच्चों का तू उचित रीति से पालन पोषण करता है या नहीं ? शरण आये हुए और युद्ध में जीते हुए शत्रुओं का तू पुत्र की तरह रक्षण करता है या नहीं ? मा-बाप पर जैसा छोटे लड़कों का पूरा विश्वास रहता है वैसा ही तेरी प्रजा का विश्वास तुझ पर रहता है या नहीं ? आमदनी का एक-चौथाई, एक तिहाई अथवा आधे से अधिक तो तेरा खर्च नहीं रहता ?

> कच्चिद्राष्ट्रे तडागानि पूर्णानि च बृहंति च ।
> भागशो विनिविष्टानि न कृषिर्देवमातृका ॥

अपने राज्य में, जगह जगह, बड़े बड़े, और सदा पानी से परिपूर्ण भरे हुए, तालाब तूने बनवाये हैं या नहीं ? कृषीवल (किसान) सन्तुष्ट हैं न ? और खेती केवल वर्षा ही पर अवलम्बित तो नहीं है ? किसानों को ठीक समय पर बीज, आदि देकर तू मदद करता है या नहीं ? लोभ, मोह अथवा गर्व के कारण तेरे हाथ से कभी अन्याय तो नहीं होता ? कारीगर लोगों को चार चार महीने में द्रव्य और उनके धंधों की सामग्री तू देता है न ? नास्तिकता, असत्य, क्रोध, प्रमाद, आलस, क्रूरपन, आदि राजाओं के दोष तूने छोड़ दिये हैं न ?" नारद ने प्रश्न-रूप से जो यह उत्कृष्ट नीति बतलाई उसके अनुसार यथा-शक्ति चलना धर्मराज ने स्वीकार किया। इसके बाद इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर और ब्रह्मा की भिन्न भिन्न सभाओं का नारद ने वर्णन किया। उससे युधिष्ठिर को मालूम हुआ कि इन्द्र की सभा में हरिश्चन्द्र को छोड़ कर अन्य किसी राजा को भी स्थान नहीं मिला। उन्होंने जब इसका कारण पूछा तब नारद ने

हरिश्चन्द्र की कथा बतला कर कहा कि उसने राजसूय यज्ञ किया, इस कारण उसे इन्द्रलोक में स्थान मिला। हरिश्चन्द्र का इन्द्रलोक का वैभव देख कर राजा पांडु ने चाहा कि युधिष्ठिर भी राजसूय यज्ञ करें। उन्होंने नारद से यह सन्देशा भी कहला भेजा था; वह भी नारद ने युधिष्ठिर से बतलाया और राजा पांडु के आज्ञानुसार धर्मराज से राजसूय यज्ञ करने के लिए कह कर नारद द्वारका को चले गये-(सभापर्व, अ० १२)

नारद के द्वारा राजा पांडु का सन्देशा सुन कर राजसूय यज्ञ करने के लिये युधिष्ठिर के मन में उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने अपने मंत्रियों को बुला कर उनसे यह मत लिया कि जिस यज्ञ के अन्त में यज्ञकर्ता राजा को 'सम्राट' (सार्वभौम राजा) का पद धारण करना होता है वह राजसूय यज्ञ पूर्ण करने के लिए हममें योग्यता और सामर्थ्य है या नहीं? इस पर उन्होंने यही मत दिया कि युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करने के लिए सर्वथैव योग्य हैं। उन्होंने कहा, "आप न्यायपूर्वक राज्य करते हैं, आप किसीसे भी द्वेष नहीं करते, आपके कोई शत्रु नहीं हैं, इसी लिये आपको 'अजातशत्रु' नाम मिला है। आपके चारो भाई इतने शूर और पराक्रमी हैं कि सारी पृथ्वी को भी जीत सकते हैं। इस लिए निस्सन्देह आप राजसूय यज्ञ करने और सार्वभौमपद प्राप्त करने के योग्य हैं।" युधिष्ठिर ने अर्जुन, भीमादि अपने भाइयों तथा अन्य इष्टमित्रों से भी इस विषय में पूछा। उन सब ने भी मंत्रियों ही की तरह अपना अपना मत दिया, परन्तु युधिष्ठिर को अपनी योग्यता और सामर्थ्य के विषय में विश्वास नहीं आया। यह सोच कर, कि ऐसे मौके पर हमें श्रीकृष्ण ही योग्य सलाह देंगे, उन्होंने द्वारका को एक दूत भेज कर श्रीकृष्ण को बुलवाया; और राजसूय यज्ञ के सम्बन्ध में उनकी सलाह ली। राजसूय यज्ञ करने के लिए पहले चारों दिशाओं के राजाओं को जीत कर

उनको अपनी अधीनता स्वीकार करा लेनी चाहिए। इसके बिना राजसूय यज्ञ होना और सार्वभौमपद मिलना सम्भव नहीं है। परन्तु यह करने में एक बड़ा विघ्न आता था। वह कौन सा? वह श्रीकृष्ण ने धर्मराज से बतलाया, "मगध देश में बृहद्रथ नाम का राजा राज्य करता था। वह बड़ा बली था। तीन अक्षौहिणी सेना उसके पास थी। उसने काशिराज की दो कन्याओं से विवाह किया था। परन्तु उसके पुत्र-सन्तान नहीं हुई। एक बार चंडकौशिक नामक ऋषि ने प्रसन्न होकर उसे एक पुत्रदायक आम्रफल दिया और उससे कहा कि "इससे तेरी रानियों के गर्भ रहेगा।" वे दोनों रानियां सवती सवती थीं; तथापि नैहर के नाते से वे दोनों सगी बहनें थीं; इस कारण एक ने वह फल न खाकर दोनों ने आधा आधा काट कर खाया; और उन दोनों को गर्भ रहा। समय पर वे प्रसूत हुईं और दोनों के एक एक ऐसा लड़का पैदा हुआ जिसका शरीर आधा था! तब वे दोनों विद्रूप शकलें, दासियों ने चौराहे पर लाकर डाल दीं। परन्तु जरा नाम की राक्षसी ने ले जाने की सुलभता के लिए ज्योंही उन दोनों को एकत्र किया त्योंही वे दोनों शकलें एक दूसरे में जुड़ गईं; और उनका एक जीवित बालक बन कर रोने लगा! राक्षसी ने वह बालक राजमहल में ले जाकर दे दिया। उन दोनों की संधि जरा राक्षसी ने की; इस कारण आगे चल कर उस बालक का जरासंध नाम पड़ा। बृहद्रथ, योग्य समय में, जरासंध को गद्दी पर बैठा कर आप तपोवन को चला गया। जरासंध ने तपस्या करके शिव को प्रसन्न कर लिया; और उनकी कृपा से उसने ८६ राजाओं को जीत कर कारागार में डाल दिया। अन्य राजा उसके सामने थर थर काँपने लगे। ऐसा एक भी राजा नहीं जो उसे कर न देता हो। और भी ऐसे १४ राजा जब वह जीत लावेगा तब उन सौ राजाओं को वह महादेव

के लिए वलि देगा। जरासंध ही के भय से हम यादवलोग मथुरा छोड़ कर द्वारका में जा बसे हैं। इसके सिवा जब से मैंने कंस का वध किया तब से तो उसके साथ मेरी कट्टर दुश्मनी हो गई है। इसका कारण यह है कि कंस की भार्या जरासंध की लड़की है। इस लिए ऐसे दुष्ट और प्रबल राजा का वध करने के लिए खुलमखुल्ला सेना ले जाकर युद्ध करना ठीक नहीं। इस दुष्ट सार्वभौम जरासंध का कण्टक निकाले विना राजसूय यज्ञ का मार्ग निष्कंटक नहीं हो सकता। इस लिए मैं, भीमसेन, और अर्जुन तीनों जाकर पहले उसका वध करते हैं; और फिर राजसूय यज्ञ करने का तथा सार्वभौमपद धारण करने का विचार करेंगे।" विना किसीको साथ लिए, जरासन्ध के समान बलवान् शत्रु को मारने के लिये, इन तीनों ने जो उसके नगर में जाने का साहस किया उसके लिए युधिष्ठिर अपनी सम्मति न देने लगे। परन्तु श्रीकृष्ण ने उन्हें अनेक प्रकार से समझाया और अन्त में कहा कि "तुम्हें यदि मेरी इच्छा के अनुसार चलना हो, तुम्हारा यदि मुझ पर विश्वास हो, तो तुम भीमार्जुन को मेरे साथ कर दो। हमारी जान के लिए तुम चिन्ता न करो। मेरे पास राजनीति, भीम के पास बल, और अर्जुन के पास विजय है। इन तीनों की संयोगरूपी अग्नि में जरासंध को, पतंग के समान, हम एक क्षण में भून डालेंगे।" यह सलाह भीम और अर्जुन को भी पसन्द हुई; युधिष्ठिर ने भी कबूल कर ली; इसके बाद भीम, कृष्ण और अर्जुन ने स्नातक ब्राह्मणों का वेष लिया; और कुरुजांगल देश होते हुए, पद्मसर सरोवर के पास जाकर, गंडकी, सरयू, शोण नदियां उतर कर, अन्त में वे मगध देश की 'राजगृह' राजधानी में आ पहुँचे। नगर के कोट के पास एक "गिरिशिखर" नामक जयस्तम्भ था, उसे वहां के लोग बहुत पूज्य मानते थे। उसे इन्होंने गिरा दिया; और नगा-

दुकान के नगाड़े फोड़ डाले ! राजमार्ग में जो मालियों, आदि की दुकानें लगी थीं उनसे पुष्पों की माला, इत्यादि पदार्थ बलात्कार से उन्होंने ले लिए ! इस प्रकार नगर के राजमार्ग में उपद्रव मचाकर वे राजमहल में, मनमाने उलटे मार्ग से, घुसे । उन्हें ब्राह्मण समझ कर जरासंध ने उनका उचित सत्कार किया; और पूछा कि "आप कौन हैं ? किस कारण पधारे ?" श्रीकृष्ण ने कहा कि "ये दोनों स्नातक ब्राह्मण हैं, इन्होंने मौन व्रत लिया है। आधी रात के करीब इनसे तुम्हारी भेट होगी । " यह सुन कर राजा ने उन तीनों को यज्ञशाला में उतार दिया । निश्चय के अनुसार आधी रात के समय जरासंध उनकी भेट के लिए गया और इस प्रकार के प्रश्न पूछने लगा कि "जान पड़ता है कि आप सच्चे स्नातक ब्राह्मण नहीं हैं; आपके देह में धनुष की डोरी घिसने के जो चिन्ह बन गये हैं वे स्पष्ट दिख रहे हैं; इस लिए आप दूसरे कोई हैं। नगर में आकर राजमार्ग में तुमने जो यह उपद्रव उठाया उसका कारण क्या है ? राजमहल में आप उलटे मार्ग से क्यों घुसे ?" तब श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि "स्नातकव्रत जिस प्रकार ब्राह्मण लोग करते हैं उसी प्रकार क्षत्रिय भी कर सकते हैं । पुष्प वैभवसूचक हैं; इस लिये क्षत्रियों को उन्हें बलात्कार से ही लेना ठीक है; क्योंकि वे अपने बाहुबल पर ही अवलम्बित हैं। यह रीति है कि शत्रु के घर में मनमाने मार्ग से घुसना चाहिये; इसी कारण हम तेरे राजमहल में टेढ़े मार्ग से घुसे हैं !" यह भाषण सुन कर ज़रासंध बड़े गड़बड़ में पड़ा। उसके ध्यान में यही न आने लगा कि इनका हमने क्या अपराध किया और ये हमें शत्रु क्यों समझते हैं। उस उन्मत्त राजा के मन में भी यह बात नहीं आई कि ८६ निरपराधी राजाओं को कारागृह में डालना अथवा उनमें १४ और मिला कर सब की बलि देना कितना भयंकर अपराध है और इसके

लिये ईश्वर हमें क्या दण्ड देगा! इसके विरुद्ध वह समझता था कि १०० राजाओं का वध करके हम बड़े पराक्रम का धर्म-कार्य कर रहे हैं। जरासंध कहने लगा, "आपका मैंने ऐसा कौन सा अपराध किया है जो आप मुझे शत्रु समझते हैं? मैं बिलकुल निरपराधी हूं। आपका उपर्युक्त भाषण ठीक नहीं है।" इस पर श्रीकृष्ण तमक कर बोले, तू ऐसा अधमाधम है कि ८६ राजाओं को जीत कर, उन्हें कारागार में डालकर, तथा और भी १४ राजाओं को जीत कर नरयज्ञ करना चाहता है; तिस पर भी तू अपनेको निरपराधी ही समझता है? राजा लोग यदि राजाओं का केवल अपमान ही करें तो यह अत्यन्त निन्दनीय बात है; फिर तूने उन्हें कैद में डाल रखा है और आगे पशुओं की तरह उनका वध करना चाहता है! हमारे शरीर में सामर्थ्य होने पर भी यदि हम इस प्रकार का अत्यन्त क्रूर कर्म होने दें तो सौ राजहत्याओं का पातक हमारे ही सिर पर बैठे। इस लिये मैं कहता हूं कि तू कैदी राजाओं को छोड़ दे; अथवा कृष्ण, भीम और अर्जुन में से किसी एक के साथ द्वंद्वयुद्ध करने के लिये अभी तैयार हो!" ८६ राजाओं को अपने बाहुबल पर जीतनेवाले पराक्रमी और अभिमानी जरासंध ने उनसे कहा कि तुम तीनों की धमकी से डर कर यदि मैं कैदी राजाओं को छोड़ दूंगा तो मेरे क्षात्र-तेज में बट्टा लगेगा; तुम्हारी इच्छा ही है तो मैं एक प्रकार से युद्ध करने के लिये तैयार हूं। इसके बाद जरासंध ने अपने पुत्र सहदेव को गद्दी पर बैठा कर भीमसेन को बाहुयुद्ध में ललकारा। इन दोनों वीरों का बाहुयुद्ध, कार्तिक महीने की प्रतिपदा से चतुर्दशी की रात तक, बराबर हो रहा था! अन्त में भीमसेन ने जब देखा कि जरासंध कुछ थक आया है तब उन्होंने उसे एकदम उठा कर और चारों ओर जोर से घुमा कर पृथ्वी पर पटक दिया; और इसके बाद उसका एक पैर

पकड़ कर और दूसरा खींच कर उसका शरीर बीचों-बीच से फाड़ डाला; और राक्षसी के जोड़ने के पहले जैसा था वैसा ही उसे फिर कर डाला! दूसरे दिन कारागार के सब राजाओं को मुक्त करके, सहदेव को सिंहासन पर बैठाया। इसके बाद बन्धमुक्त किये हुए राजाओं से और सहदेव से राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर को सहायता करने का वचन लेकर वे तीनों जरासंध के सुवर्णरथ में बैठ कर इन्द्रप्रस्थ को लौट आये। कुछ दिन बाद श्रीकृष्ण भी उसी रथ से द्वारका को चले गये- (सभापर्व, अ० १३-२४)

राजसूय यज्ञ के मार्ग का यह भारी विघ्न इस प्रकार दूर हो गया। इसके बाद दिग्विजय करके, चारों दिशाओं के राजाओं से कर लाने के लिये, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव, सेना के साथ, इन्द्रप्रस्थ से चले। अर्जुन उत्तर दिशा की ओर गये और कुलिंद, प्राग्जोतिष आदि देशों के राजाओं से कर लिया। बाद को उन्होंने उलूक देश के बृहंत राजा का पराजय किया। इसके बाद त्रिगर्त लोगों को जीत कर वे श्वेत पर्वत पर गये। वहां से किंपुरुष, उत्तर कुरु, आदि लोगों से कर लेकर वे इन्द्रप्रस्थ राजधानी को लौट आये। पूर्व दिशा की ओर भीमसेन गये थे। उन्होंने पहले पांचाल, आदि लोगों से कर लिया। चेदी देश के राजा शिशुपाल ने युद्ध नहीं किया और भीम का गौरव करके उसने कर देकर उन्हें विदा किया। इसके बाद कोसल, अयोध्या, मत्स्य, विदेह, सुम्ह, म्लेच्छ, इत्यादि देशों के, और लोगों के, राजाओं को जीत कर भीमसेन इन्द्रप्रस्थ को लौट आये। दक्षिण ओर के राजाओं को जीतने के लिये सहदेव भेजे गये थे। उन्होंने पुलिंद, शूरसेन, आदि लोगों को जीत कर किष्किंधा के मैंद और द्विविद लोगों से कर लिया। माहिष्मती के राजा नील से भी उन्होंने कर वसूल किया और म्लेच्छ, केरल, आंध्र इत्यादि

लोगों को जीता। अन्त में लंका के विभीषण से कर लेकर वे राजधानी को लौट आये। पश्चिम दिशा को नकुल गये थे। दशार्ण, मरुदेश, उत्सवसंकेत, पंचनद, हूण, इत्यादि देश और लोग जीत कर नकुल भी बहुतसा कर इन्द्रप्रस्थ को वसूल कर लाये। इस प्रकार चारों दिशाओं के राजाओं को जीत कर चारो भाई जो धन, धान्य, हाथी, घोड़े, बहुमोल वस्त्र और रत्न आदि ले आये वह सब उन्होंने युधिष्ठिर ही को अर्पण किया। पांडवों का जो सामर्थ्य था उसका बीज इसीमें है। दिग्विजय करके जो धन प्राप्त किया, जो यश और कीर्ति सम्पादन की, उसकी उन्होंने अपने लिये बिलकुल अपेक्षा नहीं की; किन्तु वह सब उन्होंने युधिष्ठिर को-अपने बड़े भाई को-अर्पण किया; यही उनके दिग्विजय का मर्म है-(सभापर्व, अ० २५-३२).

महाभारत पढ़ने पर यह मालूम होता है कि प्राचीन काल में, इस भारतभूमि में, कितनी अपार सम्पत्ति थी और उस दशा की, आज कल की दीन दशा से जब हम तुलना करते हैं तब हमारा मन अत्यन्त उद्विग्न हो जाता है, जब हम महाभारत में उस समय के कुशल कारीगरों के बनाये हुए विस्तीर्ण और भव्य राजमहलों, उनकी सम्पत्ति, सोने की जालियां लगी हुई नक्शदार खिड़कियों, भीतर की छतों, आदि में लगे हुए मोती और रत्नों, इत्यादि का वर्णन पढ़ते हैं तब मन अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो जाता है। राजसूय यज्ञ के समय बड़े बड़े राजा लोग युधिष्ठिर के पास जो भेट लाये थे और पांडव लोग जो कर वसूल कर लाये थे उसमें, वर्णन है कि, बहुमूल्य रत्न, सोने के सिक्के, सोने के लोटे-थालियां, रत्नखचित हस्तिदन्ती मूठ की और आकाश के समान नीले रंग की उत्कृष्ट तथा पानीदार तलवारें, रत्नों की जड़ाई के कामवाले

कवच, उत्तम सजे हुए रथ, महीन और चिकने, ऊन तथा रेशम के, वस्त्र इत्यादि पदार्थ लाये। उसी प्रकार कुछ राजाओं ने बहुमूल्य भरजरी सामान के सहित उत्तम जाति के हाथी और हथिनी बाल्हीक (बलख़), आनर्त (काठियावाड़), वनायुदेश (ईरान), इत्यादि देशों के जातिवंत घोड़े, आदि नजराने के तौर पर भेजे थे। भारतवर्ष की प्राचीन काल की सम्पत्ति, अपूर्व वैभव और उस समय की प्रजा की अत्यन्त वृद्धि का चित्र यदि किसी को देखना हो तो वह महाभारतादि ग्रन्थों के राजसूय, अश्वमेध, इत्यादि बड़े यज्ञों के वर्णन ध्यानपूर्वक पढ़े। उस समय के साधारण लोगों की भी दशा, " हृष्टपुष्टजनाकीर्ण " (हर्ष और शरीरसामर्थ्य का सुख भोगनेवाली प्रजा से भरा हुआ देश) इस प्रकार के अनेक विशेषणों से अच्छी तरह मालूम हो सकती है। जिस समय ब्राह्मण इन्द्रिय-निग्रह करनेवाले, तपोनिष्ठ, सत्यवादी, सात्विक वृत्ति से रहनेवाले और सब जनसमूह को सन्मार्ग दिखानेवाले थे; क्षत्रिय कर्तव्य-दक्ष, धर्मशील, शूर, पराक्रमी और धर्म, सत्य, तथा प्रजा के लिए प्राण भी देने के लिए तैयार रहते थे; और अन्य सर्वसाधारण जनसमूह धार्मिक और पापभीरु था, उस समय सारे देश में, जहां देखिये वहीं, शान्ति, समाधान, वैभव, आनन्द का ही साम्राज्य था; इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं। आज कल सभी बातें उलटी हो गई हैं; इस कारण चारों ओर, उपर्युक्त चार बातों में से सिर्फ एक मृत-शांति मात्र देख पड़ती है; अन्य बातों का पूरा अभाव है; अस्तु।

दिग्विजय करके पांडवों ने सारे जगत् को दिखला दिया कि हम पराक्रम, शौर्य और वैभव में सब राजाओं से श्रेष्ठ हैं, इसके बाद युधिष्ठिर ने यज्ञ की तैयारी की। द्वारका से श्रीकृष्ण को बुलाया। याज्ञवल्क्य, सुसामा, पैल, इत्यादि ऋषियों को यज्ञ के भिन्न भिन्न कार्य सौंप कर भगवान् व्यास स्वयं

यज्ञ के ब्रह्मा हुए। युधिष्ठिर ने, सब देशों के राजाओं को, शूर क्षत्रियों को, धनवान् वैश्यों को और प्रतिष्ठित शूद्रों को यज्ञ का निमंत्रण देने के लिए दूतों को भेजा। जब सब लोग जमा हो गये तब भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृप, दुर्योधन, इत्यादि को बुलाने के लिए युधिष्ठिर ने नकुल को हस्तिनापुर भेजा। हस्तिनापुर से जब ये सब लोग आ गये तब उत्सव के भिन्न भिन्न कार्य युधिष्ठिर ने सम्मानपूर्वक कौरवों ही के सिपुर्द किये। धान्य और फल-फलहरी का अधिकार दुःशासन को दिया। ब्राह्मणों के आगत-स्वागत करने का कार्य अश्वत्थामा को दिया गया। राजाओं का स्वागत करना संजय को सौंपा गया। भीष्म और द्रोण इस बात की देखरेख के लिए नियत हुए कि प्रत्येक बात योग्य रीति से हुई है या नहीं। सोना, रत्न और दक्षिणा पर देखरेख करने का काम कृपाचार्य को दिया गया। सब प्रकार के द्रव्य व्यय करने का काम विदुर के सिपुर्द हुआ। राजा लोग जो नजराने लाते थे उनका स्वीकार करना दुर्योधन की तरफ़ था। इस प्रकार ये काम सब को सौंपे गये थे और ब्राह्मणों के पैर धोने का कार्य स्वयं श्रीकृष्ण ने स्वीकार किया था! सब प्रकार का प्रबन्ध हो जाने के बाद युधिष्ठिर ने दीक्षा लेकर यज्ञ प्रारम्भ किया। कई दिन तक यज्ञ निर्विघ्नता के साथ होता रहा। इसके बाद, अभिषेचनीय दिन, सब राजा यज्ञमण्डप की अन्तर्वेदी पर आ बैठे। अब वह समय आ गया जिसमें सब राजाओं से श्रेष्ठ पुरुष को अग्रपूजा का मान देकर, प्रारम्भ में उसकी पूजा की जाती है और फिर अन्य राजाओं की, उनकी योग्यता के अनुसार, अर्घ्यपूजा की जाती है। युधिष्ठिर ने उस समय जब भीष्म से पूछा कि 'अग्रपूजा' का मान किसको दिया जाय तब उन्होंने यह उत्तर दिया कि "तेज, बल, पराक्रम तथा अन्य गुणों में सब से श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ही इस मान के योग्य हैं!"

भीष्म के इस अभिप्राय के अनुसार सहदेव ने श्रीकृष्ण की यथाविधि अग्रपूजा की; और उन्होंने भी उस पूजा का सत्कार-पूर्वक स्वीकार किया। यह देख कर चेदी देश का राजा शिशु-पाल जल उठा और युधिष्ठिर, भीष्म तथा श्रीकृष्ण की वह मनमानी निन्दा करने लगा। वह बोला, "यह बिलकुल अनु-चित है जो पांडवों ने श्रीकृष्ण की अग्रपूजा की। कृष्ण न तो राजा है और न इसे छत्रचामर का अधिकार ही है। ऐसी दशा में उसकी अग्रपूजा करना यहां के सभी एकत्रित राजाओं का अपमान करना है। यदि कहा जाय कि कृष्ण वयोवृद्ध है; इस लिये उसकी पूजा की, सो भी ठीक नहीं; वसुदेव उससे भी वयोवृद्ध बैठा है। पांडवों को चाहिये था कि अपने वृद्ध ससुर द्रुपद की पूजा करते अथवा अपने आचार्य द्रोण गुरु को यह मान देते; नहीं तो इस यज्ञ के मुख्य ऋत्विज भगवान् व्यास की अग्रपूजा करनी चाहिये थी। परन्तु जो राजा नहीं है, आचार्य नहीं है, ऋत्विज नहीं है, सब से वयोवृद्ध भी नहीं है और न आर्तों में पुरखा है—ऐसे कृष्ण की पूजा इन्होंने क्यों की? पांडवों को यदि कृष्ण की ही पूजा करनी थी तो उन्होंने इतने राजाओं को यहां बुला कर इनका ऐसा अपमान क्यों किया? हमने जो युधिष्ठिर को कर दिया सो इस लिए नहीं कि, हम उसकी शूरता या पराक्रम से डर गये हों; किन्तु हमने तो इस लिए दिया कि जिससे यज्ञ के समान धर्मकार्य में कुछ मदद हो: तिस पर भी युधिष्ठिर ही उलटे हमारा अप-मान करता है—यह भी कोई बात है? अच्छा, पांडवों ने अपनी मूर्खता से कृष्ण को अग्रपूजा का मान दिया; पर उसे तो अपनी वास्तविक योग्यता पर ध्यान देना था; इसीने इस पूजा का स्वीकार क्यों किया? आज हम सब को मालूम हो गया, कि युधिष्ठिर और भीष्म कितने धर्मज्ञ हैं और कृष्ण की सच्ची योग्यता क्या है!" ऐसा कहते हुए शिशुपाल, क्रोध से,

तत्पर होकर श्रीभरतविष्णु का दर्शन करते हैं वे विष्णु भगवान को प्राप्त होते हैं, जो पुण्यात्मा इस तीर्थ में जाते हैं उनके पितर मुक्ति की इच्छा से प्रसन्न होते हैं ।

हृषीकाणि पुरा जित्वा दर्शः संप्रार्थितस्त्वया ।
यद्वाहं तु हृषीकेशो भवाम्यत्र समाश्रितः॥१२॥
ततोऽस्यापरकं नाम हृषीकेशाश्रितं स्थलम् ॥
त्रेतायुगे दाशरथिर्नाम्ना भरतसंज्ञकः ॥ १३ ॥
तुर्यो भागो मदीयो वै भविष्यति सहाग्रजः ।

विषयेंद्रियों को जीतकर पहिले तुमने मेरा दर्शन मांगा है, इसी कारण मैं इस स्थान में हृषीकेश नाम से स्थित हूं, इस क्षेत्र का दूसरा नाम हृषीकेशाश्रित क्षेत्र है, त्रेतायुग में दशरथजी के पुत्र भरतजी सहित मेरा चौथा अंश उत्पन्न होगा इस स्थल में भरतजी तप करेंगे ।

सप्तसामुद्रकम् ।

ततो वै चोत्तरे भागे धनुषां च चतुःशते ॥१४॥
सप्तसामुद्रकं नाम तीर्थं विष्णुसलोकदम् ॥
अश्वमेधत्रयस्यात्र फलं वै स्नानमात्रतः ॥ १५ ॥

इसकी कुरूपता मिट जायगी। इस कारण उसको उसकी मा ने वैसा ही रख लिया। शिशुपाल की मा को यह भी मालूम हुआ कि जिसकी गोद में बैठने पर इस लड़के के दो हाथ गिर पड़ेंगे और तीसरा नेत्र भी न रहेगा वही इस लड़के का शत्रु है। एक दिन श्रीकृष्ण अपनी बुआ (शिशुपाल की मा) के घर गये। शिशुपाल को उसकी मा ने श्रीकृष्ण की कनियाँ में बैठा दिया; उसी समय इसके दो हाथ गिर पड़े और तीसरी आंख भी नहीं रही! यह देख कर वह समझ गई कि शिशुपाल के शत्रु यही हैं। तब उसने अपनी यह इच्छा प्रकट की कि, श्रीकृष्ण यह वचन दें कि "मैं शिशुपाल के अपराध क्षमा करूंगा।" उस समय इन्होंने शिशुपाल के सौ अपराध क्षमा करने का अभिवचन दिया। अब इसके सौ अपराध पूरे होनेवाले हैं। इस लिए श्रीकृष्ण के द्वारा शीघ्र ही इसका वध होनेवाला है। भीमसेन! तुमको इसके साथ युद्ध करने की ज़रूरत नहीं है।" इसके बाद शिशुपाल ने भीष्म की इस लिए बड़ी निर्भर्त्सना की कि उन्होंने श्रीकृष्ण की व्यर्थ प्रशंसा की, और अन्त में वह बोला, "इन सब राजाओं का तुमने अपमान किया, तुम्हारा वध करने की अभी इनकी इच्छा नहीं है, इसी कारण बुड्ढे! तुम अभी बचे हो।" इस पर भीष्म ने ज्योंही यह उत्तर दिया कि "इन सब राजाओं को मैं फूस के बराबर भी नहीं समझता" त्योंही सब राजा अत्यंत क्षुब्ध हुए और सब उन्मत्तता के साथ चिल्लाने लगे कि "यह बुड्ढा बहुत ही गर्विष्ट और उर्मट हो गया है, इसे क्षमा न करना चाहिए, इसे पशु की तरह काट डालो, अथवा खौलते हुए तेल की कढ़ाई में इसे डाल दो!" तथापि भीष्म के समान वृद्ध और कसा हुआ वीर बिलकुल ही नहीं डगमगाया। वे बोले, "सब राजाओं का मान मथ कर हमने श्रीकृष्ण की अग्रपूजा की है, वह जिसे मान्य न हो वह श्रीकृष्ण के साथ

युद्ध करने के लिए तैयार हो।" इसके बाद ज्योंही शिशुपाल ने निर्भर्त्सनापूर्वक श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा त्योंही श्रीकृष्ण ने शान्ति के साथ उत्तर दिया, "इस शिशुपाल ने पहले ही से मेरे साथ भारी शत्रुता कर रखी है, हम जब प्राग्ज्योतिष देश को गये थे तब हमारे पीछे इसने द्वारका में आग लगा दी। वसुदेव ने जब अश्वमेध यज्ञ किया तब यज्ञ में विघ्न करने के लिए यह घोड़ा भगा ले गया। वैसे ही सौवीर देश को भेजी हुई बभ्रु नामक यादव की भार्या और कारूप देश के राजा की राजकन्या इसने कपट से हरण की। इस प्रकार के १०० अपराधों की मैंने आज तक क्षमा की है। इसके सिवा, इस मूर्ख ने पहले रुक्मिणी से भी विवाह करने का प्रयत्न किया था।" यह अन्तिम वाक्य सुन कर शिशुपाल जोर से हँस कर उपहासपूर्वक बोला, "इन सब राजाओं के सामने तू स्वयं ही कहता है कि 'मेरी भार्या पहले दूसरे को दी जाती थी' और ऐसा कहते हुए तुझे लज्जा भी नहीं आती?" ये शब्द सुनते ही-यह मालूम होने के पहले ही, कि यह सब क्या हाल हो रहा है-श्रीकृष्ण ने तत्काल सुदर्शन-चक्र का स्मरण किया और ज्योंही वह हाथ में आया त्योंही उन्होंने उसे शिशुपाल पर छोड़ दिया। उसने क्षणार्ध में शिशुपाल का शिर उड़ा दिया! यह अघटित घटना देखते ही सब राजा भय-चकित हो गये; और फिर यज्ञ में विघ्न डालने का विचार किसीके मन में भी नहीं आया, इसके आगे यज्ञ की रक्षा स्वयं श्रीकृष्ण ने की और यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। अन्त में अवभृथ-स्नान होने के बाद युधिष्ठिर को सम्राट (सार्वभौमराजा) का पद विधिपूर्वक दिया गया धर्मराज ने सब राजाओं और ऋषियों को सम्मानपूर्वक विदा किया। इसके बाद धर्मराज को सार्वभौम पद प्राप्त होने के विषय में कुंती, द्रौपदी और सुभद्रा का अभिनन्दन करके, श्रीकृष्ण

भी द्वारका को चले गये। व्यास भी कैलास को चले; पर चलते समय वे धर्मराज से बोले:—

दुर्योधनापराधेन भीमार्जुनबलेन च।
त्वमेकं कारणं कृत्वा कालेन भरतर्षभ॥
समेतं पार्थिव क्षत्रं क्षयं यास्यति भारत॥

"तेरे निमित्त से, दुर्योधन के अपराध से और भीमार्जुन के पराक्रम से, कुछ वर्ष बाद इन सब राजाओं का और क्षत्रियों का संहार होनेवाला है।" यह भविष्य सुन कर युधिष्ठिर का मन अत्यन्त उद्विग्न हुआ और उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि आज से तेरह वर्ष तक अपने मन में शत्रु-मित्र की भेदबुद्धि न रखेंगे और न कठोर भाषण करके किसीका जी दुखावेंगे- (सभापर्व, अ० २४-४६)

राजसूय यज्ञ के लिये आये हुए ऋषि, ब्राह्मण, राजा, इत्यादि सब चले गये और दुर्योधन सभागृह की शोभा देखने के लिये पीछे रह गया। जब कि वह शोभा देखते हुए घूम रहा था तब स्फटिक की फर्श की हुई जमीन देख कर उसने समझा कि पानी भरा है और वस्त्र ऊपर समेटने लगा; और पानी को ही स्फटिक-भूमि समझ कर वह उसमें गिर पड़ा! बन्द किये हुए स्फटिक के दरवाजे उसने खुले समझे और ज्योंही वह आगे बढ़ने लगा त्योंही उसका सिर फूट गया; तथा जो दरवाजे खुले थे वे उसे बन्द हुए से जान पड़े; उन्हें ज्योंही वह खोलने लगा त्योंही मुँह के बल गिर पड़ा! उसका यह हाल देख कर भीम, अर्जुन, आदि पांडव, उनके नौकर-चाकर और द्रौपदी आदि स्त्रियां उसका उपहास करने लगीं! उनका यह उपहास दुर्योधन के हृदय में तीर की तरह सलने लगा। स्फटिक की भीत पर जब उसका मस्तक लगा तब भीमसेन हँसते हँसते बोले, "हे धृतराष्ट्रसुत! यह द्वार नहीं है,

दीवाल है।" यह बात उसके अंतःकरण में बहुत ही लगी! पांडवों की सम्पत्ति, उनका प्रताप और कीर्ति, भिन्न भिन्न राजाओं के दिये हुए नजराने और पांडवों की उन्नति तथा अपना ह्रास देख कर, मत्सर से, दुर्योधन का अन्तःकरण धधक उठा। उसने शकुनी मामा से यह भी जता दिया कि हमें किसी न किसी उपाय से यदि यह सम्पत्ति न मिली तो हम जान दे देंगे। मामा ने भानजे को समझाया, "राजा युधिष्ठिर को जुआ खेलने का व्यसन है; पर वह उसमें अधिक प्रवीण नहीं है; तथापि यदि उसे द्यूत के लिये बुलावेंगे तो वह इन्कार न करेगा। मैं द्यूत में बहुत निपुण हूं। धृतराष्ट्र की ओर से उसे द्यूत खेलने के लिये बुलवाओ। मैं तुमको उसकी यह अपार सम्पत्ति और यह राज्य प्राप्त करा दूंगा!"

यह सलाह दुर्योधन को पसन्द पड़ी और निश्चय हुआ कि शकुनी धृतराष्ट्र के सामने द्यूत की बात निकाले। हस्तिनापुर लौट आने पर शकुनी ने धृतराष्ट्र से यह बात निकाली, "तुम्हारा बड़ा लड़का दुर्योधन आज कल अशक्त, पीला और कृश हो गया है।" तब दुर्योधन ने कहा, "पांडवों का वैभव और सम्पत्ति देख कर मेरे अन्तःकरण की शान्ति जाती रही है। मुझे चैन नहीं पड़ती।" तुरन्त ही शकुनी ने धीरज से कहा, कि कहिये मैं द्यूत खेल कर वह सम्पत्ति दुर्योधन को प्राप्त करा दूं।" इस पर धृतराष्ट्र ने ज्योंही कहा कि "इस विषय में धर्मात्मा विदुर की सलाह मुझे लेनी चाहिये" त्योंही बहुत व्याकुल होकर दुर्योधन बोला, "कुछ भी हो, विदुर द्यूत न खेलने देगा और तुम भी उसीकी मानोगे और मेरी इच्छा तृप्त न होगी; मैं मर जाऊंगा! मेरे मरने पर, विदुर के साथ, तुम सुख से यह राज्य भोगना!" यह जान कर कि, विदुर का मत द्यूत के विरुद्ध होगा, धृतराष्ट्र ने दुर्योधन का मन बदलने के लिये फिर प्रयत्न किया। परन्तु, उस सभा में हमसे

कैसी कैसी भूलें हुईं, भीम ने हमें अंधसुत, अंधे का लड़का, किस प्रकार कहा, पांडवों का धन कितना अगणित है, राजा लोगों के यहां से आये हुए रत्न, वस्त्र, शस्त्र, हाथी, घोड़े, इत्यादि का कर कितना अपरिमित है, सार्वभौमपद धारण करने के समय का युधिष्ठिर का अभिषेक-समारम्भ कैसा अपूर्व था- इन सब बातों का दुर्योधन ने बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया। धृतराष्ट्र को यह जान कर बहुत खेद हुआ, कि हमारे पुत्र के मन में पांडवों के विषय में पूर्ण मत्सर भिद गया है। वे बोले, "दुर्योधन, अपना जितना राज्य है उतने ही में सन्तोष मानना श्रेयस्कर है। तुम्हारा राज्य बराबर है, तुम्हारा पराक्रम भी बराबर ही है। इस लिये उनका वैभव देख कर उनसे द्वेष और मत्सर करना अच्छा नहीं है। द्यूत से कलह होगी; और उससे राज्य तथा कुल नष्ट होने का भय है। पांडव भरतकुल के बाहु हैं। उन्हें तोड़ डालने की तू इच्छा मत कर।" इस प्रकार धृतराष्ट्र ने बहुत कुछ समझाया। परन्तु दुर्योधन ने अपना हठ नहीं छोड़ा। पांडवों के राजसूय यज्ञ का वैभव देख कर उसका मन जो एक बार मत्सर से ग्रस गया वह कोटि यत्न करने पर भी शुद्ध नहीं हुआ। अन्त में पुत्रप्रेम के पाश में फँसे हुए धृतराष्ट्र ने, द्यूत खेलने के लिये आज्ञा दे दी और उसके लिये एक सभास्थान तैयार करवाया। द्यूत के लिये युधिष्ठिर को बुलाने के लिये विदुर को भेजना निश्चय हुआ। विदुर को ज्योंही यह हाल मालूम हुआ त्योंही उन्होंने साफ़ कह दिया कि "इस काम में मेरी बिलकुल ही सम्मति नहीं है। मैं यह अभी से कहे देता हूं कि इस द्यूत से कलह उत्पन्न होकर अवश्य अनर्थ मचेगा।" इस पर धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया कि "द्यूत जो खेला जायगा वह मित्रता का होगा; हम, तुम, भीष्म, द्रोण, कृप के समान बड़ों के सामने कलह होने की बिलकुल सम्भावना नहीं है।" इतना कह कर

धृतराष्ट्र ने विदुर को इन्द्रप्रस्थ भेजा। उन्होंने वहां जाकर धृतराष्ट्र का सन्देशा युधिष्ठिर से बतलाया। युधिष्ठिर ने कहा कि द्यूत से कलह और अनर्थ मचते हैं, तिस पर भी धृतराष्ट्र के समान पुरखा मनुष्य द्यूत की बात निकालते हैं, यह कुछ अच्छा नहीं है। धर्मराज ने, इस विषय में, विदुर का मत लिया। विदुर ने कहा, "मैंने, द्यूत न करने के लिये, धृतराष्ट्र से बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु उसका कुछ भी उपयोग नहीं हुआ। उनका यह सन्देशा मैंने तुमको बतलाया है: इसके आगे जो तुम्हें अच्छा जान पड़े वही करो।" उस समय यह कह कर, कि "कुछ भी हो, युद्ध अथवा द्यूत के लिये किसीके बुलाने पर मैं पीछे नहीं हट सकता, यह अपना व्रत मैं छोड़ नहीं सकता," युधिष्ठिर ने हस्तिनापुर जाने की तैयारी की। चारों भाइयों और द्रौपदी को साथ लेकर वे हस्तिनापुर आ पहुँचे। दूसरे दिन सुबह सब लोग व्यायाम, स्नान, पूजा-अर्चा, फलाहार, आदि से निपट कर द्यूत-सभा में आ बैठे। भीष्म, द्रोण, विदुर, कृप भी, बड़ी नाखुशी से, वहां आये। उस समय युधिष्ठिर ने कहा, "द्यूत एक प्रकार का पाप-कपट है। आर्यों को इसके फन्दे में न पड़ना चाहिये। तथापि, यदि द्यूत खेलना ही हो तो कपट से तो कभी न खेलना चाहिये।" इस पर शकुनी ने उत्तर दिया, "प्रबल दुर्बल को, विद्वान् अविद्वान् को और द्यूतनिपुण भोलेभाले को जीत ले तो इसमें कपट कैसा? द्यूत में मैं तेरा सर्वस्व हरण करूंगा, इसका यदि तुझ डरपोक को डर मालूम होता हो तो तुझे बिलकुल खेलना ही न चाहिये।" यह कथन युधिष्ठिर को बहुत ही खटका; और वे इस ईर्षा से खेलने के लिये बैठे, कि चाहे कुछ भी हो तथापि पीछे नहीं हटेंगे। दुर्योधन ने कहा कि हमारे बदले हमारा मामा शकुनी खेलेगा। इस पर धर्म

ने एक यह शर्त निकाली कि एक के बदले दूसरे का खेलना द्यूत-नियम के विरुद्ध है। परन्तु इसे किसीने नहीं सुना। द्यूत शुरू होते ही धर्म ने पहले मोतियों की एक बहुमोल कंठी दाँव में लगाई। दुर्योधन ने भी दूसरी तरफ से कुछ रत्न दाँव में लगाये। शकुनी ने पहला दाँव फेंक कर कहा 'जितमेव' (यह देखो जीत लिया!) और वह कंठी जीत ली। इसके बाद युधिष्ठिर ने रत्नों से भरी हुई पेटियाँ दाँव में लगाईं; उन्हें भी शकुनी ने 'जितं' कह कर जीत लिया। इस प्रकार, एक के पीछे एक, युधिष्ठिर के लगाये हुए युद्धोपयोगी रथ, रथों के घोड़े, अलंकारोंसहित सुन्दर और तरुण हज़ारों दासदासी, सारे साज से सजी हुई आठ हस्तिनी, साधारण रथ, चित्ररथ, गंधर्व के दिये हुए अर्जुन के उत्तम घोड़े, आदि, सब शकुनी ने हरण कर लिया! विदुर ने जब देखा कि इस प्रकार कपट के द्यूत से पांडवों का सर्वस्व शीघ्र ही हरण हो रहा है तब उन्हों-ने इस अन्याय का प्रतिकार करने के लिये धृतराष्ट्र से कहा, "पांडवों को द्यूत में छल कर शकुनी, दुर्योधन के लिये, उनकी सब सम्पत्ति हरण किये लेता है, यह देख कर, धृतराष्ट्र! तुझे आनन्द हो रहा है; पर दुर्योधन के इस अन्यायपूर्ण कार्य से घोर युद्ध होगा और अपने कुल का अवश्य नाश होगा। दुर्योधन! यह तेरे राजमहल में अशुभसूचक गोमायु (स्यार) घुसा है, इसे छोड़ देने ही में तेरा कल्याण है। कुल के हित के लिए एक पुरुष का त्याग करना चाहिए, एक गाँव की रक्षा के लिए एक कुटुम्ब का त्याग कर देना चाहिए; देश के लिए एक गाँव का त्याग कर देना चाहिए; और अ-पनी आत्मा के कल्याण के लिए पृथ्वी का भी त्याग करना चाहिए। पांडवों का धन हरण करने में तुम्हारा ऐसा कौन

सा हित है? उन्हींको वश में करके उनके अन्तःकरण हर लेने में क्या तुम्हारा अधिक कल्याण नहीं है? मेरे इस कथन की उपेक्षा करके यदि तुम पांडवों से कलह मचाओगे तो सब का समूल नाश होगा।" विदुर का यह भाषण सुन कर दुर्योधन का पित्त भड़क उठा। "हमारा अन्न खा कर तुम हमारे शत्रुओं से ही मित्रता करना चाहते हो। तुम इतने कृतघ्न हो, यह मुझे पहले ही मालूम था। पांडवों को यदि तुम अच्छा समझते हो तो तुम उनके यहां, या और जहां तुम्हें जाना हो, निकल जाओ। व्यभिचारिणी स्त्री को चाहे जितना राजी रखो, तथापि वह अपने पति को छोड़ कर दूसरे के पति के पास गये बिना कभी नहीं रह सकती। ऐसा ही तुम्हारा भी हाल है!" दुर्योधन का यह उद्दंडतापूर्ण कथन सुन कर विदुर शान्ति के साथ बोले, "दुर्योधन, तुझे सदा प्रिय बोलनेवाले मंत्री चाहिये; पर यह तू अच्छी तरह समझ ले कि ऐसे मंत्रियों से तेरा कल्याण कभी न होगा।

> लभ्यते खलु पापीयान्नरो नु प्रियवागिह।
> अप्रियस्य हि पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥
> यस्तु धर्मपरश्च स्याद्धित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
> अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्॥

राजा का मन देख कर बोलनेवाले बहुत से लोग मिल जायँगे। परन्तु अप्रिय होकर हितकारक भाषण करनेवाला वक्ता भी दुर्लभ है, और शान्ति के साथ वह भाषण सुन कर उसके अनुसार चलनेवाला राजा भी दुर्लभ है। राजा को रुचे चाहे न रुचे उसे, जो श्रेयस्कर है, वही बतलानेवाले मंत्री ही राजा के सच्चे सहायक हैं। मेरी यही इच्छा

है कि मेरे भाई धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों का हित हो; इसी कारण मैं यह सब कुछ कह रहा हूं। यह यदि तुम्हें पसन्द नहीं आया तो इसमें मेरा क्या दोष है?" विदुर ने इतना उपदेश किया, तथापि उसका कुछ भी उपयोग नहीं हुआ। चिकने घड़े पर पानी डालने की तरह उनका श्रम व्यर्थ गया।

इसके बाद फिर द्यूत शुरू हुआ। अपनी प्रजा में ब्राह्मणों को छोड़ कर, बाकी अपना सब राज्य युधिष्ठिर ने दाँव में लगा दिया; और उसे शकुनी ने जीत लिया! बाद को युधिष्ठिर ने अपने राजपुत्र दाँव में लगाये, उन्हें भी कपटी शकुनी ने जीत लिया! इस प्रकार सर्वस्व हारे हुए युधिष्ठिर के पास अब अपने भाई और स्त्री को छोड़ कर शेष कुछ भी नहीं रहा! तथापि उन्होंने द्यूत खेलना बन्द नहीं किया। शूर क्षत्रिय, जिस प्रकार एक बार प्राणान्त होते तक निश्चय से लड़ता है, उसी प्रकार यह द्यूतासक्त युधिष्ठिर (धर्म), अपना सर्वस्व नाश होते तक, द्यूत खेलने के लिए तैयार हुआ! युधिष्ठिर ने अपने प्रत्येक भाई की बड़े प्रेम से स्तुति करके, क्रम क्रम से, नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम को दाँव पर लगा दिया और शकुनी ने उन्हें तत्काल, प्रत्येक वार, आनन्द से "जितमेव" कह कर जीत लिया। अन्त में उन्होंने अपने ही को दावँ में लगा दिया; और उन्हें भी शकुनी ने जीत लिया। इस प्रकार पाँचो पराक्रमी पांडव, घड़ी ही भर में, कौरवों के दास बन गये!

इतने में बड़ी दयालुता का आविर्भाव लाकर शकुनी युधिष्ठिर से बोला, "अरे, अरे, युधिष्ठिर! तेरे पास अभी दूसरा धन बाकी है और तूने अपने को दाँव में लगा दिया, यह बड़े खेद की बात हुई। अरे, अपने को छुड़ा कर तेरी प्रिय भार्या पांचाली, जो पटरानी है, उसे दावँ में लगा!" यह कह कर, शकुनी ने उस साध्वी का ऐसी भरी सभा में अपमान किया, तथापि युधिष्ठिर की आखें नहीं खुलीं! जुआ खेलते समय जुआरियों

के शरीर में जो एक प्रकार का पागलपन संचार कर जाता है उसीने उस समय युधिष्ठिर को पछाड़ा था; इसी कारण उन्हें यह भी भान न था कि हम क्या कर रहे हैं। "शरद्दतु के कमलों की तरह जिसके शरीर से सुवास निकलती है, जिसमें गृहिणी के सब उत्तमोत्तम गुण हैं, जो हमारे अनुकूल और सदा प्रिय भाषण करनेवाली है; जो मेरे सो जाने पर स्वयं सोनेवाली और मेरे पहले सो कर उठनेवाली है, जो धौम्य से लेकर गोप तक सब की स्वयं खबर लेती है वह अपनी प्रिय भार्या पांचाली मैंने दावँ में लगाई!" ये शब्द युधिष्ठिर के मुख से निकलते ही शकुनी, पाँसे फेंक कर, बड़े आवेश के साथ, "जितमेव" कह कर चिल्लाया! हो गया! युधिष्ठिर के द्यूत-व्यसन का और शकुनी के कपटाचरण का अन्त हो गया; और सारी सभा में एक ही हाहाकार मच गया! भीष्म, द्रोण, आदि वृद्ध पुरुषों ने और अन्य राजाओं ने भी दुःख तथा लज्जा से, अपनी अपनी गर्दनें नीची कर लीं। जो लोग जमा थे सब की आंखों से अश्रुधाराएं चलने लगीं। विदुर तो दुःख से विह्वल हो गये। अंधा धृतराष्ट्र, कुछ आनन्द के साथ, पास के लोगों से पूछने लगा "किं जितं, किं जितं" (क्या जीता, कौन दावँ जीता?) पांडवों का सारा राज्य अनायास ही मिल गया; इतना ही नहीं; किन्तु उनकी पत्नी की विटम्बना करने का यह अच्छा मौका भी हाथ आया, इस कारण दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनी–इस चांडाल-चौकड़ी के आनन्द की तो सीमा ही न रही–(सभापर्व, अ० ४६–६५)

जब कि उस सभा में भिन्न भिन्न लोगों के मन इस प्रकार दुःख और आनन्द से व्याप्त हो रहे थे तब दुर्योधन, मानो विदुर का हृदय विदारण करते ही हुए, बोलाः–" विदुर, अब जाओ, पांडवों की प्यारी पत्नी को, उनकी उस पटरानी को, सभा में ले आओ; जाओ! हमारी दासियों में रह कर हमारे

राजमहल का भाड़ना लीपना उसे करने दो!" इस पर विदुर बोले, "युधिष्ठिर पहले अपने को हार चुके थे; इस कारण उन्हें अपनी भार्या को दाँव में लगाने का अधिकार ही न था। द्रौपदी तुम्हारी दासी नहीं हो सकती। अरे दुर्योधन, यदि तू द्रौपदी की विटंबना करेगा तो शस्त्र निगल कर मरे हुए बकरे के समान तेरी दशा होगी!" दुर्योधन विजयमद से अंधा हो गया था, उसने संकल्प कर लिया था, कि पांडवों का अपमान करने और उन्हें सताने का यह अपूर्व मौका न छोड़ना चाहिए; इस कारण विदुर का वह कथन उसे अच्छा नहीं लगा। उसने द्रौपदी को सभा में लाने के लिए प्रातिकामी नामक सारथी को भेजा! उसने राजमहल में जाकर द्रौपदी से कहा, "दुर्योधन ने तुम्हें जुए में जीत लिया है; और तुम्हें वह सभा में बुला रहा है, सो चलो!" वह यह नहीं समझ सकी कि, अचानक मेरे ऊपर यह कौन सी आपत्ति आई; इस कारण वह बड़े ही गड़बड़ में पड़ी। दूत ने द्यूत का सब हाल बतलाया। इस पर द्रौपदी ने, सभा में जाकर युधिष्ठिर से यह पूछने के लिये, उसी दूत को फिर भेजा कि "दाँव में पहले किसको लगाया था? अपने को या मुझे?" दूत ने सभा में आकर धर्मराज से पूछा; परन्तु दुःख, लज्जा और पश्चात्ताप से मृतप्राय हो जाने के कारण उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। दुर्योधन ने यह कह कर कि, "उसे जो कुछ पूछना हो वह यहीं सभा में आकर पूछे," फिर उसी सारथी को द्रौपदी के पास भेजा। राजमहल में जाकर उसने दुर्योधन का कथन फिर द्रौपदी से बतलाया। द्रौपदी ने उसे फिर लौटाया और कहा कि, "तू सभा में जाकर भीष्म, धृतराष्ट्र, आदि बड़ों से जाकर पूछ कि "मैं तुम्हारे समान पुरखों की सभा में आऊं? आप लोग यदि कहें तो मैं आने के लिये तैयार हूं।" दूत ने सभा में आकर द्रौपदी का प्रश्न

सब सभासदों से बतलाया। परन्तु किसीने भी कुछ उत्तर नहीं दिया। युधिष्ठिर ने समझा कि अब हम पूर्ण पराधीन हो गये हैं, कौरवों के कहने के अनुसार हमें चलना ही पड़ेगा। अतएव उन्होंने स्वयं उस दूत से कहा कि "तू द्रौपदी से जाकर कह दे कि वह सभा में आकर अपने ससुरों के सामने खड़ी हो।" परन्तु वह दूत धर्म के कथनानुसार द्रौपदी के पास न जाकर सभासदों से पूछने लगा, "मैं द्रौपदी से जाकर क्या कहूं?" तब दुर्योधन बोला, "दुःशासन, यह डरपोक सारथी भीम को डरता है; तू ही जाकर द्रौपदी को सभा में ले आ। ये अनाथ पांडव अब हमारे दास हो गये हैं; अब ये तेरा क्या कर सकते हैं?" दुःशासन शीघ्र ही वहां से चल कर द्रौपदी के पास आया और बोला, "अरी पांचाली, दुर्योधन ने तुझे द्यूत में जीत लिया है, सो तू अब कौरवों की सेवा कर; और पहले लाज-शरम छोड़ कर सभा में आकर दुर्योधन की ओर देख।" ये शब्द सुनते ही द्रौपदी ने समझ लिया कि अब मेरा बचना दुर्घट है। अतएव, धृतराष्ट्र की स्त्रियां जहां थीं वहां, भग कर वह जाने लगी। इतने ही में दुःशासन ने उसके केश, जो थोड़े ही दिन हुए, राजसूय यज्ञ में सार्वभौम पद के अभिषेक से पवित्र हुए थे, पकड़ कर पीछे खींच लिया! उसने उस चांडाल से बहुत बिनती की कि, "मैं रजस्वला एकवस्त्रा हूं; ऐसी स्थिति में मुझे सभा में मत ले चलो;" परन्तु उस पाषाणहृदयी दुःशासन को कुछ भी दया नहीं आई। इसके विरुद्ध उसने यह कह कर उस साध्वी के कोमल हृदय को जलाया कि "चाहे तू रजस्वला हो, चाहे एक ही वस्त्र पहने हो और चाहे बिलकुल ही वस्त्ररहित हो; मैं तुझे सभा में ले ही जाऊंगा। तुझ दासी के लिये इतनी लाज-शरम क्यों चाहिये?" "मेरे समान कुलस्त्री, राजकन्या, राजपत्नी, राजस्नुषा को, रजस्वला होने पर भी, सभा में

उसके बाल पकड़ कर दुःशासन ने उसे पीछे खींचा! (पृ० ६६)
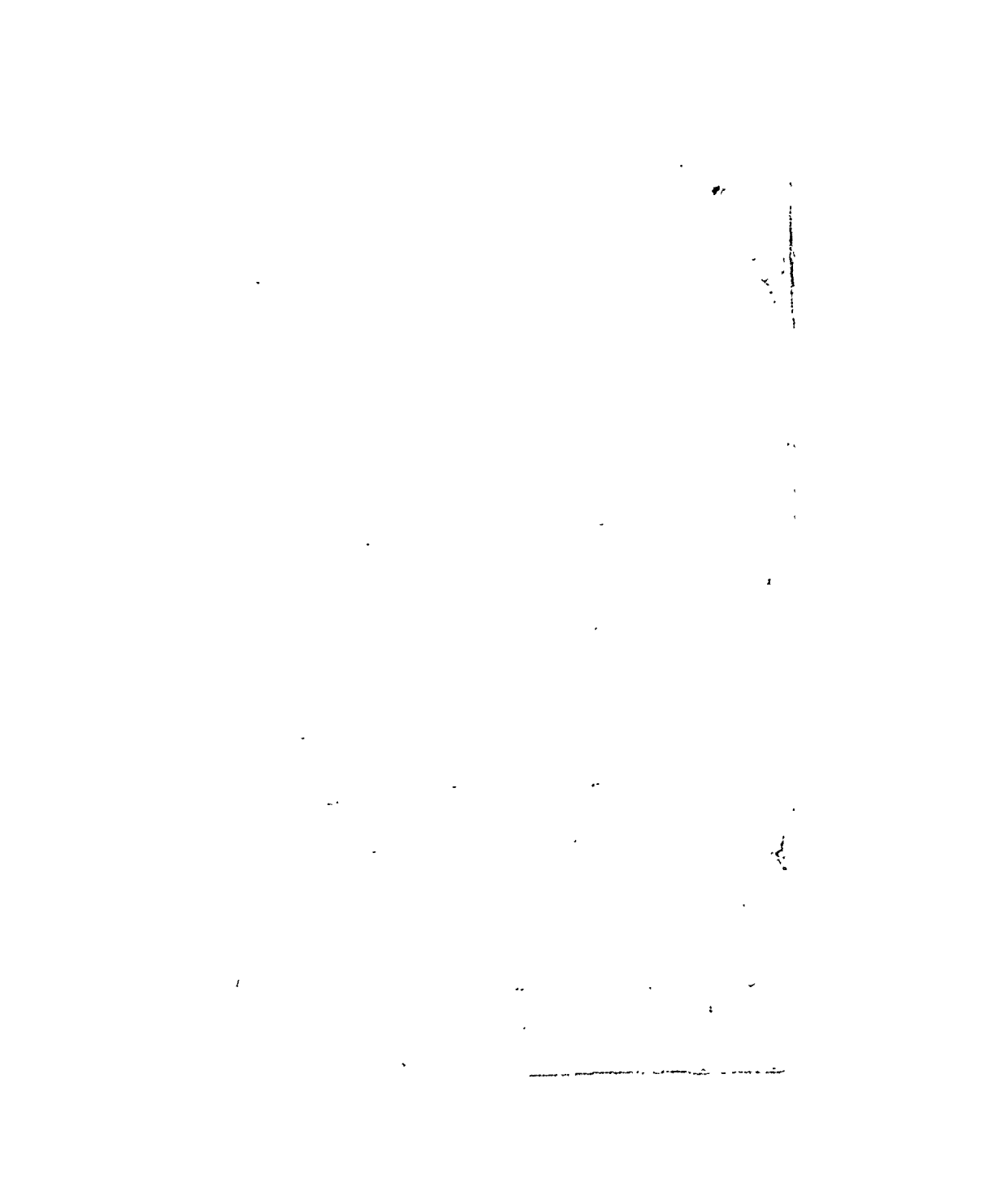
खींच लाना क्या सभा में बैठे हुए भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विदुर, कृप आदि वृद्ध धर्मात्माओं को पसन्द आया? कुरु-कुल के पुरुषों ने और सब दासियों ने क्या अपने धर्म को तिलांजलि दे दी? भारतकुल के धर्म और आचार-विचारों पर क्या वज्र टूट पड़ा?" इस प्रकार कह कर विलाप करती हुई द्रौपदी को दुःशासन सभा में खींच ले गया।

सभा में आते ही द्रौपदी ने, अपने पतियों की ओर, कुछ क्रोध और कुछ लज्जा से पूर्ण, एक हृदयभेदक कटाक्ष फेंका। रणांगण में शत्रुओं के तीक्ष्ण बाणों से, अथवा दुर्योधन आदि के अपमान-कारक भाषणों से, उन पांडवों के हृदय पर, इसके पहले अनेक घाव हुए होंगे, परन्तु उस हृदयद्रावक स्थिति में, जिससे पत्थर भी पसीज उठता, द्रौपदी ने जो दृष्टि फेंकी उससे उनके हृदय पर जो घाव हो गये थे सब से अधिक दुःसह थे! अपने पतियों की ओर और सभासदों की ओर द्रौपदी दीन और दुःखी चेष्टा से देख रही थी, तथापि दुःशासन बराबर उसके बालों में झिटके लगाते हुए, उपहासपूर्वक "दासी! दासी!" कह रहा था। दुःशासन का यह बर्ताव देख कर, दुर्योधन, कर्ण और शकुनी को छोड़ कर, अन्य सभासदों को अत्यन्त खेद हुआ। द्रौपदी दासी हुई या नहीं? इस प्रश्न का उत्तर भीष्म ने संदिग्ध ही दिया। उन्होंने कहा कि, "युधिष्ठिर कौरवों का दास हो गया था, इस कारण अपने धन पर उसकी बिलकुल सत्ता नहीं रही थी; अतएव द्रौपदी को दावँ में लगाने का उसे कुछ भी अधिकार न था। दूसरी ओर, धर्मशास्त्र कहता है कि जो गति भर्ता की हो वही स्त्री की होनी चाहिए; इस दृष्टि से, पांडव जब दास हो गये तब द्रौपदी दासी हो ही गई। इस प्रकार दोनों बातें सम्भव हैं; अतएव इस प्रश्न का निश्चयात्मक उत्तर मैं नहीं दे सकता।" स्वयं भीष्म भी जिस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके उसका उत्तर देने

के लिए किसीका साहस नहीं हुआ। इधर द्रौपदी इस प्रकार कह रही थी कि, धर्मराज द्यूत में बिलकुल निपुण नहीं हैं, उन्हें जबरदस्ती द्यूत के लिए बुला कर, द्यूतनिपुण शकुनी-द्वारा उनका सर्वस्व हरण करा कर, उन्हें दास बनाना उचित बात नहीं है। इधर दुर्योधन आदि भी, मर्मभेदक शब्दों से पांडवों और द्रौपदी के प्रहार कर रहे थे; दुःशासन द्रौपदी के केशों में बराबर झटके लगा रहा था! दुःशासन की इस झटका झटकी से द्रौपदी का अंचल नीचे पड़ते ही, भीमसेन का क्रोध, जिसे वे अभी तक रोके हुए थे, अनिवार्य हो गया। वे आवेश के साथ युधिष्ठिर से बोले, "हमारा धन, हमारा राज्य, चारो भाई और अन्त में अपने खुद को भी तुमने दाँव में लगा कर खो दिया; तथापि, युधिष्ठिर! मुझे क्रोध नहीं आया। जुआरी लोगों के घर में उनकी जो रंडियाँ होती हैं उनके विषय में भी उन्हें दया आ जाती है-वे उन्हें धन की तरह दावँ में कभी नहीं लगाते। परन्तु तुमने अपनी धर्मपत्नी द्रौपदी को दावँ में लगा दिया; अब तुम्हारा यह भयंकर अपराध यह वृकोदर भीमसेन कभी क्षमा नहीं कर सकता!

अस्याः कृते मन्युरयं त्वयि राजन्निपात्यते।
वाहू ते संप्रधक्ष्यामि सहदेवाग्निमानय॥

इस-द्रौपदी के लिए मैं अपना क्रोध अब तुम्हारे ऊपर बुझाता हूं; सहदेव, जाओ और अग्नि ले आओ, अपनी पतिव्रता भार्या शत्रु के अधीन कर देनेवाले इस धर्मराज के हाथ जला डालें"! इस प्रकार भीम की भयानक गर्जना सभा में छा गई! परन्तु अर्जुन ने, उन्हें अनेक प्रकार समझा कर, अन्त में कहा, "द्यूत अथवा युद्ध के लिए यदि कोई बुलावे तो कभी पीछे न हटना चाहिए, इसी क्षत्रियों के व्रत की रक्षा करने के लिए धर्मराज ने द्यूत खेला है, अन्य जुआरियों की तरह धन-लोभ

या राज्य-लोभ के कारण वे द्यूत नहीं खेले हैं, यह बात तुम क्यों भूल गये! अपने बड़े और धर्मशील भाई के सम्बन्ध में ऐसे अशुभ वाक्य निकालना योग्य नहीं है।" यह कह कर भीम ने अपने क्रोध को रोक लिया कि "युधिष्ठिर क्षात्रव्रत की रक्षा के लिए द्यूत खेले हैं, यह बात यदि मेरे मन में न भर दी होती तो मैं जबरदस्ती उनके हाथ-पैर जला डालनेवाला था!"

जब इस बात का उत्तर कोई न बतलाने लगा कि द्रौपदी दासी हुई है या नहीं तब अन्त में विकर्ण नामक धृतराष्ट्र का पुत्र कहने लगा, "ऐसे चार व्यसन कहे हैं जिन में राजा लोग अकसर फँस जाते हैं; स्त्री, मृगया, मद्यपान और द्यूत। इन व्यसनों में जो अत्यन्त आसक्त होता है वह उस समय-आसक्ति के समय-जो कार्य कर डालता है वह कार्य लोक-सम्मत कदापि नहीं होता। अतएव द्यूतासक्त धर्मराज के द्वारा द्रौपदी का दावँ में लगना बिलकुल ही ठीक नहीं है; इसको न गिनना चाहिए। इसके सिवा, द्रौपदी पांच पतियों की पत्नी होने के कारण सिर्फ युधिष्ठिर को उसे दावँ में लगाने का अधिकार नहीं है। और, पहले पहल उसे दावँ में लगाने की बात शकुनी मामा ने ही निकाली है। इन सब बातों पर ध्यान देने से मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि द्रौपदी दासी नहीं हुई।" यह कथन सुन कर सब ने उसकी बड़ी प्रशंसा की, परन्तु अपने से बड़े मनुष्यों को ज्ञान सिखाने की धृष्टता विकर्ण ने की; इस लिए कर्ण ने उसकी बड़ी निर्भर्त्सना की; वह बोला, "युधिष्ठिर ने अपना 'सर्वस्व' एक बार दावँ में लगा दिया था; उस दावँ में द्रौपदी का अन्तर्भाव हो गया; फिर तू कैसे कहता है कि द्रौपदी दासी नहीं हुई? तू और विदुर दोनों एक ही माले की गुरियां हो! यदि यह कहोगे कि यह दासी तो है; पर इसे सभा में लाना ठीक नहीं है, तो इस पर यही उत्तर है कि यह द्रौपदी जब पाँच पतियों की भार्या बन कर रही

है तब इसे कुलस्त्री कौन कहेगा; यह तो वेश्या है! ऐसी स्त्री यदि रजस्वला और एकवस्त्रा सभा में लाई गई तो इसमें कुछ बड़ी विचित्रता नहीं है। दुःशासन, यह विकर्ण बालिश भाषण करता है। इसकी तू कुछ मत सुनना। हूँ! इन दास पांडवों के वस्त्र और दासी द्रौपदी का भी चीर छीन ले!" यह सुनते ही अपने अपने वस्त्र छोड़ कर पांडव नंगे बैठ गये! और दुःशासन उस सभा में, उस सांध्वी का, जो एक ही वस्त्र पहने थी, चीर उतारने लगा!! उस दीन और अनाथ साध्वी की यह असीम विडम्बना देख कर भीमसेन की क्रोधाग्नि, जो अब तक भीतर ही भीतर धधक रही थी, एकदम भड़क उठी और अतिशय सन्ताप के कारण दांतों से होंठ चबाते हुए, क्षेप के कारण हाथ से हाथ मसोसते हुए, और सारी सभा को अपनी गर्जना से कँपाते हुए भीमसेन बोले, "जो कुछ मैं कह रहा हूँ उसे सब क्षत्री लोग सुन लें। ऐसा भाषण पहले कभी किसीने न किया होगा और न आगे कोई करेगा; मैं अपनी प्रतिज्ञा यदि न पूरी करूं तो सदा के लिए घोर नरक में पड़ूं!

> अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापसदस्य च।
> न पिबेयं बलाद्वक्षो भित्वा चेद्रुधिरं युधि॥
> पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्नुयाम्॥

इस पापी कौरवाधम का वक्षस्थल युद्ध में विदीर्ण करके यदि मैं उसका उष्ण रक्त न पान करूं तो मुझे रौरव नरक प्राप्त हो!" इधर जब द्रौपदी ने देखा कि भीष्म आदि पुरखा मनुष्य, हमारे पति पांडव, और अन्य एकत्रित हुए राजाओं में से कोई भी हमें इन दुष्टों की विडम्बना से मुक्त नहीं करता तब उसने, बड़ी आतुरता से, अनाथों के नाथ और दीनों के बन्धु, श्रीकृष्ण को पुकारा! उस साध्वी की वह पुकार सुन

कर द्वारका में श्रीकृष्ण का कंठावरोध हो गया, और उन्होंने उसके लिए मानो ग्यारहवाँ "वस्त्रावतार" ही धारण कर लिया और गुप्त रीति से वहां आकर उस साध्वी की लज्जा रख ली! इधर दुःशासन ज्यों ज्यों द्रौपदी का दुकूल खींचने लगा त्यों त्यों भीतर दूसरा एक वस्त्र मौजूद रहने ही लगा! इस प्रकार उसने अनेक चीर झट झट उतार लिए और सभा में उन वस्त्रों का ढेर जमा हो गया। तथापि दीनों के रक्षक श्रीकृष्ण ने जो एक वार उसका अंग ढक दिया वह उस दुष्ट से खुल नहीं सका! इस प्रकार साड़ियां खींचते खींचते दुश्शासन थक गया और लज्जित होकर नीचे बैठ गया!

द्रौपदी का सताना अब भी समाप्त न हुआ। कर्ण ने ज्योंही दुःशासन से कहा कि 'कृष्णा दासी' को घर ले जाओ त्योंही वह फिर उठा; और उसके बाल पकड़ कर फिर भी झटका झटकी करने लगा। तब दुर्योधन बोला, "अरी द्रौपदी, ये तेरे पति इस सभा में ऐसा कह दें कि 'युधिष्ठिर हमारा स्वामी नहीं है।' किंवा यह धर्मात्मा युधिष्ठिर स्वयं कह दे कि 'हम अनाथ हैं' तो मैं तुझे दासीपन से मुक्त कर दूंगा।" यह सुन कर सब लोग इस बात की बाट जोहने लगे कि देखें अब पांडव इस पर क्या उत्तर देते हैं। शायद कोई कोई यही समझते होंगे कि द्रौपदी के लिये—अपनी भार्या की विडम्बना बन्द कराने के लिये-इतना मुँह से कहने के लिए ये तैयार हो जायँगे। परन्तु भीमसेन, तमक कर, हाथ ऊपर उठा कर बोल उठेः—"धर्मराज हमारे पुण्य, तप और शरीर के भी स्वामी हैं; वे हमारे स्वामी हैं और हम उनके आज्ञाकारी दास हैं, इसी लिये ये अधम कौरव आज तक जीवित हैं। धर्मराज यदि अपने को दास समझते हों तो हम भी अपने को वैसा ही समझें। युधिष्ठिर हमारे स्वामी हैं।
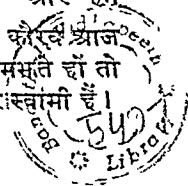
धर्मराजनिसृष्टस्तु सिंहः क्षुद्रमृगानिव ।
धार्तराष्ट्रानिमान्पापान्निष्पिष्येयं तलासिभिः ॥

और वे यदि हमें आज्ञा देंगें तो सिंह की तरह हम इन क्षुद्र कौरव-शृगालों को,यहां के यहीं, सिर्फ इस गदेली की एक ही मसोस से, तत्काल संहार कर डालेंगे।" दास बन गये पुरुष की इस गर्वोक्ति की ओर कौन ध्यान देता है? उस समय कर्ण द्रौपदी से बोला, "जा; दुर्योधन के घर जाकर अपना काम कर; अथवा हे राजकन्या! तू इन पांडवों को-इन दासों को-छोड़ दे और कोई ऐसा दूसरा पति देख जो तुझे फिर द्यूत के दाँव में लगा कर दासी की दशा तक न पहुँचावे!" दुर्योधन ने फिर, यह सच सच बतलाने के लिये, कि द्रौपदी न्याय से दासी हुई है या नहीं, युधिष्ठिर को आह्वान किया! पांडवों का हृदय फिर जलाने के लिये ही, कर्ण की ओर तिरछी नजर से देखते हुए, बड़े विजयोत्साह से, हँसते हँसते द्रौपदी की ओर देख कर, दुर्योधन ने अपनी बाईं जंघा, सब के सामने, उसे खोल कर दिखलाई!! यह देख कर भीम का क्रोध फिर उमड़ आया।

पितृभिः सह सालोक्यं मा स्म गच्छेत् वृकोदरः ।
यद्येतमूरुं गदया न भिंद्यां ते महाहवे ॥

"यदि मैं युद्ध में इसी जंघा को गदा के प्रहार से न तोड़ डालूं तो इस वृकोदर को पितृलोक न मिल कर नरकवास प्राप्त हो!" भीमसेन की यह घनघोर प्रतिज्ञा खतम होते ही धृतराष्ट्र की अग्निशाला में घुस कर स्यार ने अशुभ सूचक भयंकर शब्द किया! और अगला कुलक्षय सूचित करनेवाले अन्य भी अनेक उत्पात और अपशकुन हुए!

यहां तक धृतराष्ट्र चुप बैठा था; पर अब वह बीच में पड़ा। धृतराष्ट्र ने समझा कि ये दुष्ट जो यह सब उपद्रव कर रहे हैं उसका कोई उलटा ही परिणाम न हो जाय; इस लिये उसने द्रौपदी को समझा कर वर देने कहा। उस पतिव्रता ने पहला वर यह मांगा कि "पहले युधिष्ठिर को दासत्व से मुक्त करना चाहिए।" यह वर देने के बाद धृतराष्ट्र ने फिर दूसरा वर देने कहा। तब उसने यह माँगा कि "अन्य पांडवों को रथों और शस्त्रों के सहित दास्य से मुक्त कीजिये!" यह देकर धृतराष्ट्र ने फिर तीसरा वर देने कहा। परन्तु, इस पर मानी द्रौपदी ने यह उत्तर दिया कि "शास्त्र की आज्ञा है कि क्षत्रियों को दो से अधिक वर न मांगना चाहिये; मेरे पति जब शस्त्रोंसहित मुक्त होंगे तब और सब कुछ, जो नष्ट हो गया है, वे अपने पराक्रम ही से प्राप्त कर लेंगे!" कर्ण के कथनानुसार, संकटों के अगाध समुद्र में, कोई भी आधार न मिलने के कारण, जो पांडव गोते खा रहे थे उन्हें सचमुच द्रौपदी ही नौका के समान तारक हुई। इसके बाद पांडवों ने आपस में यह चर्चा चलाई कि यह स्वतंत्रता जो सब को मिली है उसका प्रथम उपयोग क्या किया जाय! इस पर भीम ने युधिष्ठिर को यह सलाह दी कि "मैं यहीं के यहीं इन शत्रुओं का संहार किये डालता हूं; फिर आप सुख से पृथ्वी का राज्य करें!" परन्तु धर्मराज को यह कृत्य पसन्द नहीं पड़ा। उलटे धृतराष्ट्र के पास जाकर और उसे नमस्कार करके धर्मराज बोले, "आपकी हमें अब क्या आज्ञा है? कुछ भी हो, तथापि सदा आप ही की आज्ञा में रहने का मेरा निश्चय है!" धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया, "अब तुम इन्द्रप्रस्थ को जाकर आनन्द से राज्य करो। दुर्योधन आदि तुम्हारे लिए जो जो कटुवचन बोले हों उनको तुम, मुझ वृद्ध और अंधे की ओर तथा गांधारी की ओर ध्यान देकर, क्षमा करो।" इतना कह कर धृतराष्ट्र ने पांडवों को विदा

किया। और वे भी रथ में बैठकर इन्द्रप्रस्थ को चले गये— (सभापर्व, अ० ६५-७३)

अब दुर्योधन, कर्ण, शकुनी और दुःशासन ने यह विचार किया कि इतने विलक्षण कपट से, और बड़े कष्ट से, पांडवों की जो सम्पत्ति और राज्य हाथ आ गया था उसे इस बुड्ढे ने हाथ से खो दिया। अब फिर पांडवों को किसी न किसी निमित्त से शीघ्र ही द्यूत खेलने के लिये बुलाना चाहिये; नहीं तो सारा स्वांग बिगड़ता है। इसी सलाह के अनुसार दुर्योधन धृतराष्ट्र के पास आकर बोला:—" पांडवों को हमने सताया है; उनकी पत्नी की, भरी सभा में, विडम्बना की है; इस लिये उन्हें इस तरह स्वतंत्र छोड़ना इस प्रकार आत्मघातक है जैसे चिढ़े हुए सर्प को जीता छोड़ देना। हमारे विषय में, उनके मन में, बदला लेने की बुद्धि जम गई है। वे हम सब का नाश किये बिना कभी चुप नहीं बैठेंगे। सो, द्यूत का एक दाँव और होने दो। उसमें आप यह शर्त रखिये कि जो हार जाय वह बारह वर्ष वनवास करे; और बाद को समान योग्यता के मनुष्यों में रह कर एक वर्ष अज्ञातवास करे। इस अज्ञातवास में यदि वह पहचान लिया जाय तो वह फिर बारह वर्ष वनवास करे। यह पण भी शकुनी जीत लेगा तथा पांडवों के वनवास और अज्ञातवास में रहने पर सारे राज्य का उपयोग हमीं लोग करेंगे; इसके सिवा उतने समय में हमारी राजसत्ता की जड़ मजबूत हो जायगी और हमारा पक्ष सबल हो जायगा। जब वे लौटेंगे और उन्हें हम राज्य न देंगे तब वे यदि युद्ध शुरू करेंगे तो उस समय, हमारा पक्ष बलवान् हो जाने के कारण, उसमें हम को सहज ही विजय प्राप्त होगा।" यह सलाह धृतराष्ट्र को पसन्द आई। भीष्म, द्रोण, विदुर-और गांधारी तक का-कहना न मान कर, इनकी इच्छा के विरुद्ध, धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को फिर द्यूत के लिये बुलाने को प्रतिकामी दूत भेजा। इन्द्रप्रस्थ और हस्तिना-

पुर के बीच ही में उसने वह सन्देशा धर्मराज से बतलाया। धर्मराज भी धृतराष्ट्र की आज्ञा और क्षत्रियों का व्रत तोड़ना नहीं चाहते थे; इस लिए फिर हस्तिनापुर को आये। द्यूत प्रारम्भ हुआ। उसमें यह शर्त सुना दी गई कि "द्यूत में जो हारे वह बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करे; उस अज्ञातवास के समय में यदि वह पहचान लिया जाय तो फिर बारह वर्ष वनवास करे। और लौट आने पर उसका राज्य उसे लौटा दिया जाय।" शकुनी ने पाँसा फेंक कर पहले की तरह 'जितं' कह कर दाँव जीत लिया।

इस प्रकार फिर पराभूत होने पर पांडवों ने बहुमोल वस्त्र छोड़ दिये और वनवास के योग्य वल्कल और कृष्णाजिन धारण कर लिये। दुःशासन द्रौपदी से बोला, "पांडवों को अपनी कन्या देकर राजा द्रुपद ने बड़ा धोखा खाया! ये पांडव क्षत्री-धर्म को कलंक लगानेवाले क्लीब हैं। इनके साथ वन में जाकर वनवास करने की अपेक्षा तो यही अच्छा है कि, द्रौपदी! तू हम कौरवों में से किसी एक के साथ विवाह कर ले!" यह सुन कर भीमसेन एकदम तमक कर बोलेः— "कौरवाधम! इस तेरे मर्मभेदक कथन का उत्तर युद्ध में मैं अपने हृदय-भेदक बाणों से ही दूंगा!" जब कोई अतिथि घर में आता है तब मधुपर्क-समय पशु निवेदन करते वक्त जिस प्रकार "गौर्गौः" कहते हैं उसी प्रकार, यह सूचित करने के लिये, कि कालरूपी अतिथि को पांडवरूपी पशु हम अर्पण करते हैं, उस समय दुःशासन बराबर "गौर्गौः" कहते हुए नाचने लगा! भीम फिर उसे रक्तप्राशन की प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाने लगे; पर अर्जुन ने कहाः—

> नैवं वाचा व्यवसितं भीम विज्ञायते सतां।
>
> इतश्चतुर्दशे वर्षे द्रष्टारो यद्भविष्यति ॥

"दादा, चतुर पुरुषों को जो काम करना होता है वह वे मुँह से कह कर नहीं दिखाते। जो कुछ हमें करना होगा वह सब कौरव अब चौदहवें वर्ष देखेंगे।" यह कह कर अर्जुन ने कर्ण को; भीम ने दुःशासन, दुर्योधन, इत्यादि कौरवों को, और सहदेव ने शकुनी को युद्ध में मार डालने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद वे सब वनवास के लिये तैयार हुए। वन जाने के पहले धृतराष्ट्र को नमस्कार करके और भीष्म, द्रोण, आदि से विदा होते समय युधिष्ठिर ने कहा, "ईश्वर की दया से वनवास व्यतीत करके मैं शीघ्र ही आपके चरणों का दर्शन करूंगा।" भीष्म-द्रोण का मन दुःख और लज्जा से सूख गया था; इस कारण उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। केवल अपने अन्तःकरण में उन्होंने परमेश्वर से यह प्रार्थना की कि पांडवों का कल्याण हो। कुन्ती को अपने घर में रख देने के लिए कह कर विदुर ने, बड़े कष्ट से, पांडवों को विदा किया। उन्होंने कहा, "युधिष्ठिर, आज तक तुमने कभी कोई अयोग्य बात अथवा कोई भी पाप नहीं किया। तुम्हारा कल्याण हो। मुझे भरोसा है कि श्रीकृष्ण की कृपा से कृतार्थ होकर तुम वनवास से लौट आओगे।" द्रौपदी कुन्ती, गांधारी और कौरव-पत्नियों से, विदा होने के लिये गई। उस समय, वन में पति से अच्छी तरह बर्ताव करने के लिये कह कर, कुन्ती उससे बोलीं, "बेटी, तेरे ऊपर वनवास का बड़ा भारी संकट आया, इसका तू शोक न कर। स्त्रीधर्म तुझे मालूम ही है। तूने अपने सद्गुणों से दोनों कुल भूषित किये हैं। अब तुझे अधिक क्या उपदेश दूं। सब से पतिव्रताधर्म का बर्ताव कर; और विशेष कर मेरे सहदेव को सँभाल।" इस प्रकार सब से विदा होकर पांडव वनवास को चले। कुन्ती उन्हें पहुँचाने गई। इस बात पर कि धर्म से चलने पर भी पांडवों को अन्त में वनवास भोगना पड़ा;

कुन्ती को अत्यन्त शोक हुआ, पांडवों के अदृश्य होते ही, वे विदुर के घर लौट आईं! वन जाते समय, सब के आगे युधिष्ठिर और फिर उनके पीछे क्रमशः भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी और धौम्य चले। उस समय धर्मराज ने अपनी आखें हाथों से मूँद ली थीं; भीम अपनी प्रचण्ड भुजाओं की ओर निरखते थे; अर्जुन मार्ग में लगातार बालू डालते जाते थे; सहदेव ने अपने मुख में कालिख पोत लिया था; और नकुल ने अपने सर्वांग में धूल लपेट ली थी। द्रौपदी ने अपने केश खुले छोड़ दिये थे और उन्हींसे अपना मुँह ढाँप कर रोती हुई चली जाती थी; और धौम्य मृतक-कार्य-समय के "याम्य साम-मंत्र" पढ़ते हुए चला जाता था!

धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछा कि पांडवों के इस रीति से वन जाने का क्या अर्थ है? विदुर बोले, "धर्मराज अत्यन्त दयालु हैं। उन्होंने अपने नेत्र इस कारण मूँद लिए थे कि कहीं हमारी क्रोध-दृष्टि से कौरव भस्म न हो जायँ। भीम यह सोचते हुए अपनी भुजाओं को निरखते थे कि, साध्वी को सता कर जिन शत्रुओं ने हमारा राज्य हर लिया है उनको पराक्रम दिखलाने का मौका, अब देखें, इन भुजाओं को कब प्राप्त होता है। अर्जुन, जो रास्ते में बालू छोड़ते जाते थे, उसका मतलब यह है कि वह यह बात जतलाते थे कि बालू के कणों की तरह असंख्य बाण छोड़ कर मैं युद्ध में इन शत्रुओं को जर्जर कर डालूंगा। सहदेव ने अपने मुख में कालिख इस कारण पोत लिया था कि जिससे उन को कोई पहचान न सके। मार्ग में नकुल का सौंदर्य देखकर स्त्रियां फँस न जायँ; इस लिये उन्होंने अपने शरीर में धूल लपेट ली थी। द्रौपदी जो अपने केशों से मुख मूँद कर रोती हुई गई, इसका अर्थ यह है कि, मैं जिस प्रकार इस समय बाल खुले छोड़े हुए रोती जाती हूं, उसी प्रकार कौरवों की स्त्रियां, चौदह वर्ष बाद,

अपने पति युद्ध में मरे जान कर, बाल छोड़े हुए, रोती रोती, इसी रास्ते से जायँगी ! धौम्य के याम्य साममंत्र पढ़ने का कारण यह था कि सब कौरवों का युद्ध में जब वध हो जायगा तब उनके दहन-समय उनके पुरोहित यही मंत्र पढ़ेंगे ! " पांडवों के वन में निकलते समय, उत्पात और अपशकुन के द्वारा, सृष्टि माता ने भी अपना दुःख प्रकट किया ! नारद और अन्य ऋषि भी धृतराष्ट्र के पास आकर यह कह गये कि " दुर्योधन के अपराध से सब कौरवों और क्षत्रियों का, भीमार्जुन के हाथ से, युद्ध में संहार होगा ! "–(सभापर्व, अ० ७३–८०)

चौथा प्रकरण ।
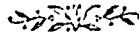
वनवास ।

ब दुर्योधन की चांडाल-चौकड़ी इस बात पर अत्यन्त आनन्दित हुई कि उपर्युक्त प्रकार से, एक भी बाण न चलाते हुए अथवा रक्त का एक बूँद भी न पड़ते हुए, केवल द्यूत के जाल से ही, हमने पांडवों की वह झलक मिट्टी में मिला दी जो उन्होंने राजसूय यज्ञ में गर्व के साथ दिखाई थी। इतना ही नहीं, किन्तु उनका राज्य हरण करके उन्हें तेरह वर्ष के लिए वन को भी निकाल दिया । कर्ण ने कहा कि " आज से दुर्योधन सार्वभौम राजा हुआ, " यह सुन कर वृद्ध धृतराष्ट्र को भी आनन्द हुआ ! पर बहुत से नगर-निवासी, यह समझ कर, कि दुष्ट और घातकी राजा दुर्योधन की प्रजा बन कर

रहने की अपेक्षा पांडवों के साथ वनवास स्वीकार करना ही अधिक श्रेयस्कर होगा, उनके पीछे पीछे वन को चले गये। युधिष्ठिर ने जब उनसे आने का कारण पूछा तब वे बोले, " दुर्योधन के समान दुष्ट राजा जहां राज्य करता है वहां हम लोगों का एक क्षण भी रहना ठीक नहीं है। दुष्टों के स्पर्श से, सम्भाषण से, और दर्शन से भी, मनुष्य को पाप लगता है, और सद्गुणी तथा धार्मिक मनुष्य की संगति से उसके गुण अपने में आते हैं। उसमें भी यदि राजा अधर्मी और दुष्ट होता है तो प्रजा को धर्म और सुख की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती। इसी लिए हम नगर का रहना छोड़ कर आपके साथ वनवास को आये हैं "। अपनी प्रजा की अपने विषय में ऐसी दृढ़ निष्ठा देख कर युधिष्ठिर ने अपने को धन्य माना। वे बोले, " तुम हस्तिनापुर लौट जाओ और मेरे विषय में जो यह तुम्हारी निष्ठा है वही तुम भीष्म, विदुर, कुन्ती, आदि में रखो। मैं उसीमें सन्तुष्ट रहूँगा।" यह सुन कर कुछ लोग नगर में लौट गये; परन्तु कुछ लोग वैसे ही उनके साथ बने रहे। उस दिन पांडव गंगातीर के 'प्रमाण' नामक एक बड़े वट-वृक्ष के नीचे आकर रहे। पांडव, और उनके साथ शिष्यों तथा अग्नि के सहित आये हुए ब्राह्मण आदि, सब ने वह रात वहां सिर्फ़ पानी पीकर ही काटी! जब युधिष्ठिर राज्य-पद पर थे तब लाखों ब्राह्मणों के पालन करने का उन्हें सामर्थ्य था; पर अब उन्हें यह फिक्र-पड़ी कि, हमारे साथ के इन थोड़े से लोगों को भोजन कहां से मिलेगा! युधिष्ठिर ने यह कह कर, कि " हमें ब्राह्मणों के पोषण करने का सामर्थ्य नहीं है, हमारा राज्य गया; हम द्रव्यहीन हो गये हैं, " ब्राह्मणों को सूचित किया कि, वे हमारे पास न रहें। इस पर शौनक नाम के

ब्राह्मण ने उन्हें जब यह दोष दिया कि संपत्ति और राज्य-वैभव के समान नश्वर वस्तुओं के लिए शोक करना व्यर्थ है तब धर्मराज ने उत्तर दिया, "सम्पत्ति नष्ट हो गई, इस लिए मैं शोक अवश्य कर रहा हूँ; पर वह लोभ से नहीं; किन्तु इस कारण, कि जिस सम्पत्ति का उपयोग ब्राह्मण आदि लोगों का पोषण करने में हुआ होता वह आज मेरे पास नहीं है-यही मेरे दुःख का सत्य कारण है। थके हुए को विश्राम के लिए स्थान, खड़े हुए को आसन, प्यासे को पानी और भूखे को भोजन देना जिस प्रकार गृहस्थाश्रमी पुरुष का धर्म है उसी प्रकार वह राजा का भी मुख्य कर्तव्य है। यह कर्तव्य करने के लिए आज मुझ में सामर्थ्य नहीं रहा, मुझे दुख इसी बात का है।" इसके बाद पुरोहित धौम्य ने इस विषय में एक उपाय बतलायाः- "राजा का कर्तव्य है कि विपत्ति में फँसे हुए प्रजा-जनों को वह तपाचरण करके प्रसन्न करे। इस लिए तुम सूर्य की उपासना करके प्रजा को प्रसन्न करो। ऐसा करने से तुम्हारा हेतु पूर्ण होगा"। युधिष्ठिर ने पूजा आदि करके गंगा के पानी में खड़े होकर प्राणायामपूर्वक सूर्य की स्तुति की। सूर्य भगवान् ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें एक तांबे की स्थाली दी और यह कह कर वे गुप्त हो गये कि "तैयार किया हुआ भोजन इसमें रख कर द्रौपदी जब तक परोसेगी तब तक वह भोजन कदापि न घटेगा।" यह स्थाली मिलने से सब का अच्छी तरह पोषण होने लगा। पहले पहल नित्य सब ब्राह्मणों का भोजन होता; फिर पांडवों का होता; और सब से पीछे द्रौपदी का भोजन हो जाने पर थाली खाली हो जाती थी। इस प्रकार वहां रह कर कुछ दिन व्यतीत होने पर सब ब्राह्मणों-सहित पांडव वहां से चले; और कुरुक्षेत्र में जाकर

यमुना, दृषद्वती, इत्यादि नदियां उतर कर, आगे तीन दिन मार्गक्रमण करने के बाद, वे सरस्वती नदी के पास काम्यक वन में पहुँचे। वहां बक नामक राक्षस का भाई और हिडिंब का मित्र किर्मिर रहता था। जब उसे मालूम हुआ कि हमारे वन में अमुक मनुष्य आये हैं तब यह देख कर, कि अपने भाई और मित्र के वध का, और हिडिंबा राक्षसी के हरण करने का, बदला लेने के लिये यह अच्छा मौका है, वह भीम पर दौड़ा। उन दोनों में बहुत देर तक वृक्षयुद्ध और शिलायुद्ध होता रहा। अन्त में बाहुयुद्ध होते समय भीम ने उसे ऊपर उठा लिया और चारो ओर जोर से फिरा कर पृथ्वी पर पटक दिया; और अपने हाथों से उसका गला दाब कर उसे मार डाला।

इधर धृतराष्ट्र को यह डर लगा कि पांडवों को जो हमने वनवास के लिए भेज दिया है, इस कारण प्रजा के मन में विषमता और अप्रीति होगी और कदाचित् हमारा नाश होगा। इस लिए उसने विदुर से पूछा, "ऐसा कौन सा उपाय किया जाय कि प्रजा लोग हम पर भक्ति करने लगें?" विदुर ने सत्य ही उत्तर दिया:—"इसके लिए एक ही उपाय है—वह यह कि दुर्योधन को जेल में डाल कर और युधिष्ठिर को वन से लौटा कर उन्हें राज्य दिया जाय!" पर विदुर के कहने से, युधिष्ठिर के लिए, अपने बड़े बेटे को कैद में डालने के लिए भला धृतराष्ट्र क्यों तैयार होने लगा? उसने विदुर की फजीहत करके इस प्रकार के दुरुत्तर दिये कि "तेरा जिन पर विश्वास है उन्हींके यहां तू चला जा। व्यभिचारिणी स्त्री चाहे जितनी राजी रखी जाय; तथापि वह कभी न कभी पति को छोड़ कर चली ही जायगी!" ये बातें सुन कर विदुर भी, चुपके से, हस्तिनापुर छोड़ कर, पांडवों के यहां चले आये। उन्हें आता हुआ देख कर युधिष्ठिर को एक निराले ही प्रकार का संशय हुआ और उनके मन में कुछ विचित्र विचार उठने लगे:—"शकुनी और

धृतराष्ट्र के कहने से विदुर फिर हमें द्यूत के लिए बुलाने तो नहीं आते? फिर द्यूत खेल कर हमारे शस्त्र छीन लेने का तो कौरवों का विचार न होगा? उन्होंने यदि भीम की गदा और अर्जुन का गांडीव हरण कर लिया तो फिर हमें राज्य का कहां ठिकाना है? कदाचित् वन के वन ही में हम प्राणों से भी हाथ न धो बैठें!" इस प्रकार के विचार उनके मन में उठने लगे। परन्तु विदुर के मुख से सब हाल सुन कर उनका यह डर और संशय दूर हो गया। विदुर बड़े बुद्धिमान थे और राज्य-प्रबन्ध में सलाह देकर उसे सिद्ध करने की कुशलता उनमें अद्भुत थी: यह बात जब धृतराष्ट्र के मन में आई तब उसने समझा कि यदि विदुर पांडवों के पास रहे तो उनका वैभव बढ़ेगा। इस लिए उसने यह मायावी सन्देश भेज कर संजय को विदुर के बुलाने के लिये भेजा कि "जब से तुम वन को गये तब से धृतराष्ट्र को चैन नहीं पड़ती और न नींद ही आती है।" यह सन्देश सुन कर धर्मात्मा विदुर फिर हस्तिनापुर लौट आये; और धृतराष्ट्र को नमस्कार करके बोलेः—"तुम मेरे गुरु हो, तुम्हारे ऊपर मैं नाराज नहीं हूं। पांडु के लड़के और तुम्हारे लड़के दोनों हमारे लिए बराबर ही हैं। परन्तु बात इतनी ही है कि इस समय पांडव विपत्ति में हैं, इस कारण मेरा अन्तःकरण उनकी ओर विशेष आकर्षित होता है।" विदुर को हस्तिनापुर लौट आया हुआ देख कर दुर्योधन के मन में यह डर पैदा हुआ कि "कहीं अब यह हमारे बाप का मन बदल कर पांडवों को वन से लौटा न लावे।" इस पर शकुनी ने इस प्रकार कह कर दुर्योधन का मन शान्त किया कि द्यूत के दावँ की शर्त के अनुसार पांडवों ने वनवास स्वीकार किया है; यह शर्त, अथवा अपनी प्रतिज्ञा, भंग करके पांडव १४ वर्ष के भीतर कभी नहीं लौट सकते। और यदि आ भी गये तो हम द्यूत खेल कर फिर उनकी विडम्बना करें ही गे। यह बात कह

कर शकुनी ने दुर्योधन का मन शान्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु उसका विशेष उपयोग नहीं हुआ। अन्त में बहुत कहा-सुनी होने के बाद कर्ण, शकुनी, दुर्योधन और दुःशासन वन में पांडवों को पकड़ कर उनका वध करने के लिए चले! यह बात भगवान् व्यास को अन्तर्ज्ञान से मालूम हुई। वे रास्ते ही में उन चारों को मिले और उन्हें इस दुष्ट कार्य से पराङ्मुख किया। इसके बाद व्यास धृतराष्ट्र के पास आकर बोलेः— "प्रथम तो पांडवों को कपटद्यूत से जीत कर जो तुमने वन में भेज दिया यही बात बड़ी अनुचित हुई, अब उनके राज्य के लिए यह दुर्योधन पांडवों को समूल नाश करने का प्रयत्न कर रहा है, उसका तू निवारण कर। पुत्रस्नेह से मोहित होकर तू यह बिलकुल ही भूल गया है कि अपना, अपने कुल का और अपने राष्ट्र का हित किसमें है। पहले तो यही बड़ी भारी भूल हो गई कि जो तूने इस बात की नौबत यहां तक आने दी।

यदि पार्थिव कौरव्यान् जीवमानानिहेच्छसि।
दुर्योधनस्तव सुतः शमं गच्छतु पांडवैः॥

यदि तू चाहता हो कि सब कौरव जीवित रहें तो यही श्रेयस्कर है कि तेरा दुर्योधन पांडवों से सख्य करे!" इतने ही में धृतराष्ट्र के पास मैत्रेय नामक एक निस्पृह और तपोनिष्ठ ऋषि आया। वह पांडवों की वन में सब दशा देख आया था और उनके मुहँ से सब हाल सुन आया था। उसने इस विषय में सब को दोष दिया कि भीष्म, द्रोण इत्यादि वृद्ध पुरुषों को यह छल कैसे सहन हुआ। वह बोला कि, "कौरवों की सभा में जो द्यूत हुआ और द्रौपदी की जो विडम्बना हुई ये दोनों बातें आर्यों की सभा में कलंक लगानेवाली हुईं; ये बातें ऐसी

हुई जो दस्यु लोगों–राक्षसों–की सभा में शोभने योग्य थीं। धृतराष्ट्र, यह सब हाल सुन कर सब ऋषि तुझे खुल्लम-खुल्ला दोष दे रहे हैं!" इतना कह कर वह दुर्योधन से सौम्यतापूर्वक बोला, "पांडव बहुत पराक्रमी हैं, उन्हें युद्ध में जीतने की आशा करना व्यर्थ है। इस लिए उनसे द्वेष न करके तू उनसे मैत्री कर।" इस पर दुर्योधन ने कुछ उत्तर तो नहीं दिया; किन्तु पैर की उँगली से जमीन खुरचते हुए, उद्धटपन के साथ, उनसे अपनी जंघा पर थाप मारी। उसकी इस मन-हरी पर मैत्रेय ऋषि बड़े क्रुद्ध हुए और यह शाप देकर वहाँ से चल दिये कि, "युद्ध में तेरी यही जंघा भीमसेन गदा के प्रहार से तोड़ डालेगा!"-(वनपर्व, अ० १-११)

यह हाल सुनकर, कि धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पांडवों का सर्वस्व हरण करके उन्हें वनवास को भेज दिया, कुंती के नैहर के मनुष्य, राजा द्रुपद की तरफ के लोग, यादव और श्रीकृष्ण उनकी खबर लेने के लिये काम्यक वन में आये। अपने भाई धृष्टद्युम्न और सहाय्यकर्ता रक्षक श्रीकृष्ण को देखकर द्रौपदी को सभा के क्लेश और विडम्बना का स्मरण हो आया और उसका शोक उमड़ उठा! वह बोली:-' पांडवों की भार्या, श्रीकृष्ण की सखी, धृष्टद्युम्न की बहन, राजा पांडु की पुत्रवधू, राजा द्रुपद की कन्या को, रजस्वला और एकवस्त्रा रहते हुए, सभा में खींच लाकर दुष्ट उसकी विडम्बना करें और वह विडम्बना क्या उसके पांच पति सामने बैठे हुए देखते रहें? भीम के बाहुबल और अर्जुन के गांडीव धनुष को धिक्कार है! सामान्य मनुष्य भी अपनी स्त्री की आबरू की रक्षा करने में प्राणों की भी परवा नहीं करता। मेरे पति पराक्रमी और शूर हैं; तथापि उन्होंने मेरी उपेक्षा की। जिन दुष्टों ने भीमसेन को विष देकर नदी में डुबाया; वारणावत नगर में पांडवों को और कुंती को

जला डालना चाहा, और मेरी, सब पुरखों के देखते देखते, और सब राजाओं के सामने भरी सभा में, विडम्बना की—ऐसे जुआरियों को-लुच्चों को-मेरे पति क्षमा क्यों करें?" यह कह कर और हाथों से अपना मुँह ढांक कर वह चिल्ला चिल्ला कर रोने लगी। फिर भी कुछ देर के बाद, भीतर से अपना हुस-कना रोक कर वह बोली, "धृतराष्ट्र के पुत्रों ने मेरी विडम्बना की और वह मुझे किसी अनाथ स्त्री की तरह चुपके सहनी पड़ी; तब तो मुझे यही कहना पड़ता है कि मेरे पति नहीं, पिता नहीं, पुत्र नहीं, भाई नहीं और श्रीकृष्ण! तुम्हारा भी मुझे कुछ आधार नहीं।" श्रीकृष्ण ने द्रौपदी को अनेक प्रकार समझाया; और उसे यह आश्वासन दिया कि, "पांडव सब कौरवों को मार कर राज्य सम्पादन करेंगे और तू फिर उनकी पट्टाभिषिक्त रानी होगी। एक बार आकाश चाहे नीचे फट पड़े, पृथ्वी के टुकड़े टुकड़े हो जाँय, समुद्र भी सूख जाय; पर मेरा यह कथन मिथ्या नहीं हो सकता।" इस प्रकार पांडवों का भी समाधान करके, युधिष्ठिर की सम्मति से, सुभद्रा और अभि-मन्यु को साथ लेकर श्रीकृष्ण द्वारका को चले गये। धृष्टद्युम्न द्रौपदी के पांचो पुत्रों को लेकर अपने नगर को आया; धृष्टकेतु भी अपनी बहन-नकुल की भार्या-करेणुमती को लेकर अपने देश को आया। इस प्रकार जब वे लोग चले गये, जो समाचार लेने आये थे, तब पांडव काम्यकवन छोड़कर द्वैतवन में आ रहे।

द्वैतवन में एक दिन संध्याकाल में सब पांडव एक जगह वार्तालाप कर रहे थे; इतने ही में, द्रौपदी के मन में जो दुःख टोंच रहे थे वे सब वह धर्मराज से बतलाने लगी। इस बात पर उस मानी क्षत्रिय स्त्री को बहुत क्रोध आया कि, कौरवों का पराभव न करके पांडव वन में आकर तपस्वियों की तरह स्वस्थ बैठे हैं। वह बोली:-"कौरवों ने हम लोगों को इतना सताया

और तुम्हारे समान राजपुत्रों को और मेरे समान राजकन्याओं को उन्होंने वन में भेजा, यह देख कर तुम्हें त्वेष और संताप क्यों नहीं आता? तुम क्षत्रिय हो, इस लिए तुम्हारा यह वर्ताव बिलकुल शोभा नहीं देता।

यो न दर्शयते तेजः क्षत्रियः काल आगते।
सर्वभूतानि तं पार्थ सदा परिभवंत्युत॥

योग्य समय प्राप्त हो जाने पर भी जो क्षत्रिय अपना तेज नहीं दिखलाता—अपना पराक्रम नहीं प्रकट करता—सब प्राणी उसकी सदा अप्रतिष्ठा करते हैं। प्रसंगानुसार जो सदय और निष्ठुर होना नहीं जानता वह सच्चा क्षत्रिय नहीं है। मृदु कब होना चाहिए और निष्ठुरता कब ग्रहण करना चाहिए, यह जान कर, इसके अनुसार, जो चलता है उसीको राजा की पदवी शोभा देती है।" इस पर युधिष्ठिर ने क्रोध के दोष बतला कर क्षमा की प्रशंसा की। वे बोले:—"इस जगत में क्रोध के समान दूसरा दुर्गुण कोई नहीं है। इस एक क्रोध ही के कारण अच्छी बात का नाश हो जाता है। क्षमा ही सारे विश्व का बन्धन है। पृथ्वी पर यदि क्षमाशील मनुष्य न होते, एक के अप्रिय भाषण करते ही दूसरा भी यदि वैसा ही करता, एक के मारने पर दूसरा भी यदि उलटे उसे मारता तो इस मानवी सृष्टि का संहार हो गया होता। प्रत्येक मनुष्य में थोड़ी बहुत क्षमा है, इसीसे यह संसार चल रहा है। सत्य, तप, पुण्य, पवित्र आचरण, आदि सब सद्गुणों का अन्तर्भाव एक क्षमा में ही होता है।" परन्तु इस प्रकार के भाषण से द्रौपदी का समाधान थोड़े ही होनेवाला था! वह क्रोध से बोली, "इस

जगत में न्याय, धर्म और सत्याचरण की कदर कहां है? यहां धर्म से चलनेवालों को ईश्वर दुःख में डाल देता है और अधर्मियों को सुख तथा वैभव में रखता है। जगत् न्याय से नहीं चला है और न जगत् में न्याय है ही। छोटे बालक जिस प्रकार अपनी गुड़ियों से खेलते रहते हैं वैसे ही ब्रह्मा इन प्राणियों से सिर्फ खेल रहा है!" इस पर युधिष्ठिर बोले, "मैं धर्माचरण इस लिए नहीं करता कि उसका फल मुझे मिले; किन्तु मैं इस कारण वैसा बर्ताव करता हूं कि वेदों की वैसी आज्ञा है और सज्जन लोग वैसे ही चलते हैं। मेरा मन स्वाभाविक ही धर्म की ओर जैसा आकर्षित होता है वैसा वह फल की ओर आकर्षित नहीं होता। फल पाने के लिए ही धर्माचरण करनेवाले लोग सच्चे धार्मिक नहीं हैं; किन्तु धर्म और उसके फल का लेन-देन करनेवाले व्यापारी हैं।" धर्मराज के इस कथन का भी द्रौपदी के मन पर परिणाम नहीं हुआ। वह फिर आग्रहपूर्वक यही कहने लगी कि, कौरवों का पराभव करके और अपना राज्य लौटा लेकर मेरा दुःख दूर करना तुम्हारा कर्तव्य है। इतने में भीमसेन भी बोलने लगे और युधिष्ठिर को दोष देने लगे। वे बोले, "केवल धर्माचरण करने ही से क्षत्रियों का काम नहीं चलता; उन्हें 'पराक्रम' दिखलाकर यश प्राप्त करना चाहिए। दुर्योधन ने जो हमारा राज्य लिया सो रणांगण में युद्ध करके न्याय से नहीं लिया; वह उसने कपट से ही प्राप्त किया है। वह यदि उससे अभी हरण कर लिया जाय तो इसमें कुछ भी हर्ज नहीं। "धर्म धर्म" की जपमाला लिये बैठे हुए किस राजा को राज्य प्राप्त हुआ है! दान, धर्म, यज्ञ, याग, सज्जनों का सत्कार और वेदरक्षा करना क्षत्रियों का कर्तव्य है।

उसे उत्तम प्रकार से करने के लिए राज्य प्राप्त करना आवश्यक है। उसे न प्राप्त करके, क्षत्रिय होकर भी, हम तपस्वियों की तरह वन में रह कर व्यर्थ समय खो रहे हैं। इस कारण हमारा बल और पराक्रम होकर भी नहीं के बराबर है!" भीम का यह भाषण सुनकर युधिष्ठिर को बहुत बुरा लगा। वे बोलेः-- "ऐसे मर्मभेदक भाषण करके तुम मुझे लज्जित कर रहे हो; इस-में तुम्हारा कोई दोष नहीं। द्यूत में मुझे भान नहीं रहा; इस कारण तुम्हें दाँव में लगा कर मैं ही तुम्हारे ऊपर यह वनवास का संकट लाया! भीमसेन, उस समय तू ने जैसा कहा उसके अनुसार यदि पहले ही तूने मेरे हाथ जला डाले होते तो फिर द्यूत खेल कर द्रौपदी की विडम्बना करने के लिए मैं कारणीभूत न हुआ होता। और नहीं तो उस समय तुझे अपनी सम्मति तो अवश्य ही, स्पष्टता के साथ, देनी चाहिए थी। अब कहने से कोई लाभ नहीं। बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करने के लिए जो शर्त मैंने कबूल की है उसे मैं अभी तोड़ नहीं सकता।

मम प्रतिज्ञां च निबोध सत्यां। वृणे धर्मममृताज्जीविताच्च।
राज्यं च पुत्राश्च यशो धनं च। सर्वं न सत्यस्य कलामुपैति॥

मैं अपनी प्रतिज्ञा ही सच करूंगा। मैं समझता हूं कि अमरत्व; प्राण, राज्य, पुत्र, यश, धन आदि सब की कीमत सत्य से बहुत ही कम है।" इस पर भीमसेन बोले, "अभी तक, हमको वन में आये हुए, सिर्फ तेरह ही महीने हुए हैं; इससे तुम्हीं देख लो कि इसी प्रकार तेरह वर्ष काटना कितना दुर्घट है। हम सब का रूप और बल, सब जगह के राजाओं को और लोगों को मालूम है; इस लिए

हम लोग एक वर्ष तक, किसीको न मालूम होते हुए, अज्ञात-वास कैसे करेंगे? उस समय में यदि हम लोगों को किसीने पहचान लिया तो हमें फिर बारह वर्ष वनवास करना पड़ेगा! यह कौन कह सकता है कि इतने वर्ष की अवधि में हम लोग जगद्भक्षक काल की कुक्षि में न चले जायँगे? इस लिए मुझे तो यही श्रेयस्कर मालूम होता है कि अभी युद्ध करके अपना राज्य ले लिया जाय।" इस पर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "कौरवों की तरफ़ भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, कर्ण के समान शस्त्रास्त्र-निपुण योद्धा हैं; उनके हिसाब से अस्त्रविद्या में हम अभी कम हैं; ऐसी दशा में यही उचित है कि अस्त्र-विद्या की तैयारी होते तक हम लोग अनुकूल काल की बाट देखते हुए चुप बैठें। उनसे युद्ध करके अपना राज्य लौटा लेना इस समय बहुत करके असम्भव ही है। उसमें भी एक बात और है। वह यह कि, बारह वर्ष वनवास करने का व्रत जो अंगीकार किया है उसे छोड़ कर यदि हम युद्ध के लिए तैयार हुए तो भीष्म, जो अभी अपनी ही तरफ़ हैं, वे इस वचनभंग के लिए हमको कभी क्षमा न करेंगे।" इस प्रकार से वार्तालाप हो रहा था कि इतने ही में भगवान् व्यास वहां आये और धर्मराज को एकान्त में ले जाकर उन्होंने अस्त्रविद्या के लिए उपयोगी "प्रतिस्मृति" नामक विद्या धर्मराज को सिखलाई और वह अर्जुन को सिखाने के लिए कह कर व्यास चले गये। इसके बाद कुछ दिन उसी वन में रह कर पांडव सब परिवार के साथ सरस्वती तीर के काम्यक वन में फिर लौट गये—(वनपर्व, अ० ११-३६)

काम्यक वन में आकर कुछ काल बाद व्यास की दी हुई 'प्रतिस्मृति' विद्या धर्मराज ने अर्जुन को सिखलाई और इन्द्र से दिव्य अस्त्र प्राप्त कर लाने के लिए उन्हें भेजा। धनुष,

बाण, खड्ग और कवच आदि सामग्री लेकर अर्जुन उत्तर दिशा से चले ' ' मालय और गंधमादनपर्वत को पार कर के वे इन्द्रकील पर्वत पर आये। वहां इन्द्र ने एक देदीप्यमान तपस्वी के रूप में उन्हें दर्शन दिया; और उन्हें वर देने कहा। अर्जुन ने उनसे स्वर्ग के दिव्य अस्त्र मांगे। इन्द्र बोले, " बड़े बड़े ऋषि यज्ञयागादि करके जिस स्वर्ग की इच्छा करते हैं उसे छोड़ कर तू अस्त्र क्यों माँगता है? अस्त्र लेकर तुझे क्या करना है?" अर्जुन ने उत्तर दिया:—" मेरे भाइयों ने मुझे अस्त्र प्राप्त कर लाने के लिए भेजा है। इसके सिवा, मन में उन्हें दुःखों और संकटों में छोड़ कर मुझे यहां स्वर्गसुख भोगना उचित नहीं है। जिस काम के लिए उन्होंने मुझे यहां भेजा है उसे सिद्ध करने ही के लिए मुझे प्रयत्न करना चाहिए। उनकी आज्ञा के आगे मैं स्वर्ग तुच्छ समझता हूँ।" इस पर इन्द्र यह कह कर गुप्त हो गये कि " तू श्रीमहादेव को प्रसन्न कर। उनके दर्शन देने पर मैं तुझे अपने अस्त्र सिखा-ऊंगा।" इसके बाद महादेव को प्रसन्न करने के लिए अर्जुन ने वहां तपस्या करना शुरू किया। चार महीना उग्र तप करने पर, शंकर ने अर्जुन की परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने किरात का वेष धारण किया; और जिस वन में अर्जुन तपस्या करते थे उस वन में वे आये। मूक नामक एक दानव ने जंगली सुअर का रूप धर कर अर्जुन पर धावा किया। उन्होंने तत्काल धनुष साज कर उस पर बाण चढ़ाया। इतने ही में किरातवेषधारी महादेव उनसे बोले, " हाँ, ठहर! इस वराह को मैंने तुझसे पहले घेरा है। तू इस पर बाण मत छोड़।" परन्तु इधर ध्यान न देकर अर्जुन ने वराह पर बाण छोड़ ही दिया। इधर किरात ने भी उसी समय बाण छोड़ा। दोनों

बाण साथ ही लगे और वह वराह मर गया। जो पशु एक बार एक पुरुष घेर ले उस पर दूसरे पुरुष को बाण न चलाना चाहिए। यह मृगया का नियम भंग करने के कारण किरात और अर्जुन में झगड़ा शुरू हुआ। एक दूसरे से कहने लगे कि मृगया-धर्म तू ने ही भंग किया है। इस प्रकार बोल-चाल होते होते झगड़ा बढ़ गया और अर्जुन उस किरात पर बाणों की वर्षा करने लगे। परन्तु अर्जुन को यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि, उन बाणों का किरात पर कुछ भी परिणाम नहीं होता। अन्त में जब बाण छोड़ते छोड़ते अग्नि के दिये हुए दोनों अक्षय तरकस भी खाली हो गये तब तो अर्जुन बहुत डरे। तथापि धैर्य धर कर धनुष से ही अर्जुन उस पर प्रहार करने लगे; तब तो किरात ने वह धनुष ही निगल लिया। अर्जुन ने तुरन्त ही अपनी तलवार निकाली और बड़े त्वेष तथा जोर से किरात के सिर पर वार किया। परन्तु उस पर कोई असर न हुआ और तलवार टूट कर नीचे गिर पड़ी। इस तरह अर्जुन सब प्रकार से निःशस्त्र हो गये; तथापि उन्होंने अपना क्षत्रिय का बाना नहीं छोड़ा। उन्होंने पहले उस पर वृक्ष और शिलाएं फेंकीं; और अन्त में बाहुयुद्ध करके अर्जुन उस पर बराबर मुष्टिप्रहार करने लगे। तब शंकर ने केवल अपने दिव्य तेज से ही उन्हें एकदम मूर्छित करके भूमि पर निश्चेष्ट गिरा दिया कुछ देर बाद सावधान होने पर अर्जुन को अपनी भूल ध्यान में आगई। उन्होंने पहले मृत्तिका का शिवलिंग बना कर उसकी भक्तिपुरःसर पूजा की। उस समय चमत्कार यह हुआ कि, अर्जुन जो पुष्प शिवलिंग पर चढ़ाते वे किरात के सिर पर चले जाते। इससे उन्होंने समझ लिया कि, यह किरात ही प्रत्यक्ष महादेव है। उन्होंने तुरन्त ही उसे नमस्कार किया। अर्जुन का शौर्य,

धैर्य, क्षात्रतेज और निःसीम भक्ति देख कर महादेव प्रसन्न हुए। उन्होंने अपना असली रूप धारण करके अर्जुन को छाती से लगा लिया और फिर अपने भयंकर तथा अमोघ 'पाशुपतास्त्र' का धारण, मोक्ष और संहार के भिन्न भिन्न मंत्र अर्जुन को सिखला कर शंकरजी अन्तर्धान हो गये। इसके बाद वरुण, कुबेर, यम, लोकपालों ने भी अर्जुन को दर्शन दिये। और यम ने अपनी गदा, वरुण ने अपना पाश, और कुबेर ने अपने "अन्तर्धान" और "प्रस्वापन" नामक दो अस्त्र उन्हें दिये। इतने ही में इन्द्र का रथ लेकर मातलि सारथी वहां आया; और अर्जुन से कहा कि आपको इन्द्र ने स्वर्ग में बुला भेजा है। इसके बाद अर्जुन शुचिर्भूत होकर, उस पर्वत से (जिसके उदक और कन्दमूल खाकर उनका तप सिद्ध हुआ) और वहां के तपस्वियों से कृतज्ञतापूर्वक तथा प्रेम-पुरस्सर विदा मांग कर रथ पर बैठे, रथ आकाशमार्ग से चलने लगा। तब—

> ददर्शाद्भुतरूपाणि भुवनानि सहस्रशः।
> न तत्र सूर्यः सोमो वा द्योतते न च पावकः॥
> स्वयैव प्रभया तत्र द्योतन्ते पुण्यलब्धया।
> तारारूपाणि यानीह दृश्यन्ते द्युतिमन्ति वै।
> दीपवद्विप्रकृष्टत्वात्तनूनि सुमहान्त्यपि॥

अर्जुन ने ऐसे अनेक लोक देखे जहां सूर्य-चन्द्र नहीं हैं, जो स्वयंप्रकाश हैं, जो आकार में बहुत ही बड़े हैं; तथापि पृथ्वी से दूर होने के कारण छोटे छोटे तारों की तरह देख पड़ते हैं। अन्त में वह रथ अमरावती नगरी में आया। इन्द्र ने, बड़े प्रेम से, अपने पुत्र को, सिंहासन पर अपने पास बैठा लिया और अभिनन्दन किया। और अर्जुन जिस उद्देश

से वहां गये थे उस अस्त्र-शिक्षा के विषय में सब प्रबन्ध इन्द्र ने कर दिया। वहां करीब पाँच वर्ष रह कर अर्जुन ने इन्द्र से सब दिव्य अस्त्र और प्रसिद्ध 'वज्रास्त्र' संपादन किया। इसके बाद, इन्द्र की आज्ञा से, अर्जुन ने चित्रसेन गन्धर्व से नृत्य, गान और वाद्यकला सीखी। इस प्रकार अर्जुन वहां सुख और आनन्द में थे; तथापि वन में दुःख तथा क्लेश में दिन व्यतीत करनेवाले अपने भाइयों की याद उन्हें आती थी और सभा में कर्ण तथा दुःशासन आदि खलों ने जो अपशब्द कहे थे उनका भी उन्हें बारम्बार स्मरण होता था। अर्जुन जब यह सोचते कि, द्रौपदी और पांडवों के हृदयों में जो शल्य रात दिन छेद रहा है उसे हमने अभी तक नहीं निकाल पाया, तब उन्हें बहुत ही खेद होता। वहां से लौट कर शीघ्र अपने भाइयों से मिलने की उन्हें बड़ी उत्कंठा हुई। परन्तु इन्द्र अर्जुन के आत्मसंयमन और धैर्य की परीक्षा करना चाहता था; वह जब तक न हो जाय तब तक इन्द्र उन्हें वहां से जाने की आज्ञा नहीं देता था। एक दिन इन्द्र की सभा में अप्सराओं का नृत्य और गान हो रहा था। उस समय इन्द्र ने देखा कि अर्जुन की दृष्टि उर्वशी की ओर विशेष उत्सुकता से विंध गई है। इन्द्र ने एकान्त में चित्रसेन को सूचना दी कि अर्जुन को इस "स्वर्गफल" का आस्वाद देने के लिए उसके पास उर्वशी को भेजना चाहिए। उसने इन्द्र का सन्देश उर्वशी से कहा। अर्जुन को देख कर वह भी पहले ही से मोहित थी; इस लिए उसने चित्रसेन का कहना, बड़े आनन्द से, मान लिया। उस दिन रात को, जब कि शुभ्र चन्द्रिका छा रही थी, दिव्य अलंकार और नन्दनवन के उत्तम उत्तम पुष्प चोटी में गुह कर और चिकनी, बारीक, शुभ्र साड़ी पहन कर तथा ऊपर आस्मानी रंग की शाल ओढ़

कर वह अर्जुन के महल में गई। अर्जुन ने जब देखा कि इतनी रात को सज सजा कर उर्वशी हमारे शयनागार में आई है तब वे बहुत ही शरमाये। तथापि उसके आते ही उन्होंने उसका पूज्यभावपूर्वक आगतस्वागत किया। उसने, चित्रसेन का सन्देशा बतला कर, अपना मनोरथ पूर्ण करने के लिए, अर्जुन से लाजते लाजते विनती की। परन्तु अर्जुन ने अपना मन चंचल नहीं होने दिया। उन्होंने कहा कि "पौरव-कुल के हमारे पूर्वज पुरूरवा की तू भार्या है; इस लिए तू मुझे कुन्ती, माद्री, और शची माताओं के समान पूज्य है।" इस पर-" पुरूरवा के बाद पौरव वंश के जो जो राजा यहां आये उन्होंने हम अप्सराओं का भोग किया है; अप्सराओं को कोई दोष नहीं। अप्सराओं का उपयोग ही स्वर्गसुख है; और यहां क्या है, " इत्यादि बातें कह कर उसने अर्जुन के मन को आकर्षित करने का बहुत प्रयत्न किया। परन्तु अर्जुन उस पापकर्म में नहीं पड़े। उन्होंने उत्तर दिया कि, "तेरे नृत्य करते समय मैं जो तेरी ओर देख रहा था सो किसी पाप-वासना से नहीं; किन्तु यह मन में लाकर, कि तू हमारे भरत-कुल की जननी है, शुद्धभाव से देखता था। मैं तुझे नमस्कार करता हूं, तू कृपा कर और जैसी आई है वैसी ही लौट जा, तू नरक में डालनेवाला यह काम करने के लिए मुझ से आग्रह मत कर।

यथा कुंती च माद्री च शची चेह ममानघे।
तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी॥
गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोस्मि पादौ ते वरवर्णिनी।
त्वं हि मे मातृवत्पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत्त्वया॥

तू मुझे कुन्ती, माद्री माता के समान और शची के समान

'तू मुझे कुन्ती, माद्री और शची माताओं के समान पूज्य है।'
(पृ० १२४)

पूज्य है और तू भी माता की तरह पाप से मेरी रक्षा कर!" अपना मनोरथ इस प्रकार भंग हुआ देख कर उर्वशी बहुत क्रोधित हुई और अर्जुन को यह शाप देकर, कि 'तू एक वर्ष तक षंढ रह कर नाचना गाना सिखाता रहेगा' वह चली गई! रात का यह सब हाल दूसरे दिन अर्जुन ने चित्रसेन को और चित्रसेन ने इन्द्र को बतलाया। इन्द्र यह जान कर बड़ा प्रसन्न हुआ कि बड़े बड़े तपोनिष्ठ और मनोनिग्रही ऋषियों में भी जो आत्मसंयमन नहीं पाया जाता वह अर्जुन में है। इन्द्र ने यह कह कर, कि "उर्वशी ने जो शाप तुझे दिया है वह अज्ञातवास के समय तुझे उपयोगी होगा," अर्जुन को समझा दिया। इसके बाद इन्द्र ने लोमश नामक एक ऋषि को मृत्युलोक में पांडवों के पास भेजा और यह सन्देशा दिया कि "अर्जुन इन्द्रलोक में है। अस्त्र आदि सीख कर वह शीघ्र ही लौट आवेगा। तब तक तुम लोग तीर्थयात्रा करके पुण्य संपादन करो, इससे कुरुक्षेत्र के भावी युद्ध में तुम्हें जय प्राप्त होगा–(वनपर्व, अ० ३८–५१)

इधर जब अर्जुन तपस्या के लिए चले गये तब पांडव काम्यकवन में ही रहे। वहां उन्होंने अध्ययन, तपस्या, यज्ञयाग, और ऋषियों से भिन्न भिन्न पुरानी कथाएं सुनने में पांच वर्ष व्यतीत किये। एक दिन पांडव अर्जुन की चिन्ता करते हुए और अपनी दुःखमय दशा पर वार्तालाप करते हुए बैठे थे। इतने में 'बृहदश्व' नामक एक महर्षि उनसे मिलने आये। धर्मराज ने उनसे अपने दुर्दैव की कहानी बतलाई और उनसे पूछा कि "मुझसे अधिक दुखी राजा क्या कहीं तुमने देखा या सुना है?" बृहदश्व ने कहा:—"तेरे साथ तो तेरी साध्वी भार्या, तेरे पराक्रमी बन्धु, शस्त्र, रथ, दास दासी, पुरोहित और अन्य ब्राह्मण आदि सब परिवार है। परन्तु निषद देश के राजा नल

को जो वनवास भोगना पड़ा उसमें उसके पास इनमें से कुछ भी-अधिक क्या वस्त्र भी-न था। राजा नल की तरह कभी किसीने दुःख न भोगा होगा।" यह कह कर उन्होंने राजा नल की कथा सब को विस्तारपूर्वक बतलाई। कथा समाप्त होने पर वे धर्मराज से बोले, "राजा नल भी द्यूत में पराभूत होकर वन में भटकता फिरता था; उसे जिस प्रकार फिर राज्य मिल गया उसी प्रकार वह तुझे भी मिल जायगा। और यदि तू यह डरता हो कि वनवास और अज्ञातवास खतम करके जब मैं लौट जाऊंगा तब शकुनी फिर द्यूत खेल कर मेरा राज्य हर लेगा तो मैं तेरा यह डर अभी नष्ट किये देता हूं।" इतना कह कर उन्होंने धर्मराज को 'अक्षहृदय' नामक द्यूत की गुप्त विद्या सिखाई; और वे उनसे विदा होकर चले गये— (वनपर्व, अ० ५१–७९)

दिव्य अस्त्र संपादन करने के लिए अर्जुन को गये बहुत दिन हो गये, तथापि उनकी कोई खबर नहीं मिली। इस लिए जिस समय पांडव और द्रौपदी चिन्ता कर रहे थे उसी समय लोमश ऋषि वहां आ गये। उन्होंने अर्जुन का सब हाल और इन्द्र का सन्देशा उन्हें बतलाया। पांडवों ने जब यह सुना कि अर्जुन को सब दिव्य अस्त्र प्राप्त हो गये तब उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ और उनकी यह चिन्ता दूर हो गई कि राज्य कैसे मिलेगा। इसके बाद, जो ब्राह्मण प्रवास का श्रम आदि नहीं सह सकते थे उन्हें, और अन्य नागरिकों को हस्तिनापुर लौटा कर पांडव तीर्थयात्रा को चले गये। लोमश आदि ऋषि उनके साथ ही थे। मार्ग में लोमश ऋषि प्रत्येक तीर्थ की उत्पत्ति-विषयक और अन्य कथाएं पांडवों को बतलाते जाते थे। यह तीर्थयात्रा उन्होंने बहुत दिन की। नैमिषारण्य, गयःशिरपर्वत, अगस्त्याश्रम, भृगुतीर्थ, हेमकूटपर्वत, वैतरणीनदी, महेन्द्राचल, पयोष्णी

नदी, इत्यादि पुण्यस्थान और तीर्थ देखते देखते वे गंधमादन-पर्वत की ओर चले। उधर रथ जाने योग्य मार्ग न था; इस लिए रथ वहीं रख कर सब लोग पैदल ही चले। इस प्रवास में उन्हें-विशेषतः राजकन्या द्रौपदी को-बहुत क्लेश हुआ। तथापि उसे सहन करते हुए वे कुछ दिन बाद बदरिकाश्रम गये। वहां नरनारायण या पुराणमुनियों के पवित्र आश्रम में रह कर अर्जुन की मार्गप्रतीक्षा करने का उन्होंने संकल्प किया। उस आश्रम में छै दिन रहने के बाद सातवें दिन, वायु के वेग से, हजारों पंखुड़ियों का एक सुन्दर कमल, ईशान दिशा की ओर से आश्रम के पास आकर गिर पड़ा। उस कमल की सुवास और सुन्दरता देख कर द्रौपदी ने वैसे और थोड़े से कमल चाहे। इस लिए उन्हें लाने के लिए भीमसेन अकेले ही गदा लेकर ईशान की ओर चले। मार्ग में जो हिंस्र पशु विघ्न डालते उन्हें गदा के प्रहार से मारते हुए वे आगे को चले। कुछ दूर चलने पर मालूम हुआ कि यह रास्ता घने कदलीवन से होकर गया है। रास्ते में ही एक बुड्ढा वानर उन्हें बैठा हुआ देख पड़ा जान पड़ता था कि वह सो रहा है। भीमसेन ने बड़े ज़ोर से पुकार कर उसे जगा दिया। भीमसेन ने निर्दयता के साथ उसकी निद्रा भंग की; इस पर उसने उन्हें बहुत दोष दिया और इस प्रकार बोला, "यह देवलोक का मार्ग है; इधर तू मत जा। यदि ऐसा साहस करेगा तो व्यर्थ में अपने प्राण भी खो देगा।" इस पर भीम ने अपना नाम और कुल बतला कर उसका भी नाम पूछा; और उससे डपट कर यह भी कहा कि मुझे चुपके से मार्ग दे दे। उस वानर ने उत्तर दिया कि "मैं व्याधि से ग्रसा हूं; मैं यहां से टल नहीं सकता, इस लिए मुझे लांघ जा अथवा मेरी पूँछ एक तरफ हटा कर निकल जा।" भीम

बड़े गर्व से, एक हाथ लगा कर उसकी पूछ उठाने लगे; तथापि वह नहीं उठी। इस लिए अन्त में दोनों हाथ लगा कर उठाने लगे, तिस पर भी कोई वश न चला। भीम ने अपना सब बल लगा कर पूछ उठाने का प्रयत्न किया; तथापि उस वानर की पूछ तिलभर भी नहीं उठी! तब तो भीम का सारा गर्व जाता रहा और नम्रतापूर्वक नमस्कार करके उन्होंने वानर से पूछा कि आप कौन हैं? वानर ने यह कह कर कि, हम वायुपुत्र हनुमान हैं, रामावतार की सारी कथा भीम को सुनाई। अपने बड़े भाई की भेट करके भीम को असीम आनन्द हुआ। इसके बाद भीम की विनती पर हनुमान ने, समुद्र लांघने के समय का अपना प्रचण्ड रूप दिखलाया और भीम को दो वर देकर तथा उन्हें कुबेर के सौगंधिक वन का मार्ग दिखा कर हनुमान गुप्त हो गये। बहुत काल चलने पर भीम ने उसी मार्ग पर एक रम्य नदी और पास ही कुबेर का सौगंधिक वन देखा। उस वन में एक छोटी सी पुष्करिणी थी। और उसीमें वे सुन्दर तथा सुगन्धित कमल खिले थे। उस वन और पुष्करिणी की रक्षा करनेवाले यक्ष-राक्षसों ने कहा कि कमल प्राप्त करने के लिए कुबेर की आज्ञा ले आओ। भीम ने उत्तर दिया, "मैं कुबेर के यहां न जाऊंगा, और यदि वह मुझे मिल भी गया तो भी मैं उससे याचना नहीं कर सकता। क्योंकि 'न हि याचंति राजान एष धर्मः सनातनः'। अर्थात् क्षत्रियों को-राजाओं को-याचना न करना चाहिए, यह सनातनधर्म है। सिवाय यह भी बात है कि पर्वत का पानी नीचे जमा होने से यह सरोवर बन गया है; इस लिए यह सृष्टिनिर्मित है। इस पर खाली कुबेर ही का क्या हक है? इस पर सब की सत्ता बराबर ही है।" यह कह कर भीमसेन पुष्करिणी की ओर चले। यक्ष-राक्षसों ने

उन्हें ज्यों ही प्रतिबन्ध किया त्यों ही गदा से उन्होंने सब को धरती में मिला दिया! इसके बाद पुष्करणी में स्नान करके और उसका अमृततुल्य जलपान करके भीमसेन वहीं विश्रान्ति लेने के लिए बैठ गये। कुछ देर बाद, भीम के पीछे पीछे, पांडव और द्रौपदी घटोत्कच आदि लोगों को साथ ले कर वहीं आ पहुँचे। कुबेर ने भी उन्हें वहां रहने की आज्ञा दी। वहां कुछ दिन रह कर वे फिर नरनारायण के बदरिकाश्रम में लौट आये—(वनपर्व, अ० ८०–१५६)

कुछ दिनों बाद पांडवों पर एक बड़ा भारी संकट आया। जटासुर नामक एक राक्षस, ब्राह्मण के वेष से, उनके साथ आये हुए ब्राह्मणों में मिल गया था और पांडवों के शस्त्रास्त्रों पर नजर रख कर द्रौपदी को हरण करने का मौका ताक रहा था। एक दिन जब उसने देखा कि घटोत्कच आदि राक्षस पास नहीं हैं और भीमसेन भी शिकार को गये हैं तब उस राक्षस ने विकराल रूप धारण किया और पांडवों के शस्त्र छीन लिये; तथा युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव और द्रौपदी को उठा कर ले जाने लगा। सहदेव बड़े कष्ट से उसके हाथ से छूटे; और उसके साथ वे युद्ध करने ही वाले थे कि इतने में भीमसेन वहां आ पहुँचे। तुरंत ही दोनों में बाहुयुद्ध शुरू हो गया। भीम ने अन्त में उसको, हिडिंब, बक, किर्मिर की तरह यमलोक को पहुँचा दिया। कुछ दिन बाद सब लोग उत्तर ओर का प्रवास करने के लिए चले। सात दिन मार्गक्रमण करके वे हिमालय के पृष्ठभाग में वृषपर्वा के आश्रम में पहुँचे। वहां सात दिन मुकाम करके वे गंधमादनपर्वत पर आर्ष्टिषेण के आश्रम को गये; और उसी ऋषि के कहने पर, अर्जुन की रास्ता देखते हुए, उन्होंने वहीं रहने का निश्चय किया। बीच में, फिर, द्रौपदी के कहने पर, भीमसेन गंध-

मादन पर्वत पर जा कर सिंहनाद करने लगे। यहाँ के राजा कुबेर का यह स्थान था। भीमसेन के साथ उनका युद्ध हुआ। भीम ने अनेक यक्ष-राक्षस मारे। अन्त में कुबेर के सखा "मणिमान्" नामक एक राक्षस को उन्होंने मार डाला। द्रौपदी को आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में छोड़ कर धर्मादि पांडव भी भीम के पीछे पीछे वहां आये। कुबेर से उनकी भेंट हुई और आपस में एक दूसरे के अपराध क्षमा करके मित्रता कर ली।

इधर पांडवों को अर्जुन की खबर देने के लिए लोमश ऋषि को भेजने के बाद, अस्त्रविद्या में पूर्ण प्रवीण हुए अर्जुन को, इन्द्र ने, अपना रथ और सारथी साथ दे कर, निवातकवच नामक राक्षसों से युद्ध करने के लिए भेजा। अर्जुन ने वज्रास्त्र से उनका संहार किया; और लौटते समय हिरण्यपुर नामक नगर के 'कालकंज' दैत्य का भी रौद्रास्त्र से वध किया। इस प्रकार विजय प्राप्त करके अर्जुन अमरावती को लौट आये। इस प्रकार देवों का कार्य करके, कृतकृत्य होते हुए, अर्जुन इन्द्र के रथ पर बैठ कर, गंधमादन पर्वत पर आये और अपने भाइयों से मिले। पांडवों ने जब देखा कि अर्जुन, शंकर का पाशुपतास्त्र, इन्द्र का वज्रास्त्र और अन्य दिव्य अस्त्र प्राप्त करके लौट आये तब उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। अब तक पांडवों ने वनवास में करीब ग्यारह वर्ष व्यतीत किये और फिर वे द्वैतवन के लिए लौट चले। पर्वत पर जहां मार्ग अच्छा नहीं था वहां घटोत्कच आदि राक्षस पांडवों को कंधे पर लेकर चलते थे। इस प्रकार मार्ग-क्रमण करते हुए वे राजा सुबाहु के देश में आये। वहां से अपना रथ और सारथी आदि लेकर वे फिर आगे चले। बीच में एक बड़े भारी अजगर ने भीम को अपनी लपेट से जकड़ डाला; भीम ने बहुत प्रयत्न किया; परन्तु वे उस अजगर से

नहीं छूट सके। अन्त में उनकी शक्ति तथा शक्ति-विषयक गर्व का भी एकदम लय हो गया। इतने में धर्मराज वहां आये; उनसे उस सर्प ने जो प्रश्न किये उनके उत्तर उन्होंने बड़ी चतुरता से दिये और भीम को छुड़ाया। स्वर्ग में रहकर राजा नहुष ऐश्वर्यमद से इतना अन्धा हो गया था कि वह अपना रथ हजार ब्राह्मणों से खिंचाता था। जब कि अगस्त ऋषि उसका रथ खींच रहे थे तब उसने उनके लात मारी। उस समय अगस्त के शाप से उसे सर्पदेह प्राप्त हुई थी। धर्म ने उसे शापमुक्त करके फिर स्वर्ग को भेज दिया। इस प्रकार प्रवास करते हुए वे द्वैतवन को लौट आये। वहां वर्षा के अन्त तक वे रहे और बाद को, शरदऋतु लगने पर, वे वहां से काम्यक-वन को चले आये। वहां श्रीकृष्ण उनसे मिलने के लिए आये। इस बात की परीक्षा करने के लिए, कि युधिष्ठिर का सत्यव्रत वैसा ही कायम है या नहीं, श्रीकृष्ण ने उनसे कहा, "युधिष्ठिर, मैं तुमको एक ऐसी युक्ति बतलाता हूं कि जिससे बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करने की तुम्हारी प्रतिज्ञा तो भंग न होगी; किन्तु तुम्हारा राज्य तुम्हें लौट मिलेगा। हम तीस कोटि यादव तुम्हारे लिए युद्ध करने को तैयार हैं। यादवसेना का आधिपत्य स्वीकार करके बलराम हस्तिनापुर पर चढ़ाई करेंगे; और कौरवों को पराभूत करके तुम्हारा राज्य तुम्हें प्राप्त करा देंगे।" श्रीकृष्ण की यह सलाह धर्मात्मा युधिष्ठिर को पसन्द नहीं पड़ी। वे बोले, "हमारा धर्म, हमारा योगक्षेम, हमारे आप्तजन और हम सब तुम्हारे ही आश्रय पर अवलम्बित हैं। इतना ही क्यों, हम सब तुम्हारे दास हैं, इस लिए हम सत्यमार्ग नहीं छोड़ सकते। वनवास और अज्ञातवास समाप्त होने पर हम खुद ही तुम्हारी सहायता मांगने आवेंगे। आगे जो युद्ध होगा; उसमें हमें तुम्हारा ही

भरोसा है। परन्तु तेरह वर्ष समाप्त होने के पहले हम अपना राज्य नहीं चाहते।" इसके बाद द्रौपदी के पाँच पुत्रों और अभिमन्यु का क्षेम-कुशल बतला कर श्रीकृष्ण ने बड़े कौतुक से उनकी धनुर्विद्याविषयक कुशलता का द्रौपदी से वर्णन किया। इस प्रकार सम्भाषण हो रहा था, इतने ही में मार्कंडेय ऋषि वहां आये। ये महर्षि उनके पास बहुत दिन तक रहे और भिन्न भिन्न पुराणकथाएं बतला कर तथा धर्मसम्बन्धी अनेक विषयों का बोध करा कर उन्हें उपदेशामृत पिलाया। यह भाग महाभारत में "मार्कंडेयसमस्या" के नाम से प्रसिद्ध है—(वनपर्व, अ० १५७–२३५)

इधर वनवास में रह कर पांडव इस प्रकार कष्ट सहते हुए दिन काट रहे थे और उधर हस्तिनापुर का चांडाल-मंडल भी चुप न बैठा था। कर्ण और शकुनी ने एक यह अजीब युक्ति दुर्योधन से बतलाई कि "अब पांडवों का सब वैभव नष्ट हो गया है और वे द्रौपदी सहित वल्कल पहन कर वन में रहते हैं; ऐसी दशा में किसी न किसी निमित्त से वहां जाना चाहिए और अपना वैभव दिखला कर उन्हें लज्जित करना चाहिए तथा उनके जले पर नमक छिड़कना चाहिए।" अन्याय से सज्जनों को सता कर उन्हें केवल लूट लेने ही में दुष्टों को सन्तोष नहीं होता; किन्तु सज्जन जिस समय दुःख में होते हैं उस समय अपना वैभव उनकी आखों के सामने नचा कर उन्हें खिझाने में ही दुष्टों को बड़ा आनन्द होता है। उन्होंने धृतराष्ट्र से यह बहाना करके यह बात निकाली कि, द्वैत वन में कौरवों के जो घोष (पशुशाला) हैं उन्हें देखने के लिए और मृगया करने के लिए वन में जाना है। परन्तु किसी दूसरे ही कारण से

इसे यह विचार पसन्द नहीं पड़ा। धृतराष्ट्र यह सोच कर डरा कि कौरवों के ही अन्यायाचरण से पांडव इस समय दुःख भोग रहे हैं; इस लिए कौरवों के देखते ही कदाचित् वे बिगड़ कर दुर्योधन का वध करके, बदला निकाल लेंगे! इस लिए पहले पहल उसने इस बात के लिए अनुमोदन नहीं दिया। शकुनी मामा को पांडवों का स्वभाव अच्छी तरह मालूम था; और वह उससे लाभ उठाने को सदा उपदेश करता। वह बोला, "धर्मराज सत्य नहीं छोड़ेगा। वह प्रतिज्ञा भंग कभी न करेगा। उसके भाई भी सदैव उसकी आज्ञा में चलनेवाले हैं। इस कारण हमें डरने का कोई कारण नहीं है।" इस प्रकार मामा ने समझा दिया। तब अन्त में धृतराष्ट्र ने घोषयात्रा के लिए आज्ञा दी। इसके बाद दुर्योधन अपनी सेना, भाई और स्त्रियों को साथ ले कर द्वैतवन में आया। पहले घोष में जा कर उसने वहां के गाई, बैल, बछड़े आदि देखे; बाद को सब ने मृगया की। अन्त में, पांडव उस वन में जिस सरोवर के पास रहते थे उसमें जलक्रीड़ा करने का विचार करके दुर्योधन ने अपने सेवक वहां भेजे। वहां उसके पहले ही चित्रसेन गन्धर्व, अप्सराओं के साथ, जलक्रीड़ा करता था, इस लिए अन्य गन्धर्वों ने कौरवों के सेवकों को धिक्कार कर उनसे लौट जाने के लिए कहा। दुर्योधन का यह अपमान देख कर कौरवों ने गंधर्वों से युद्ध शुरू किया। लड़ाई के प्रारम्भ में कौरवों ने बहुत ही पराक्रम दिखलाया। परन्तु अन्त में जब गन्धर्वों ने कर्ण के घोड़े, सारथी और रथ का विध्वंस कर डाला तब वह नीचे उतर कर विकर्ण के रथ में बैठ कर भग गया। इसके बाद कुछ देर दुर्योधन, दुःशासन आदि ने युद्ध जारी रखा। परन्तु अन्त में चित्रसेन गन्धर्व ने दुर्योधनादि कौरवों को पराभूत किया; और उन्हें

तथा उनकी स्त्रियों को, कैद करके जयघोष करते हुए वह ले जाने लगा! इधर युद्ध से जीव लेकर भगे हुए कौरवों के अमात्य युधिष्ठिर के शरण आये; और उन्होंने धर्मराज से विनती की कि दुर्योधन तथा कौरवस्त्रियों को छुड़ा कर कुल-वंश की लज्जा रखो। यह हाल सुन कर भीमसेन आनन्द से बोले, "हम क्षत्रिय हो कर भी आज यहां वन में हाथ पर हाथ रखे झख मारते हुए बैठे हैं। अब तो कहना चाहिए कि तीसरे ने हमारे शत्रु को पराभूत करके हमारी लाज ही रख ली! जो काम करने के लिए हमें, बड़ी भारी सेना तैयार करके युद्ध करना पड़ता वह बाहर बाहर तीसरे ही ने कर डाला, अब इससे अच्छी बात कौन होगी?" परन्तु भीमसेन की यह बात धर्मराज को सहन नहीं हुई। वे बोले, "ये लोग हमारी ही शरण आये हैं; इस लिए इनकी रक्षा करना हम क्षत्रियों का कर्तव्य है। अपनी ज्ञाति या कुल में चाहे जितनी कलह हो; परन्तु जब उसे कोई दूसरा बाहर का मनुष्य सतावे या अपमान करे तो उसका प्रतिकार प्रत्येक को करना चाहिए। कुरुवंश की स्त्रियों को गंधर्व कैद कर ले जायँ और हम चुप बैठे रहें, यह हमारे कुल के लिए-हमारे क्षत्रियत्व के लिए भी-लांछन की बात है।

ते शतं हि वयं पंच परस्पर-विवादने ।
परैस्तु विग्रहे प्राप्ते वयं पंचाधिकं शतं ॥

आपस में झगड़ा होने पर वे सौ और हम पांच हैं ही; परन्तु तीसरे से झगड़ा होने पर हमें एक-सौ-पांच होना चाहिए।" इस प्रकार बोध करके, दुर्योधन को छुड़ा लाने के लिए, उन्होंने

भीमादिकों को भेजा। उन्होंने चित्रसेन के साथ बहुत देर तक युद्ध किया और उसकी माया की भी परवा न करते हुए उन्होंने अपना शौर्य तथा पराक्रम उसे दिखलाया। अन्त में चित्रसेन स्वयं अर्जुन के पास आकर बोला, "तुम वनवास में थे, इस लिए तुम्हें अपना वैभव दिखा कर खिझाने के लिए यह दुर्योधन यहां आया था; इस लिए इसे पकड़ लाने के लिए इन्द्र ने हमें आज्ञा दी थी, इसी कारण हमने इसे कैद किया है।" इसके बाद सब कैदियों को साथ लेकर चित्रसेन धर्मराज के पास आया। धर्मराज ने तत्काल सब को छुड़ा दिया। जब चित्रसेन धर्मार्जुनों से विदा हो कर चला गया तब धर्मराज दुर्योधन से बोले, "दुर्योधन, ऐसा दुःसाहस अब कभी मत करना। दुःसाहसी पुरुषों को सुख कभी नहीं होता; तेरा और तेरे भाइयों का कल्याण हो। तू आनन्द से अपने घर जा; और जो बात हो गई उसके लिए कुछ भी विषाद न मानना।" यह सुन कर दुर्योधन बहुत ही लज्जित हुआ और युधिष्ठिर को नमस्कार करके वहां से चुपके चलता हुआ। इस बात पर उसे बहुत खेद हुआ कि हम अपना और अपनी स्त्रियों का वैभव दिखला कर, वल्कल पहने हुए वन में दिन काटनेवाले भीमार्जुन तथा द्रौपदी को, खिझाने के लिए आये; परन्तु उलटे उनके सामने कैदी बन कर हम को खड़ा रहना पड़ा; और छुटकारा भी उन्हींके कारण हुआ; अपनी स्त्रियों के सामने अपने ऊपर ऐसा कठिन प्रसंग आया और ऐसी फजीहत हुई! मार्ग में उसे कर्ण मिला। यह समझ कर, कि दुर्योधन गंधर्वों का पराजय करके आ रहा है, कर्ण उसका अभिनन्दन करने लगा। परन्तु उसने यह सब हाल कर्ण से बतलाया कि गंधर्वों ने हमारा पराभव किया और सब से अधिक

लज्जास्पद और दुःखदायक बात यह हुई कि पांडवों ने हम लोगों को उनके पंजे से छुड़ाया। उस मानी दुर्योधन ने सोचा कि पांडवों के हाथ से जो हमारा छुटकारा हुआ उससे तो यही अच्छा था कि गन्धर्वों के साथ युद्ध करके हम लोग मर गये होते। इस सारी घटना से दुर्योधन का मन इतना उद्विग्न हुआ कि उसे अपना जीना भार मालूम होने लगा। यह कह कर कि, हमारे पीछे दुःशासन राजगद्दी पर बैठे, वह "प्रायोपवेशन" करके आत्महत्या करने के लिए तैयार हुआ! दुःशासन, शकुनी आदि उसके सब साथी उसे समझाने लगे। कर्ण यह कह कर समझाने लगा कि, "तू इस सारी पृथ्वी का राजा है। पांडव तेरे ही राज्य में रहनेवाले प्रजाजन हैं। ऐसी दशा में उन्होंने अपने राजा को—तुझे—बन्धमुक्त किया; इस बात पर तुझे दुःख और खेद क्यों करना चाहिए? पांडवों ने, प्रजाजन के नाते से, जो कुछ किया वह उनका कर्तव्य ही था।" इधर दानवों ने जब देखा कि दुर्योधन यदि आत्महत्या कर लेगा तो हमारे पक्ष की भी हानि होगी तब उन्होंने अथर्ववेदोक्त मंत्रों से एक कृत्या उत्पन्न की और उसके द्वारा दुर्योधन को पाताल में बुलवाया और कहा, "दुर्योधन, तुझे अपना मन निराश न करना चाहिए। तेरे लिए दानवों ने भूलोक में, भगदत्त आदि राजाओं के रूप में, जन्म लिये हैं; वे तुझे सहायता करेंगे। कर्ण पूर्वजन्म का नरकासुर है। यह निस्सन्देह अर्जुन का वध करेगा; और सब पांडवों का वध हो जाने पर तू अक्षय राज्य करेगा।" इस प्रकार उसका मन समझा कर उन्होंने उसे फिर कृत्या के द्वारा पहली जगह में पहुँचा दिया। दुर्योधन स्वप्न से जगे हुए के समान उठा! उस समय उसे कुछ समाधान मालूम हुआ। कर्ण अर्जुन का वध करेगा—आदि, सब बातें उसे

सम्भव मालूम होने लगीं और प्रायोपवेशन करने का दुःसाहस छोड़ कर वह हस्तिनापुर लौट आया।

इसके बाद, कर्ण, दुर्योधन के लिए, सेना साथ लेकर, दिग्विजय करने को निकला। और पृथ्वी के सब राजाओं को जीत कर तथा बहुत सा कर लेकर हस्तिनापुर लौट आया। इस दिग्विजय के बाद दुर्योधन ने सोचा कि पांडवों की तरह हमें भी राजसूय यज्ञ करना चाहिए। परन्तु पुरोहित के बतलाने पर उसे मालूम हुआ कि जब तक हमारा पिता धृतराष्ट्र जीवित है और जब तक भारतकुल में राजसूय यज्ञ किया हुआ पुरुष युधिष्ठिर जीवित है तब तक हम राजसूय यज्ञ नहीं कर सकते। इस पर राजसूय यज्ञ की तोड़ का ही 'विष्णुयाग' करने का निश्चय करके उसने सब तैयारी की; और सब को आमंत्रण देने के लिए दूत भी भेज दिये। दुःशासन के खास तौर पर कहने से एक दूत ने धर्मराज के पास आकर उन्हें भी निमंत्रण दिया। उसके उत्तर में धर्म ने उस दूत के द्वारा यह शिष्टाचार का सन्देशा भेज दिया कि "तू जो यह यज्ञ करता है सो भारतकुल के पुरुषों के लिए अत्यन्त उचित है; हम भी बड़े आनन्द से यज्ञ में आये होते; पर क्या करें, लाचारी है; हम अपनी प्रतिज्ञा तोड़ नहीं सकते।" परन्तु भीम का सन्देशा कुछ और ही था। उन्होंने कहा, "यह अपने राजा से तू जाकर कह दे कि; जिस यज्ञ में शस्त्र-अस्त्रों से उत्पन्न हुआ अग्नि प्रज्वलित किया जायगा उस रणयज्ञ में मैं धर्मराजसहित अवश्य ही आऊंगा।" अस्तु। सब कौरवों की सहायता से वह यज्ञ पूर्ण हुआ। परन्तु यह बात दुर्योधन के मन से नहीं गई कि पांडवों की तरह बड़ा राजसूय यज्ञ करना चाहिए। तब कर्ण ने प्रतिज्ञापूर्वक उसे आश्वासन दिया, "मैं रण में पांडवों का संहार करूंगा और तब तू राजसूय यज्ञ करना; उस समय

मैं तुझे सहायता करूंगा। इस पर यदि तुझे विश्वास न आता हो तो मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक मैं अर्जुन का वध न कर लूंगा तब तक मैं अपने पैर दूसरे से न धुलाऊंगा; मद्य-मांस वर्ज करूंगा; और मुझ से जो कोई जो पदार्थ मांगेगा वह उसे दूंगा; नाहीं न करूंगा।" इधर जब तक ये सब बातें हुईं तब तक, एक वर्ष आठ महीने, पांडव द्वैतवन में थे; बाद को वे काम्यकवन में चले आये—(वनपर्व, अ० २३६-२५८)

काम्यकवन में आने पर पांडव और द्रौपदी पर और एक दो संकट आये। दुर्वासा नामक एक शीघ्रकोपी ऋषि को दुर्योधन ने बड़े प्रयास से प्रसन्न कर लिया और उससे यह वर मांगा कि "द्रौपदी का भोजन हो जाने पर जब थाली खाली हो जाय तब आप अपने सब शिष्योंसहित पांडवों के यहां भोजन के लिए जाइये।" एक दिन जब सब ब्राह्मण और पांडवों के भोजन हो जाने पर द्रौपदी का भी भोजन हो गया; और सूर्य की दी हुई थाली खाली पड़ गई तब दुर्वासा ऋषि अपने हजारों शिष्यों के साथ अकस्मात पांडवों के यहां भोजन के लिए आ गये। युधिष्ठिर ने उनसे नदी पर जाकर स्नान करने और नित्यनियम कर आने के लिए कहा; वे नदी पर गये। इधर थाली खाली हो जाने पर ऋषियों को आया हुआ देख कर द्रौपदी ने समझा कि अब हमारा सत्व जाता है। उसने श्रीकृष्ण का स्मरण किया और भक्तवत्सल श्रीकृष्ण वहां तत्काल दौड़ आये! उन्होंने द्रौपदी से खाली हुई थाली ले ली; और उसकी एक कोर में जो थोड़ा सा भाजी का अंश रह गया था उसे उन्होंने बड़े प्रेम से खाया; और उतने ही से उनकी क्षुधा शान्त हो गई! नदी पर जा कर ऋषियों को भोजन के लिए बुला लाने के लिए श्रीकृष्ण ने सहदेव को भेजा। इधर दुर्वासा के सब शिष्य ज्योंही स्नान आदि से

निपट कर ऊपर आये त्योंही उन्हें मालूम हुआ कि हम सब आकंठ भोजन करने के समान तृप्त हैं और अब हमें भोजन करने की बिलकुल इच्छा नहीं है; यह बात उन्होंने दुर्वासा से बतलाई। उन्होंने जब देखा कि भोजन के बिना ही हमारे सब शिष्यों की तृप्ति हो गई तब उन्हें इस बात का सोच हुआ कि जान पड़ता है, धर्मराज अम्बरीष की तरह ही राजर्षि है, हमने उस के साथ बिना कारण कपटाचरण किया; अब नहीं जान पड़ता कि वह हमें क्या करेगा। इस प्रकार डर कर दुर्वासा ऋषि अपने सब शिष्योंसहित नदी ही पर से भग गये। इधर सहदेव नदी पर आकर देखते हैं तो वहां कोई भी ऋषि नहीं है। यह देखकर उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ। परन्तु वहां के कुछ दूसरे ब्राह्मणों के कहने से दुर्वासा के भग जाने का कारण उन्हें मालूम हुआ और लौट आकर उन्होंने यह हाल सब से बतलाया।

इस घटना के बाद एक दिन पांडव, द्रौपदी को तृणबिन्दु ऋषि के आश्रम में रख कर मृगया के लिए गये थे। उसी दिन सिंधु देश का राजा जयद्रथ शाल्व देश से लौट कर उस वन में उतरा। आश्रम के द्वार में खड़ी हुई द्रौपदी को देख कर जयद्रथ के मन में पापविचार आया। वह स्त्री कौन है, किस की है और इस वन में क्यों आई है, इत्यादि बातें पूछने के लिए उसने अपने साथ के "कोटिकास्य" नामक राजपुत्र को उधर भेजा। उस समय द्रौपदी आश्रम के दरवाजे के पास, एक कदम्ब वृक्ष की डाली, एक हाथ से नवा कर पकड़े हुए खड़ी थी। कोटिकास्य को देखते ही डाली छोड़ कर शीघ्र ही उसने अपना अंचल आदि सँभाला। कोटिकास्य ने उसकी सुन्दरता आदि की प्रशंसा करके उससे उसका परिचय लिया। अपना पूरा परिचय देकर और वन में आ कर रहने का कारण

बतला कर वह बोली, "पांडव मृगया को गये हैं। आप और जयद्रथ आज यहीं टिक रहें। आप लोगों को देख कर अतिथि-प्रिय युधिष्ठिर को बहुत सन्तोष होगा।" इतना कह कर वह उनके आदरातिथ्य की तैयारी करने के लिए पर्णकुटी में चली गई। कोटिकास्य ने जयद्रथ से जाकर बतलाया कि यह आश्रम की स्त्री कौन है। तब जयद्रथ स्वयं आश्रम में आया। आरम्भ में क्षेमकुशल-प्रश्न होने पर द्रौपदी ने पाद्य और आसन देकर बड़ी मर्यादा से पूछा कि क्या कुछ भोजन के लिए दूं? परन्तु वह दुष्ट पुरुष इस अतिथि-सत्कार की कीमत क्या जाने! वह इस प्रकार की वाहियात बकवाद करने लगा कि, "पांडव राज्यभ्रष्ट होकर वन में आ रहे हैं। उनके पास रह कर तू दुख में दिन क्यों काट रही है? तू मेरे रथ पर बैठ और सिंधु देश को चल। वहां जाने पर तेरे पास दुःख का नाम-निशान भी न रहेगा।" तब द्रौपदी ने 'मैवं' (यह क्या कहते हो), 'लज्जस्व' (कुछ तो शरमाओ) इत्यादि कह कर उसकी बड़ी निर्भर्त्सना की। तथापि जयद्रथ ने अपना निर्लज्जता का बोलना वैसा ही जारी रक्खा। जब उसने देखा कि द्रौपदी सीधे तौर से नहीं मानती है तब उसने बलात्कार उसे उठा कर अपने रथ पर बैठा लिया; और उसे लेकर वह शीघ्रता के साथ आगे बढ़ा। उसका चिल्लाना सुन कर धौम्य पुरोहित वहां आ गये। और यह कहते हुए वे रथ के पीछे दौड़े कि "पांडवों के पीछे द्रौपदी को चुरा ले जाना सच्चे क्षत्रिय का कर्तव्य नहीं है। पांडवों को युद्ध में जीत कर फिर इसे ले जाना शूर पुरुष को उचित है।"

इधर पांडव मृगया से लौट कर आये तो उन्हें आश्रम के पास द्रौपदी की दासी रोती हुई मिली। उसके मुहँ से सब हाल सुन कर सब लोग, तुरन्त ही रथ साज कर, जयद्रथ के पीछे दौड़े। कुछ दूर

पर जा कर उन्होंने उसे पकड़ा और युद्ध शुरू किया। भीम ने पहले ही सपाटे में कोटिकास्य का सिर उड़ा दिया, त्योंही जयद्रथ की सेना पराभूत हो कर भग चली। जब जयद्रथ ने देखा कि अब हमारी एक भी न चलेगी तब द्रौपदी को रथ से नीचे उतार कर उसने भगना शुरू किया! अर्जुन और भीम दोनों ने जयद्रथ का बड़े जोर से पीछा किया; उस समय धर्मराज ने उनसे कहा कि "जयद्रथ यद्यपि दुष्ट है, तथापि दुःशला और गांधारी के लिए, हमें उसका वध करना उचित नहीं है।" अर्जुन के रथ से जयद्रथ एक कोस दूर था; तथापि अर्जुन ने अपने अस्त्र-प्रभाव से उसके रथ के घोड़ों को मार डाला। तब रथ से नीचे कूद कर जयद्रथ पैदल ही भगने लगा! परन्तु भीम ने उसे जा पकड़ा और उसके बाल पकड़ कर उसे नीचे गिरा दिया। वह ज्योंही उठने लगा त्योंही उसके लात मार कर भीम ने धिक्कारपूर्वक उससे कहा कि जब तू "दासोऽस्मि" (मैं तुम्हारा दास हूं) कहेगा तब तुझे मैं जीता छोड़ूंगा! जयद्रथ ने दीनता के साथ 'दासोऽस्मि' कहा। भीम ने अपने अर्धचन्द्र बाण से उसके सिर पर जब पाँच चिन्ह कर दिये तब अर्जुन ने उसे बांध कर अपने रथ पर डाल लिया और युधिष्ठिर के पास ले आये! भीम ने आनन्दपूर्वक द्रौपदी से कहा कि, "यह पापी जयद्रथ आज से पांडवों का दास हो गया है।" परन्तु उसे दास्य से मुक्त करके युधिष्ठिर बोले, "तू अदास है; अब अपने देश को लौट जा। ऐसा साहस अब कभी मत करना।" इस घटना से जयद्रथ को बहुत बुरा लगा और वह सोचने लगा कि किस प्रकार पांडवों से इसका बदला लें। इसके बाद वह सिंधु देश को न जाकर गंगाद्वार को चला गया और वहां उसने घोर तप करके शंकर को प्रसन्न किया। शंकर से उसने यह वर

और शीघ्रतापूर्वक बड़े शरीरधारी सर्प के द्वारा खाये जाते हुए तथा जबतक कालात्मक यह सर्प उस (मेंढक) को खाता है ॥ ९ ॥

तावद्बभूव मंडूको नागयज्ञोपवीतिकः ॥
अर्धचन्द्रधरः शीर्षे जटाटव्या विराजितः ॥१०॥

तबतक मस्तक पर अर्धचन्द्रधारी और जटा के समूहों से विराजित (वह मंडूक) शिवरूप होगया ॥१०॥

कैलासाद्रिसमाभासो नृत्यद्गणविराजितः ।
त्रिशूली नीलकंठो वै हस्तिचर्म्माम्बरो विभुः ११॥

कैलासपर्वत के समान कान्तियुक्त, नृत्य करते हुए गणों के साथ, हाथी का चर्म धारण किये हुए, नीलकंठ शिव होगया ॥ ११ ॥

इति तत्परमाश्चर्य्यं दृष्ट्वा वै व्याधपूरुषः ॥
किमेतद्वै कथं जातो मंडूकः सर्पवेष्टितः ॥ १२ ॥

इस प्रकार के उस आश्चर्य को देख वह व्याध बोला कि यह क्या है और यह मेंढक सर्पों से वेष्टित किसप्रकार होगया ॥ १२ ॥

उन्होंने वह पेटी ऊपर लाकर खोली। (पृ० १४३)

आकर खड़े हो गये। कुंती उनसे बोली, "मैंने तुम्हें इस बात की परीक्षा के लिए बुलाया था कि मंत्र सत्य है या झूठ है। अब तुम लौट जाओ।" परन्तु सूर्य ने कहा, "देवों को बिना कारण कभी बुलाना न चाहिए; मुझे अब तू यदि ऐसा ही लौटा देगी तो मैं तुझे शाप दे दूंगा। कुन्ती, तू मेरे वश हो; मुझसे तेरे जो पुत्र होगा वह मेरे ही समान अत्यन्त तेजस्वी और जन्म से ही अमृतमय कुंडल धारण करनेवाला होगा।" यह सुन कर कुंती बहुत डर गई; और इस भय से कि, ऐसा करने से हमारा कौमार्य नष्ट हो जायगा, वह उनकी बात पर राजी न हुई। परन्तु सूर्य ने अपने तेज से उसे मोहित कर डाला और उसे शय्या पर मूर्छित कर दिया। उसका कौमार्य नष्ट न करते हुए, योगबल से, उसके शरीर में प्रवेश करके गर्भ स्थापित किया। कौमार्यावस्था में रहा हुआ यह गर्भ उसने नव मास बिलकुल गुप्त रखा; और प्रसूत होने पर उस तेजस्वी बालक को अपनी दाई के हाथ से एक सन्दूकचे में अच्छी तरह बन्द करवाया और किसीको न मालूम होते हुए उसने उसे अश्वनदी में डलवा दिया। वह पेटी बहते बहते उस नदी से चर्मण्वती नदी में, वहां से यमुना में, और यमुना से गंगा में बह गई। और अन्त में वह गंगा के किनारे चंपानगर के पास जा लगी। उस समय गंगा पर स्नान करने के लिए, धृतराष्ट्र का परम स्नेही आधिरथ नामक सारथी, अपनी भार्यासहित, आया था। उसने वह पेटी पाई। पेटी खोलने पर उससे बालक निकला। उसके कोई लड़का न था; इस लिए वह उस बालक को पाकर बहुत आनन्दित हुआ। उसने समझा कि यह बालक परमेश्वर ने हमारे ही लिए भेजा है। उसे घर लाकर उसने उत्तम प्रकार से उसका पालनपोषण किया। कुन्ती ने जब यह सुना कि हमारा लड़का आधिरथ सारथी के यहां कुशल से है, तब

उसे भी बड़ा आनन्द हुआ। उसका नाम 'वसुषेण' रखा गया; उसे वृष भी कहते थे। जब वह बड़ा हुआ तब आधिरथ ने द्रोणाचार्य के पास भेजकर उसे अस्त्रविद्या सिखलाई। वहीं उसके सहाध्यायी दुर्योधन से उसकी मित्रता हो गई और पांडवों से-विशेषतः अर्जुन से-उसकी शत्रुता हो गई।

पांडवों को यह बहुत डर था कि कर्ण के शरीर में सूर्यदत्त कवच होने के कारण वह युद्ध में कभी न मरेगा। जब सूर्य को यह खबर मालूम हुई कि वे कवचकुंडल इन्द्र उससे ले लेनेवाला है तब वह ब्राह्मण का रूप धर कर कर्ण के पास आया और बोला, "हे कर्ण, तू ने जो यह व्रत किया है कि जो कोई कुछ मांगेगा वह उसे मैं अवश्य दूंगा, उस पर इन्द्र तेरे कवचकुंडल मांगने के लिए आनेवाला है। इस लिए यदि तू पांडवों का पराभव करना चाहता हो-अधिक क्यों, यदि तू जीवित रहना चाहता हो-तो तू, इन्द्र को और चाहे जो वस्तु दे दे; परन्तु कवच-कुंडल मत देना।" इस प्रकार बहुत कुछ हित की बातें बतलाईं। परन्तु इस पर कर्ण ने यह उत्तर दिया, "पांडवों के हाथ से होनेवाले मरण की मुझे कुछ बहुत परवा नहीं है। परन्तु अपना व्रत-अपनी प्रतिज्ञा-भंग करने से मेरी जो अपकीर्ति होगी उससे मैं बहुत डरता हूं, इस लिए तुम मुझ से नियम भंग करने का आग्रह मत करो।" ब्राह्मण ने फिर भी बहुत समझाया; पर जब उसने देखा कि उसका कुछ भी उपयोग नहीं होता तब उसने कर्ण से यह सूचित किया कि जब तू इन्द्र को कवच-कुंडल देने लगेगा तब उससे उनके बदले में एक ऐसी अमोघ शक्ति अवश्य माँग लेना जो एक शत्रु को निस्सन्देह मार सके। इसके बाद वह ब्राह्मण चला गया। कुछ दिन बाद इन्द्र ब्राह्मण का रूप धर कर कर्ण

के पास आया और कवच-कुंडल मांगे। उन्हें देना कर्ण ने स्वीकार किया; परन्तु वे कवच-कुंडल शरीर के ही थे; इस कारण उन्हें देने में शरीर की खाल निकालनी चाहिए थी, इस लिए उसने इन्द्र से ये दो वर मांगे कि, खाल निकाल कर कवच-कुंडल देने से शरीर जो वैसा देख पड़ेगा वह वैसा न दिखना चाहिए और एक ऐसी अमोघ शक्ति दी जाय कि जिससे एक शत्रु का वध अवश्य हो। उस समय कर्ण को वह शक्ति देकर इन्द्र बोला, "यह अमोघ शक्ति तू जिस पर छोड़ेगा वह एक योद्धा अवश्य मर जायगा, और इसके बाद वह शक्ति मेरे पास लौट आवेगी"। यह शक्ति मिलने पर कर्ण ने भी अपने शरीर का कवच और कानों के कुंडल शस्त्र से काट कर इन्द्र को दे दिये। इन्द्र भी कृतकृत्य होकर स्वर्ग को चला गया—(वनपर्व, अ० ३००-३१०)

वन में रह कर पांडव अनेक प्रकार की विपत्तियां और संकट सहते रहे; अब वनवास के बारह वर्ष समाप्त होने पर आये। बारहवाँ वर्ष समाप्त होने में थोड़े ही दिन बाकी रह गये थे, तब पांडव फिर काम्यकवन छोड़ कर द्वैतवन में गये। इसके बाद, कुछ दिन में, एक तपस्वी ब्राह्मण पांडवों के पास आया और बोला, "अग्नि उत्पन्न करने का मंथा और अरणी, ये दोनों मैंने एक वृक्ष में लटका रखे थे। एक बार एक मृग वहां आया और अपने सींग उस वृक्ष में रगड़ने लगा। वे दोनों चीजें उसके सींगों में फँस गईं और वह वैसा ही उन्हें लेकर भग गया। अब मेरे अग्निहोत्र का काम बन्द हो गया है। इस लिए कृपा करके तुम वन में जाओ और मृग को मार कर मेरा मंथा और अरणी मुझे ला दो"। यह सुनते ही सब पांडव धनुष साज कर वन में गये। उन्होंने वहां अनेक जगहों में खोज किया; पर अरणी और मंथा जिसके

सींगों में अटके थे, ऐसा कोई भी मृग उन्हें कहीं भी नहीं मिला। अन्त में श्रम और प्यास से व्याकुल होकर वे एक बरगद के वृक्ष के नीचे बैठ गये। नकुल ने वृक्ष पर चढ़ कर देखा तो उन्हें दूर पर एक जगह पानी देख पड़ा। धर्मराज ने यह कह कर, कि " नीचे उतर कर उधर जा; और पानी पी कर हमारे सब के लिए बाणों के तरकसों में पानी ले आ, " नकुल को वहां भेजा। नकुल जब वहां गये तब उन्हें एक स्वच्छ और सुन्दर सरोवर देख पड़ा। वहां पानी पीने के लिए जब वे जाने लगे तब उन्हें ये शब्द सुन पड़े:-" अरे, यह साहस मत करना, इस सरोवर पर मेरी सत्ता है। मेरे प्रश्नों के ठीक ठीक उत्तर पहले देकर तब पानी पी और ले जा। " परन्तु इस पर कुछ भी ध्यान न देकर उन्होंने पानी पी लिया। तब वह तत्काल वहीं मर कर गिर पड़े! इधर धर्मराज ने सहदेव को यह देखने को भेजा कि नकुल क्यों नहीं आया और पानी लाने के लिए कहा। नकुल ही की सी उनकी भी दशा हुई और वे मर कर गिर पड़े! इसके बाद धर्म ने क्रमशः अर्जुन और भीम को भी भेजा; उनकी भी वही दशा हुई! धर्म ने जब देखा कि हमने चारो भाइयों को भेजा; पर अभी तक वे कोई नहीं लौटे तब वे स्वयं उस सरोवर पर आये। वहां वे क्या देखते हैं, कि हमारे चारों भाई मरे पड़े हैं, इस पर उन्हें अत्यन्त दुःख और आश्चर्य हुआ। उनके शरीर पर शस्त्र आदि का प्रहार बिलकुल न हुआ था; और वहां किसीके पदों के चिन्ह भी नहीं देख पड़ते थे। इस लिए धर्म को उनके मरने का कोई भेद नहीं मालूम हुआ। प्यास अधिक लगने के कारण जब वे भी पानी पीने को गये तब उनसे वहां का एक बकपक्षी उपर्युक्त प्रकार ही से बोला। इस पर धर्म ने उत्तर दिया:—" जिस पर तेरी सत्ता है वहां का पानी मैं

आज्ञा बिना नहीं पीता। तू देखने में तो एक मामूली पक्षी ही जान पड़ता है; किन्तु तूने मेरे भाइयों को मारा है; इससे ज्ञान पड़ता है कि तू वास्तव में कोई दूसरा ही है। अब तू मुझे बतला कि तू कौन है और तू क्या पूँछना चाहता है, सो मुझ-से पूँछ ले। मैं तुझे यथामति उत्तर दूंगा"। यह सुन कर उसने वह बगुला का रूप छोड़ कर एक महाभयंकर यक्ष का स्वरूप धारण किया। इसके बाद युधिष्ठिर से व्यवहार, नीति, धर्म तत्वज्ञान इत्यादि विषयों पर अनेक प्रश्न पूछे। धर्म ने उनके यथायोग्य उत्तर दिये। यक्ष उन पर बहुत खुश हुआ। यह भाग भारत में "यक्षप्रश्न" के नाम से प्रसिद्ध है। धर्म के उत्तरों पर प्रसन्न होकर यक्ष ने जब उनसे पूछा कि "तेरे इन भाइयों में से किसे जीवित करूं?" तब धर्म ने नकुल को जीवित करने के लिए प्रार्थना की। इस पर यक्ष बोला, "तुम में से सब में बलवान् भीम है और अत्यन्त पराक्रमी अर्जुन है, सो तू इन अपने सगे भाइयों में से किसी एक को जीवित करने के लिए क्यों नहीं कहता? सौतेले भाई नकुल को सजीव करने के लिए तू हमसे क्यों प्रार्थना कर रहा है?" धर्म ने उत्तर दिया, "मेरे पिता के कुंती और माद्री दो स्त्रियां थीं। उन दोनों को मैं समान ही मानते आया हूँ। कुंती का एक पुत्र मैं जीवित हूं; अब माद्री का भी एक पुत्र होना चाहिए; इसी लिए मैंने नकुल को जीवित करने के लिए तुमसे विनती की है!" धर्म की यह समबुद्धि देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने चारों को जीवित कर दिया। उसने जब पांडवों से यह प्रकट किया कि हम यक्ष नहीं हैं; किन्तु साक्षात् यम-धर्म ही हैं तब उन्होंने अगले तीन वर मांगे। वे बोले, "उस बिचारे ब्राह्मण की मंथा और अरणी मिल जायँ; अज्ञात-वास के समय मुझे कोई पहचान न सके; और लोभ, मोह

तथा क्रोध को जीतने का मुझमें सामर्थ्य आकर मेरा मन सदा दान; तप और सत्य में रमा रहे।" ब्राह्मण की अरणी और मंथा यमधर्म ने ही मृग का रूप धर कर, ले ली थीं; वे उसने धर्मराज को लौटा दिये और दूसरे वर भी दिये। पांडवों से यह कह कर यमधर्म गुप्त हो गये कि अज्ञातवास का वर्ष राजा विराट के नगर में रह कर व्यतीत करो। पांडव भी आनन्दित होकर आश्रम में लौट आये। मनुष्य में चातुर्य और विद्वत्ता चाहे जितनी हो, तथापि संकटों से छूट कर सफलता प्राप्त करने के लिए अटल मनोनिग्रह और दृढ़-न्यायबुद्धि की आवश्यकता है। यही बोध इस यक्ष-कथा पर से लिया जा सकता है—(वनपर्व अ० ३११-३१५)

पांचवाँ प्रकरण।
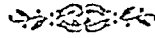
अज्ञातवास।

इस प्रकार अनेक आपत्तियों और संकटों में पांडवों के वनवास के बारह वर्ष खतम हो गये। अब बाकी अज्ञातवास का तेरहवां वर्ष मत्स्य देश में राजा विराट की राजधानी में, व्यतीत करने का निश्चय किया गया। पांडवों ने आपस में इस बात का भी निश्चय कर लिया कि वहां प्रत्येक पांडव किस वेष से जाय और क्या काम करे। उन्होंने अपने रथ और इन्द्रसेन सारथी को द्वारका भेज दिया; साथ में जो आचारी लोग और धौम्य पुरोहित थे उन्हें अग्निसहित द्रुपद के पास तथा नौकर चाकर और द्रौपदी की दासियाँ

आदि को पांचाल देश में भेज दिया। धौम्यगुरु को छोड़ कर अन्य किसी को भी उन्होंने यह नहीं बतलाया कि हम कहां जायँगे। इस प्रकार साथ के सब लोगों को चारो ओर भेज देने पर, द्रौपदी के साथ, पांडव, इस बहाने से, कि हम विराट के शिकारी हैं, पैदल ही प्रवास करने लगे। दशार्ण देश की उत्तर तरफ़ से और पांचाल देश की दक्षिण तरफ से मार्गक्रमण करते हुए, अनेक पर्वत, नदियां और वनों को लांघते हुए वे विराट नगर के पास आ पहुँचे। उन्होंने सोचा कि यदि अपने साथ के शस्त्र, धनुष्बाण आदि, नगर में ले जायँगे तो लोग कदाचित् हमें पहचान लेंगे। इस लिए उन्होंने यह निश्चय किया कि इन्हें नगर के बाहर ही कहीं न कहीं सुरक्षित स्थान में छिपा रखना चाहिए। उन्होंने अपने अपने शस्त्र, कवच, धनुष, बाणों के तरकस, आदि सब एक जगह बाँध कर, नगर के बाहर स्मशान के पास, एक बड़े शमीवृक्ष की झुरमुट में रख दिये; और एक मुर्दा उस वृक्ष की डाल में लटका दिया; जिससे वहां कोई न जाय। गुप्तता रहने के लिए अपनी ओर से जितना प्रबन्ध हो सका उतना पांडवों ने किया और फिर विराट के नगर में गये। पहले ब्राह्मण का वेष धर कर युधिष्ठिर विराट के पास गये और बोले, "मैं युधिष्ठिर का मित्र हूं; मेरा नाम 'कंक' है, द्यूतविद्या मुझे अच्छी मालूम है। इसके सिवा यदि आप मुझे सभासद बनावेंगे तो मैं राज्य-प्रबन्ध के विषय में भी आपको हर एक प्रकार की सलाह दूंगा।" विराट ने उनका सत्कार करके उन्हें अपना मंत्री नियत किया। इसके बाद भीम भी बल्लव (रसोइया) के वेष से विराट के पास गये और बोले, "मैं सूपकर्म (रसोई का काम) में कुशल हूं। इसके सिवा जंगली हाथियों, मतवाले बैलों और मौक़ा आ पड़ने पर मल्लों से भी मैं कुश्ती लड़ूँगा। मुझे आप

अपने यहां रख लीजिए।" भीम का भव्य शरीर और अतुल बल देख कर विराट ने समझा कि यह रसोइया के काम की अपेक्षा युद्ध के ही काम के लिए अधिकयोग्य है। तथापि राजा विराट ने उन्हें अपने महानसा (मुदपाकालय) का मुखिया नियत किया। द्रौपदी, सैरन्ध्री के वेष से, विराट की भार्या सुदेष्णा के पास गई और दासी होकर रहने के लिए उसने अपनी इच्छा उससे प्रकट की। उस समय उसका सौन्दर्य देख कर सुदेष्णा बहुत ही अचम्भित हुई। वह कहने लगी कि यह कोई देवांगना, राक्षसी या गंधर्वस्त्री होगी। द्रौपदी ने उत्तर दिया, "मैं राक्षसी आदि कोई भी नहीं हूं, सैरंध्री हूं। मैं केशकर्म में (कंघी-चोटी आदि के काम में) और भिन्न भिन्न फूलों के माला और हार गूंथने में कुशल हूं। मैं पहले श्रीकृष्ण की स्त्री सत्यभामा और पांडवों की भार्या द्रौपदी के यहां रह चुकी हूं।" सुदेष्णा ने यह जताया कि सैरंध्री यदि हमारे पास रही तो कदाचित् उसे देखकर राजा का मन बिगड़ जायगा। इस पर सैरंध्री ने उत्तर दिया, "पांच गंधर्व मेरे पति हैं। वे सदा गुप्त रीति से मेरी रक्षा करते रहते हैं। इस लिए यदि मेरा कोई अपमान करेगा तो वे तत्काल उसका वध कर डालेंगे। मेरे विषय में तुम्हें डरने का कोई कारण नहीं है।" यह सुन कर विशेष शंका न निकालते हुए रानी ने सैरंध्री को अपने यहां रख लिया। इसके बाद अर्जुन ने स्त्रीवेष से आकर कहा कि, "मैं बृहन्नडा हूं; मुझे गीत, नृत्य, वाद्य आदि कलाएं पूर्णतया अवगत हैं।" राजा ने उसे नगर की स्त्रियों को राजस्त्रियों को और विशेषतः अपनी छोटी कन्या उत्तरा को, संगीत कला सिखाने के लिए रख लिया। नकुल और सहदेव ने भी वहां आकर अपने नाम 'ग्रंथिक' और 'तंतिपाल' बतलाये और कहा कि हमें अश्वविद्या तथा गोविद्या आती है।

तब राजा ने सहदेव को गोपालों का और नकुल को अश्वशाला का मुख्य अधिकारी नियत किया। इस प्रकार विराट के राजमहल में, अपने अपने काम करते हुए, पांडव गुप्त रीति से रहने लगे। उनके रहने के चार महीने बाद उस नगर में ब्रह्मा का एक बड़ा उत्सव हुआ। उस समय वहां बड़े बड़े प्रख्यात मल्ल आये। उनमें से 'जीमूत' नामक एक प्रसिद्ध मल्ल को भीम ने कुश्ती में मार डाला—(विराटपर्व, अ० १–१३)।

लड़कपन से राजविलास और राजसुख भोगने का जिनका स्वभाव था उन पांडवों और द्रौपदी ने, विराट के राजमहल में, इस प्रकार केवल चाकरों के ही काम करते हुए, दस महीने व्यतीत किये। अब अज्ञातवास के सिर्फ दो ही महीने बच रहे। तथापि इन दो महीनों में भी उनके ऊपर एक बड़ा ही संकट गुजरा। रानी सुदेष्णा का कीचक नामक एक भाई था, जो बहुत पराक्रमी और शूर कहलाता था। वही राजा विराट का सेनापति था। उसने एक बार, स्वाभाविक ही, राजमहल में, द्रौपदी को देखा। उसका वह सुन्दर स्वरूप और उसके शरीर की सुगंध देखकर कीचक बिलकुल बावला सा हो गया; और निर्लज्जता के साथ वह उससे बोला, "तू इतनी सुन्दर होकर भी यहां दासी का काम करती है, यह ठीक नहीं। मैं शूर और बलवान हूं। विराट तो केवल एक नामधारी राजा है; इस मत्स्य देश पर वास्तविक सत्ता तो मेरी ही है। तू मेरी भार्या बन कर, मेरे साथ ऐश्वर्य और सुख का भोग कर!" इस पर द्रौपदी ने कहा, "मैं परस्त्री हूं; मुझ से ऐसा मत कहो। मेरे पांच गंधर्व पति गुप्त रीति से मेरी रक्षा करते हैं। तुम यदि मेरे साथ ऐसी बातें या और कोई अशिष्ट बर्ताव करोगे तो वे निस्सन्देह तुम्हारा वध कर डालेंगे।" तथापि उसने उसका पीछा नहीं छोड़ा। और उसे प्राप्त करने के लिए

कीचक अपनी बहन सुदेष्णा से रोज कटकट मचाने लगा। अन्त में सुदेष्णा ने कबूल किया कि मद्य ले आने के बहाने से मैं तुम्हारे घर द्रौपदी को भेजूंगी। कुछ दिन बाद उसने द्रौपदी से कहा कि कीचक के घर से मद्य ले आ। इस पर वह सुदेष्णा से यह विनती करने लगी कि, "कीचक कामांध हो गया है; मैं यदि वहां जाऊंगी तो कदाचित् वह मुझ पर बलात्कार भी करेगा। इस लिए कृपा करके मुझे वहां मत भेजिए। अपनी दूसरी दासियों में से चाहे जिसे भेज दीजिए।" परन्तु यह कह कर कि, "वह तेरे साथ अयोग्य बर्ताव न करेगा; तू मद्य लेकर तुरंत ही लौट आ," सुदेष्णा ने उसीसे जाने के लिए आग्रह किया। तब लाचार होकर वह कीचक के घर जाने के लिए तैयार हुई। अपने पातिव्रत्य की रक्षा करने के लिए वह भक्तिपूर्वक सूर्य की प्रार्थना करके जाने लगी। तब, उसकी रक्षा करने के लिए सूर्य ने एक राक्षस भेजा। वह उसके साथ गुप्त रूप से फिरने लगा। जब कीचक ने देखा कि द्रौपदी हमारे द्वार के पास आ गई तब वह बड़े आनन्द से उठ कर उसका स्वागत करने लगा। परन्तु उसने उस तरफ ध्यान नहीं दिया और अपनी स्वामिनी का सन्देशा बतला कर मद्य देने के लिए कहा। तब उसने यह कह कर उसका बायाँ हाथ पकड़ लिया कि, "दूसरी दासी मद्य ले जायगी; तू इधर आ और मेरे वश होकर इस राज्य की तथा मेरी स्वामिनी बन।" उस समय बड़े आवेश और त्वेष से द्रौपदी ने झटका दिया; उसके साथ ही कीचक धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसके बाद द्रौपदी दौड़ते दौड़ते राजसभा की ओर जाने लगी; और कीचक भी उसके पीछे पीछे दौड़ते गया। भरी सभा में कीचक ने उसके बाल पकड़ कर उसे नीचे गिरा दिया और उस चांडाल ने उसके लात मारी। उस समय द्रौपदी के साथ

जो राक्षस गुप्त था उसने प्रहार करके कीचक को धरती पर मूर्छित कर दिया। भीमसेन ने जब देखा कि कीचक ने भरी सभा में हमारी पत्नी के इस प्रकार लात मारी तब वे उसका वध करने के लिए उठे; और इस इच्छा से, कि कोई न कोई शस्त्र मिल जाय, वे एक वृक्ष की ओर ताकने लगे। तब धर्म-राज को डर लगा कि यदि कहीं भीम वृक्ष उखाड़ कर अब कीचक का वध कर डालेगा तो हम पहचान लिये जायँगे। इस लिए उन्होंने भीम से कहा, " वल्लव, तू इस वृक्ष की ओर क्या देखता है? तुझे यदि रसोई के लिए सर्पण की आव-श्यकता हो तो इस वृक्ष को न तोड़ कर, बाहर के दूसरे वृक्ष तोड़।" इस प्रकार बड़े भाई का इशारा मिलते ही, बड़े कष्ट से अपना क्रोध रोक कर, भीमसेन वहां से चले गये। द्रौपदी ने जब देखा कि, राजा विराट और दूसरे सभासदों के सामने कीचक ने हमारे लात मारी; तथापि विराट उसे कुछ भी शासन नहीं करता, तब वह मानी स्त्री भरी सभा में विराट की भी निन्दा करने लगी। उसकी फिर्याद की सुनाई के लिए तो किसीने सलाह दी नहीं; किन्तु उलटे, सब सभा-सद उसका रूप देख, आश्चर्यचकित होकर, " यह जिसकी स्त्री होगी वह बड़ा ही भाग्यवान होगा, " इत्यादि प्रकार की वाहियात बातें करने लगे। कीचक के समान पराक्रमी परन्तु दुष्ट पुरुष के हाथ की कठपुतलियां बना हुआ राजा अथवा उसके मंत्री अन्याय और जुल्म की सुनाई कैसे कर सकते? धर्मराज को वह भाषण नहीं रुचा जो कि, सभासद लोग उसकी पत्नी के सौन्दर्य को देख कर कह रहे थे। वह द्रौपदी को सम्बो-धन करके बोला, " सैरंध्री, तू अब यहां मत खड़ी हो। चुप-के सुदेष्णा के महल में चली जा। यह ध्यान में रख कि अपने

पति के लिए वीरपत्नी और पतिव्रता स्त्रियां संकट सह-ने के लिए तैयार रहती हैं। जान पड़ता है कि, तेरे गन्धर्व पति इस समय जो तेरी रक्षा करने के लिए नहीं आये, इसका कारण यह होगा कि, वे कदाचित् समझते होंगे कि क्रोध दिखा कर बदला लेने का यह समय नहीं है। जिसने तेरे लात मारी है उसका पारिपत्य, योग्य समय पर, तेरे पति अवश्य करेंगे। अब तू यहां क्षण भर भी मत रह।" इस पर द्रौपदी ने कहा, "वे सब आवश्यकता से अधिक दयालु हैं, और उन में से बड़ा पति तो अत्यन्त द्यूतासक्त है; इसी कारण मुझे और उसको भी यह अपमान सहना पड़ता है!" उस समय इतना ही कह कर द्रौपदी वहां से चलती हुई।

द्रौपदी ने समझ लिया कि दुष्ट कीचक जब तक जीता है तब तक वह हमें बराबर सताता रहेगा। अब वह यह सोचने लगी कि इस दुष्ट का वध करने के लिए कौन समर्थ है। उसने जान लिया कि भीमसेन को छोड़ कर इस संकट से हमारी और कोई रक्षा नहीं कर सकता। इस लिए, उसने भीम से अपना यह दुःख प्रकट करने का निश्चय किया। रात के समय, जब चारों ओर सुनसान हो गया तब, वह रसोई घर में, जहां भीमसेन खुर्राटे मार कर सो रहे थे, आई और दुःखातिरेक से अपने को भूल कर उसने यह कहते हुए भीम को जगाया कि "अरे उठो, जीते हो या मर गये?" भीम के उठने पर उसने अपना मनोगत उनसे बतलाया और कहने लगी कि "नीच कीचक मेरे पातिव्रत्य में बट्टा लगाना चाहता है; कल यदि वह जीता बना रहा तो मैं अपने प्राण तज दूंगी। मैं सार्व-भौम राजा की पटरानी हूं। जितना दुःख मुझे इस समय हो रहा है, उतना उस समय भी न था, जब मैं वन में थी। अब यहां सुदेष्णा की नौकरी करते करते मेरी जो दशा हो

रखी है उसे देख लो।" इतना कह कर, चन्दन घिसते घिसते जो छट्टे उसके कोमल हाथों में पड़ गये थे वे उसने भीम को दिखलाये। कौरवों का कपट, सभा में द्रौपदी का सताया जाना, वन के संकट, विराट के यहां की दीन दशा और कीचक की मारी हुई लात आदि सब बातें उन दोनों के सामने आ गईं। इस कारण उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ और दोनों, एक दूसरे को आलिंगन देकर, बहुत देर तक आँसू बहाते हुए बैठे रहे। इसके बाद दोनों की सलाह से यह निश्चय हुआ कि कीचक जब फिर उससे बात चीत करने लगे तब वह बाहर से यह दिखलावे कि मैं राजी हूं और फिर रात को अंधेरे में कीचक से नृत्यशाला में आने के लिए कहे। नृत्यशाला में दिन को राजकन्याएं नृत्य सीखती रहती हैं और रात को वह बिलकुल खाली ही रहती है। निश्चय हुआ कि उस जगह भीमसेन पहले ही से जाकर छिप कर बैठें और कीचक के आते ही वे उसकी खबर लें। दूसरे दिन सवेरे ही कीचक द्रौपदी के पास आकर बोला, "तूने यह देख ही लिया है कि भरी सभा में मैंने तेरे लात मारी; तथापि तेरी रक्षा करने के लिए कोई भी नहीं आया और विराट ने भी मेरा पारिपत्य नहीं किया। विराट तो नाम का राजा है। मत्स्यदेश का वास्तविक राजा मैं ही हूं। मुझसे कोई भी कभी तेरी रक्षा न करेगा। तू चुपके से मेरे वश हो।" यह सुन कर, रात में निश्चित हुए विचार के अनुसार, द्रौपदी उससे बोली, "मैं राजी हूं; परन्तु यह बात तुम्हारे भाइयों या मित्रों को बिलकुल ही न मालूम होनी चाहिए। मुझे लोकापवाद का डर है। यह बात गुप्त रखना यदि तुम स्वीकार करते हो तो उस नृत्यशाला में आज रात को, अँधेरा छा जाने पर, तुम आओ। वहां तुम्हारे मनोरथ पूर्ण होंगे।" यह

सुन कर कीचक को अति आनन्द हुआ। उस दिन वह यही राह देखता रहा कि कब दिन अस्त होता है और कब रात आती है। चारों ओर अँधेरा छा जाने पर भीमसेन द्रौपदीसहित उस नृत्यशाला में जा बैठे। संकेतानुसार कीचक भी वहां शीघ्र ही आगया। और अंधेरे में भीमसेन के पास जाकर, द्रौपदी को सम्बोधन करके, प्रेम की बातें करने लगा। भीम ने, एकदम उछल कर, उसके बाल पकड़ लिये और उसे खींचा। उस समय उस प्रशस्त नृत्यशाला में, बहुत देर तक, अंधेरे में उन दोनों वीरों का बाहुयुद्ध हुआ। अन्त में भीम ने उसे गिरा करके अधमरा कर दिया। इसके बाद वहीं थोड़ी सी आग जला कर द्रौपदी को उसकी दशा दिखलाई और फिर भीम ने कीचक के लात मार कर उस साध्वी का पूरा बदला ले लिया। इसके बाद उसका सिर, हाथ और पैर मरोड़ करके उसके पेट में घुसेड़ दिये और इस प्रकार उसके शरीर की एक मांस की गठड़ी बना कर वहीं फेंक दी! और द्रौपदी से अपने पीछे ही पीछे वहां से शीघ्र चले आने के लिए कह कर भीमसेन बाहर निकल आये। द्रौपदी बाहर निकल कर जाते समय नृत्यशाला पर पहरा देनेवाले सिपाहियों को जगा कर कहने लगी, "मुझ पर बलात्कार करनेवाले कीचक को मेरे गंधर्व पतियों ने मार डाला है, सो देख लो।" वे भीतर दिया लेकर ज्योंही देखते हैं त्योंही उन्हें कीचक का छिन्नविच्छिन्न और गठड़ी बना हुआ शरीर देख पड़ा। यह हाल उन्होंने विराट से जाकर बतलाया। कीचक के भाईबन्द भी वहां आये। पास ही खंभे में हाथ लपेटे हुए वहां द्रौपदी भी खड़ी हुई उन्हें देख पड़ी। तब वे सब आपस में कहने लगे, "इसी स्त्री के कारण कीचक का वध हुआ; इस लिए आओ इसीको पहले मार डालें, अथवा जो कहते हैं कि मरे

ए। मनुष्य की प्रिय बात उसके मरने के बाद भी करना चाहिए, सो इसको भी कीचक के साथ ही, आओ जला डालें।" बाद को उन्होंने इस अमानुषी कार्य के लिए विराट की सम्मति भी प्राप्त कर ली! वे उसे कीचक के साथ बाँध कर स्मशान में ले जाने लगे। तब उसने बराबर यह आक्रोश मचाया कि, "ये दुष्ट कीचक के भाई मुझे स्मशान की ओर लिए जाते हैं, मेरे गंधर्व पतियों को मेरी रक्षा करनी चाहिए।" द्रौपदी का यह विलाप सुन कर भीम ने, इस लिए अपना वेष बदल डाला कि, जिससे किसीको मालूम न हो और शहर का कोट, गुप्त रीति से, चढ़ कर वे बाहर निकल गये, और स्मशान के पास का एक वृक्ष उखाड़ कर और कीचक के भाइयों पर धावा करके उन्हें उसी वृक्ष से भोरना शुरू किया। उन्होंने समझा कि हाथ में वृक्ष लेकर यह द्रौपदी का गन्धर्व आया। इस लिए द्रौपदी को वहीं छोड़ कर वे वैसे ही भगे; परन्तु भीम ने उन सब को घेर लिया और वृक्षों की मार से उन सब को मार डाला। इस प्रकार कीचक के एक सौ पांच भाईबन्दों को यमसदन भेज कर भीमसेन दूसरी ही राह से नगर में आये और किसीको न मालूम होते हुए वे सुदपाकालय में जाकर सो रहे। द्रौपदी भी दूसरे मार्ग से शहर में आ गई। विराट ने जब देखा कि हमारा शूर सेनापति सब भाइयों-सहित सैरंध्री के कारण मारा गया तब वह मन में बहुत डरा; उसने सुदेष्णा के द्वारा द्रौपदी से यह प्रकट किया कि "तेरे कारण हम सब का नाश होगा; इस लिए तू मेरे राजमहल में मत रह; बहुत जल्द चली जा।" तब उसने यह विनती की कि, "राजा मुझे सिर्फ तेरह दिन और राजमहल में रहने दे, इसके बाद मेरे पति मुझे ले जायँगे; और वे इस उपकार का बदला दिये बिना कभी न रहेंगे।" इस प्रकार और कुछ दिन

रहने के लिए उसने सुदेष्णा से आज्ञा प्राप्त की—(विराटपर्व, अ० १४-२४)।

जब से पांडवों का अज्ञातवास प्रारम्भ हुआ तब से दुर्योधन ने अनेक दूत चारों ओर भेजे, जिससे उनका पता लग जाय और बारह वर्ष वनवास फिर करना पड़े। दूतों ने सब देशों में पांडवों का बहुत खोज किया; परन्तु किसीको भी उनका पता नहीं चला। हां, उन्होंने दुर्योधन को यह खबर जरूर दी कि राजा विराट के बलवान् और शूर सेनापति कीचक और उसके १०५ भाईबन्दों को गंधर्वों ने मार डाला। इस कीचक ने त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा को युद्ध में अनेक बार हराया था; इस लिए सुशर्मा ने दुर्योधन को यह सलाह दी कि, अब कीचक नहीं रहा; इस लिए त्रिगर्त और कौरव एकत्र होकर मत्स्य देश पर चढ़ाई करें और वह प्रांत बांट लें। यह सलाह दुर्योधन को पसन्द पड़ी और निश्चय हुआ कि, मत्स्य देश पर दक्षिण ओर से सुशर्मा और उत्तर ओर से कौरव एकदम चढ़ाई करें। इसके बाद सुशर्मा ने दक्षिण ओर से चढ़ाई करके विराट की हजारों गौएं बलात्कार से हरण कर लीं और उन्हें लेकर वह लौटने लगा। यह खबर ज्योंही विराट को मालूम हुई त्योंही उसने भी युद्ध की तैयारी की और अर्जुन को छोड़ कर, अन्य पांडवों को साथ लेकर, उसने त्रिगर्त-सेना पर धावा किया। तीसरे पहर दोनों सेनाओं का मुकाबिला हुआ और दोनों ओर से तुमुल युद्ध शुरू हुआ। रात के कारण जब अँधेरा हो गया तब कुछ देर युद्ध बन्द रहा; पर आधी रात के करीब चन्द्रोदय होते ही फिर युद्ध का प्रारम्भ हुआ। सुशर्मा ने विराट का सामना करके, बड़े पराक्रम से, युद्ध किया। अन्त में उसने विराट का रथ तोड़ डाला और उसे पकड़ कर अपने रथ पर बाँध लिया। इसके बाद उसे लेकर वह चलता

हुआ। मत्स्यसेना ने जब देखा कि हमारा राजा शत्रु के हाथ में पड़ गया तब वह भगने लगी। इतने में युधिष्ठिर की आज्ञा से भीम, नकुल और सहदेव ने त्रिगर्तराज सुशर्मा का पीछा किया। भीम ने अपनी भयानक गदा से सारी सेना का विध्वंस कर डाला। सुशर्मा के रथ के पास जाकर और उसके केश पकड़ कर उन्होंने उसे नीचे खींच लिया और उसे बाँध कर धर्मराज के पास ले आये। धर्मराज ने अपने सदा के स्वभावानुसार, इतना ही कह कर उसे छोड़ दिया कि, "तू अदास है; अब कभी ऐसा मत करना।" राजा विराट ने जब देखा कि आज हमें प्रत्यक्ष मृत्यु के मुख से पांडवों ने छुड़ा लिया तब उसे बहुत आनन्द हुआ। यह कह कर कि, "आज मेरा राज्य और मेरे प्राण तुम्हीं ने बचाये; अतएव राज्य के सच्चे मालिक तुम्हीं हो," विराट ने अमूल्य वस्त्राभूषण देकर कृतज्ञतापूर्वक पांडवों का सत्कार किया। इसके बाद नगर में डौंड़ी पीट कर नागरिकों को अपने विजय का समाचार बतलाने के लिए राजा ने आगे से दूत भेज दिये—(विराटपर्व, अ० २५–३४)

सुशर्मा जिस दिन अपनी राजधानी से इस युद्ध के लिए बाहर निकला था उसके दूसरे ही दिन कौरव-सेना भी हस्तिनापुर से चली थी। जिस समय राजा विराट इधर त्रिगर्तों से युद्ध करने में फँसा था उसी समय कौरव लोग नगर के उत्तर ओर से आये और वहां की पशुशाला से विराट की साठ हजार गौएं हरण कर लीं। गोपाध्यक्ष ने नगर में आकर राजमहल में यह समाचार बतलाया। राजपुत्र उत्तर उस समय अंतःपुर में था; वहां उसे यह ख़बर बतलाई गई। तब वह बोला, "मैं अभी जाकर कौरवों को जीतता हूं और अपनी गौएं लिए आता हूं। परन्तु मेरा रथ हांकनेवाला कोई कुशल सारथी यहां नहीं है। कोई सारथी तैयार करो; फिर सब

कौरवों की तो कोई बात ही नहीं है; चाहे प्रत्यक्ष अर्जुन क्यों न हो; मैं उसको भी पराजित करके अपना गोधन लिये आता हूं।" इस प्रकार स्त्रियों में बैठ कर उत्तर बड़बड़ कर रहा था कि, इतने में द्रौपदी ने सूचित किया कि, "बृहन्नला को सारथ्य-कर्म अच्छा आता है; पहले वह अर्जुन का सारथी रह चुका है। वह इस मौके पर कदाचित् तुम्हारा सारथी हो जायगा।" उत्तर ने समझा कि बृहन्नला के समान क्लीव, जो स्त्रियों को नाचना-गाना सिखाता रहता है, सारथ्यकर्म क्या करेगा। उसने अपना यह मत वहां प्रकट भी कर दिया। तथापि उसने अपनी बहन उत्तरा को उसे बुला लाने के लिए भेजा। उसके आने पर राजपुत्र ने, उससे बुलाने का कारण बतलाया। अर्जुन ने पहले तो बहुत बहाने आदि किये; परन्तु अन्त में उत्तर का सारथी होना कबूल किया। बाद को शरीर में कवच आदि पहन कर और शस्त्रास्त्र लेकर दोनों रथ में बैठे। इतने में उत्तरा अर्जुन से बोली, "कौरवों को जीत कर जब लौटना तब उनके उत्तम उत्तम रंगबिरंग वस्त्र छीन लाना, गुड़ियों के लिए उनकी मुझे जरूरत है!" अर्जुन ने उसे यह खूबीदार उत्तर दिया कि, "यदि उत्तर कौरवों का पराभव करेगा तो मैं वस्त्र ले आऊंगा।" इतना कह कर उन्होंने रथ आगे बढ़ाया! जब नगर के बाहर बहुत दूर रथ आ गया तब कौरव-सेना के ऊंचे ऊंचे ध्वज दिखने लगे। अर्जुन ने जब देखा कि, जिन कौरवों ने हमें और द्रौपदी को क्रूरता से सताया है उन दुष्टों से रण में पहली भेड़ लगाने का समय आ गया तब उनकी भुजाएं फड़कने लगीं और उनका शौर्यसागर उमड़ने लगा! परन्तु उत्तर ने जब देखा कि, भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा और दुर्योधन के समान कसे हुए धनुर्धरों से युद्ध करने का मौका अब आगया तब उसका धीरज छूट गया

और वह बिलकुल ही घबड़ा गया! वह इस प्रकार बिनती करके अर्जुन से बोला, "मेरा बाप दक्षिण ओर सब सेना लेकर गया है; मैं छोटा और अकेला हूं, कौरव वीरों से मैं अकेले युद्ध नहीं करना चाहता। मेरा रथ यहां से नगर में ले चल। मेरी गौएं ले जायँ चाहे मेरा राज्य चला जाय। मेरे प्राण बचा, बृहन्नले! मैं तुझे बहुत सा धन-दौलत और सम्पत्ति इनाम में दूंगा।" इस पर अर्जुन ने उत्तर दिया कि, "युद्ध के लिए जब एक बार खड़े हो गये तब फिर लौटना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। स्त्रियों में तूने अपनी शूरता की डींग मारी है, अब यदि तू युद्ध न करके यहां से ऐसा ही लौट जायगा तो वे तुझे हँसेंगी, इसका विचार कर।" यह कह कर अनेक प्रकार से अर्जुन ने उसे धीरज दिलाने का प्रयत्न किया; पर सब व्यर्थ! उत्तर ने जब देखा कि अर्जुन तो रथ नगर की ओर नहीं लौटाता तब वह रथ से कूद कर पैदल ही नगर की ओर भगा! अर्जुन भी तुरन्त रथ से कूद पड़े और उसका पीछा करके उसे सौ कदम के भीतर ही पकड़ लिया। वह फिर अर्जुन से प्रार्थना करने लगा कि, "मैं तुझे मोहरों की राशि, दास, दासी, रथ, हाथी, जो माँगेगा वही, इनाम दूंगा; पर तू मुझे इस समय छोड़ दे!" परन्तु अर्जुन ने उसकी बातों की ओर बिलकुल ध्यान न देकर उसे उठा कर रथ में रख दिया और कहा कि "तुझे युद्ध न करना हो तो मेरा सारथ्य कर; मैं युद्ध करूंगा; मत डर।" इतना कह कर अर्जुन ने, नगर के बाहर स्मशान की ओर रथ घुमाया और शमीवृक्ष के पास आकर वे उत्तर से बोले, "तेरे रथ में जो धनुष और शस्त्र हैं वे इतने मजबूत नहीं हैं जो मेरा सामर्थ्य सहन कर सकें। इस शमीवृक्ष पर पांडवों के शस्त्र और धनुष रखे हैं; उन्हें ऊपर चढ़ कर निकाल ले। मैं उन्हीं

से युद्ध करूंगा।" उत्तर ने धनुष और शस्त्र नीचे उतारे और वृहन्नला से पूछा कि, "पांडव कहां हैं?" इस पर अर्जुन ने अपना सच्चा परिचय दिया और यह भी बतलाया कि युधिष्ठिर, भीम, आदि किस किस वेष से कहां हैं। इसके बाद अर्जुन ने अपना स्त्रीवेष त्याग कर शुभ्र वस्त्रों से युक्त पुरुषवेष धारण किया। और शुचिर्भूत होकर तथा पूर्व दिशा की ओर मुख करके उन्होंने अपने सब दिव्य अस्त्रों का स्मरण किया; तथा ३२॥ साढ़े बत्तीस वर्ष हाथ में चलाया हुआ, परन्तु एक वर्ष स्वस्थ पड़ा हुआ, अपना गांडीव धनुष हाथ में लेकर सज्ज किया; तथा बड़े दर्प और उत्साह से, उसकी टंकार से, दशो दिशाओं को पूरित कर दिया। भक्तिपूर्वक शमीवृक्ष को प्रदक्षिणा करके अर्जुन रथ में बैठे। उत्तर ने ज्योंही रथ चलाया त्योंही अर्जुन ने अपना देवदत्त शंख बड़े ज़ोर से फूँका। शंख का प्रचण्ड घोष, धनुष की टंकार और रथ की गम्भीर ध्वनि सुन कर कौरवों को विश्वास हो गया कि, अर्जुन ही आ रहा है। अब कौरवों में यह चर्चा शुरू हुई कि, अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष पूर्ण होने के पहले ही अर्जुन प्रकट हो गया है, अतएव पांडवों को बारह वर्ष वनवास फिर करना चाहिए। भीष्म, द्रोण, कृप, अश्वत्थामा, इत्यादि ने पांडवों का पक्ष लिया; दुःशासन, कर्ण, इत्यादि ने दुर्योधन की तरफ़दारी की। वादविवाद के जोर में भीष्म, द्रोण, कृप, आदि वृद्ध और पूज्य वीरों को कर्ण बहुत ही हीन कह कर बोलने लगा और जान पड़ने लगा कि यह झगड़ा बढ़ा जाता है। परन्तु द्रोण आदि समझदार पुरुषों ने ही हार मान कर उस झगड़े को मिटाया। भीष्म ने सब को यह विश्वास करा दिया कि पांडवों के अज्ञातवास का तेरहवाँ वर्ष पूरा हो गया है। इसके बाद भीष्म ने यह सलाह दी कि, एक-चतुर्थांश सेना लेकर दुर्योधन हस्तिनापुर चला जाय;

उन्होंने बड़े हर्ष और उत्साह से धनुष की टंकार से दशों दिशाओं को [illegible] किया।   (पृ० १६२)

और एक-चतुर्थांश सेना गौएं लेकर चलने लगे; तथा बची हुई आधी सेना के साथ भीष्म आदि योद्धा अर्जुन से युद्ध करें। एक-चतुर्थांश सेना लेकर ज्योंही दुर्योधन चला त्योंही अर्जुन का रथ कौरवों की सेना के सामने आ पहुँचा। कौरव-सेना में जब दुर्योधन का ध्वज न दिखने लगा तब अर्जुन ने ताड़ लिया कि वह अधमाधम रण से भगा जाता होगा। अर्जुन ने इस सब सेना को कटा कर दुर्योधन के पीछे पीछे अपना रथ वेग से बढ़ाया। उन्हें प्रतिबन्ध करने के लिए कौरव योद्धा सेनासहित अर्जुन और दुर्योधन के बीच में आने लगे। इसी गड़बड़ में विराट की गौएं छूट कर भग गईं। अर्जुन से कौरवसेना का सामना हुआ, और घनघोर युद्ध शुरू हुआ। पहिले ही सपाटे में अर्जुन ने कर्ण के भाई शत्रुंतप को मार डाला। इसके बाद कर्ण का रथ अर्जुन के रथ से जा भिड़ा। उभय वीरों के उस युद्ध में कर्ण घायल हुआ; इस कारण उसका सारथी वह रथ दूर भगा ले गया। इसके बाद कृपाचार्य से अर्जुन का युद्ध हुआ। उसमें जब कृपाचार्य नहीं टिक सके तब वे एक तरफ निकल गये। इसके बाद अर्जुन और द्रोणाचार्य-इन गुरुशिष्यों-का युद्ध शुरू हुआ। अपने वृद्ध गुरु को पहले पूज्यभावपूर्वक प्रणाम करके, फिर अर्जुन ने बाण छोड़ना प्रारम्भ किया। इन पराक्रमी गुरुशिष्यों का युद्ध होने पर अन्त में द्रोणाचार्य का बचाव करने के लिए, उनके पुत्र अश्वत्थामा को बीच में पड़ कर, अर्जुन से युद्ध करना पड़ा। इसके बाद अश्वत्थामा, कर्ण, दुःशासन, इत्यादि वीरों का पराभव करने पर अर्जुन और भीष्म का युद्ध छिड़ गया। दोनों ने अपने अपने पराक्रम की पराकाष्ठा कर दिखलाई। अन्त में अर्जुन के बाणों से जब भीष्म रथ में बेहोश होकर गिर पड़े तब उनके सारथी ने रथ एक तरफ हटा लिया। इसके बाद दुर्योधन और विकर्ण से भी अर्जुन का

युद्ध हुआ। जब कौरवों ने देखा कि अर्जुन किसी भी एक वीर से नहीं मानता तब उन्होंने एकदम उस पर अपने अपने रथ दौड़ाये। तब अर्जुन ने संमोहनास्त्र छोड़ कर सब योद्धाओं को एकाएक उनके रथों ही में इस प्रकार मोहित कर दिया जैसे सब वेहोश हो गये हों! इसके बाद अर्जुन ने उत्तर को रथ के नीचे उतार दिया और सब के उत्तरीयवस्त्र (उपरने) उतार लाने के लिए कहा। वे वस्त्र लेकर जब उत्तर रथ पर आ बैठा तब अर्जुन ने एक बाण छोड़ कर दुर्योधन का राजमुकुट तोड़ कर उड़ा दिया; और भावी राज्यनाश का "श्रीगणेशायनमः" किया! इस प्रकार विराट की गौएं छुड़ा कर और कौरवों को अपने पराक्रम तथा अस्त्रविद्या का थोड़ा सा तेज दिखला कर अर्जुन लौट चले। यह सब हाल गुप्त रखने के लिए उत्तर को समझा कर अर्जुन अपना रथ फिर स्मशान के पास ले आये। और अपना धनुष तथा अपने शस्त्र शमी के झुरमुट में रख कर उन्होंने फिर स्त्रीवेष धारण कर लिया। विजय प्राप्त होने की खबर नगर और राजमहल में बतलाने के लिए पहले एक दूत को आगे भेज कर उत्तर तथा बृहन्नला नगर की ओर चले—(विराटपर्व, अ० ३५-६७)

इधर पांडवों के ही शौर्य से विजय प्राप्त करके राजा विराट पहले ही नगर को लौट आया था। जब उसे मालूम हुआ कि बृहन्नला को सारथी बना कर उत्तर अकेले ही कौरवों से युद्ध करने गया है तब वह बहुत भयभीत हुआ। राजा ने यह कह कर, कि जिसका सारथी षंढ है वह युद्ध से जीवित कैसे लौटेगा, लड़ाई से लौटी हुई सेना को, उत्तर की मदद को जाने के लिए आज्ञा दी। परन्तु धर्मराज ने विराट से कहा, "जिसका सारथी बृहन्नला है वह जीवित तो लौटे ही गा, किन्तु वह विजयी भी होगा।" इतने ही में दूत ने आ-कर कहा कि, कौरवों को पराभूत करके, विजयी होकर,

और गौएं लेकर उत्तर लौटा आता है। पुत्र का यह पराक्रम सुन कर विराट को अत्यानन्द हुआ। उसने सारे नगर को सजा कर सेना और उत्तरा आदि कुमारिकाएं उसकी अगवानी के लिए भेजीं। विराट तो इस आनन्द में मग्न था; परन्तु धर्मराज इधर सारथी बृहन्नला की ही प्रशंसा के पुल बांध रहे थे। कंक के साथ द्यूत खेलते हुए विराट ने फिर अपने पुत्र के शौर्य की डींग मारी; तब धर्मराज ने उत्तर दिया, "जिस का सारथी बृहन्नला है उसे विजयी होना ही चाहिए।" यह सुन कर विराट बहुत ही क्रुद्ध हुआ। वह बोला, "मेरे उत्तर और बृहन्नला को क्या तू बराबर ही समझता है? उत्तर की तारीफ़ करने के बदले तू षंढ की प्रशंसा से आकाश पाताल एक कर रहा है, यह क्या बात है? जान पड़ता है, तुझे यह बिलकुल ही नहीं मालूम है कि, क्या बोलना चाहिए और क्या न बोलना चाहिए। यदि तू अपनी जान बचाना चाहता हो तो फिर ऐसा कभी मत कहना!" यह बात भूल कर, कि त्रिगर्त के हाथ से पांडवों ने ही हमें छुड़ाया, कृतघ्न विराट ने यह बात यहां तक बढ़ा दी; तथापि धर्मराज ने यह प्रत्युत्तर देने में भी आगा पीछा नहीं सोचा कि, द्रोण, भीष्म, कर्ण, इत्यादि महा पराक्रमी वीरों के सामने युद्ध में टिकनेवाला बृहन्नला के सिवाय और कोई दूसरा जगत् में नहीं है। यह सुन कर विराट का क्रोध नहीं रुका; और उसने धर्मराज के मुख पर पांसा मार दिया। तब उनकी नाक से रक्त बहने लगा, धर्मराज ने उसे अँजुली में ले लिया, ताकि वह पृथ्वी पर न गिरे। द्रौपदी पास ही थी, उसने एक बर्तन लेकर उसमें रक्त की धार ले ली। इतने ही में द्वारपाल ने आकर कहा कि, बृहन्नला-सहित उत्तर आ गया। राजा ने आज्ञा दी कि दोनों को भीतर ले आओ। परन्तु धर्मराज ने द्वारपाल से चुपके ही सूचित किया कि, "विराट ने मेरे

शरीर से रक्त निकाला है। बृहन्नला की प्रतिज्ञा है कि, युद्ध को छोड़ कर अन्य समय में जो मेरे घाव करेगा अथवा मेरे शरीर से रक्त निकालेगा उसका तत्काल वध करूंगा; इस लिए उसे इस समय भीतर मत लाओ।" धर्मराज की इस सूचना के अनुसार द्वारपाल ने अकेले उत्तर ही को भीतर भेजा। उत्तर ने कंक की वह दशा देख कर पूछा कि, यह किसने किया? विराट ने सब हाल बतलाया। तब अपने पिता को थोड़ा सा दोष देकर उत्तर बोला, "कौरवों का जो पराभव हुआ उसके लिए तुम हमारा अभिनन्दन मत करो। उन्हें मैंने नहीं जीता; और गौएं भी मैंने नहीं छुड़ाई। मैं तो भय के कारण रण से भगा जाता था; इतने ही में एक देवपुत्र ने आकर मुझे धैर्य दिया और उसीने कौरवों को जीत कर गौएं मुक्त कीं; तथा हमें विजयी किया। इस विजय का सारा श्रेय उसीको है। यह कार्य करके वह अन्तर्धान हो गया। परन्तु वह कल या परसों फिर प्रकट होगा।" इस प्रकार विराट से कह कर उत्तर ने वह समय, किसी न किसी तरह, टाल दिया। दो दिन इसी विजयोत्सव में निकल गये। तीसरे दिन सुबह पांचों पांडव, स्नान आदि करके, और शुभ्र वस्त्र धारण करके, सब से पहले सभा में गये और विराट के सिंहासन ही पर जा डँटे! यह उद्धटपन देख कर विराट को क्रोध आया। उसने धर्मराज से पूछा, "मैंने तुझे सभासद बनाया है; तू मेरे सिंहासन पर जाकर क्यों बैठा है?" अर्जुन ने धर्मराज की स्तुति करके विराट से पूछा, "युधिष्ठिर के समान धर्मात्मा सार्वभौम राजा सिंहासन पर बैठने के योग्य क्यों नहीं है!" उस समय विराट का सब भ्रम दूर हो गया! उसे भी यह मालूम हो गया कि बल्लव, बृहन्नला, आदि लोग वास्तव में कौन हैं। तब अत्यन्त आनन्दित होकर विराट ने कृतज्ञतापूर्वक अपना राज्य उन्हें देने कहा; और यह भी

इच्छा प्रकट की कि अर्जुन उत्तरा को स्वीकार करे। परन्तु अर्जुन ने समझा कि उत्तरा को हमने नृत्य, गान, आदि सिखलाया है; इस लिए हमारा उसका गुरु-शिष्य का नाता हो गया है; अतएव उन्होंने अभिमन्यु के लिए उत्तरा को, पुत्र-वधू के नाते से, स्वीकार किया। इसके बाद पांडव मत्स्य देश और कुरु देश की सीमा के पास उपप्लव्य नामक एक नगर में जा बसे। अपने आप्तों, इष्ट-मित्रों और अपने अनुकूल राजाओं को धर्मराज ने वहां बुलवाया। द्रुपद, अभिमन्यु, सुभद्रा, श्रीकृष्ण, द्रौपदी के पांच पुत्र, इत्यादि लोग भी कुछ दिन बाद वहां जमा हुए। इसके बाद अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह हुआ। इस प्रकार इस विवाह के आनन्दोत्सव में बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास के दुःखदायक समय का अन्त हुआ!—(विराटपर्व, अ० ६८–७२)।

छठवाँ प्रकरण

कृष्ण-शिष्टाई।

तराष्ट्र के कहने पर पांडवों ने इन्द्रप्रस्थ नगर में अपना अलग राज्य स्थापित किया था; पर शकुनी ने कपटद्यूत से उसे हरण कर लिया और पांडवों को वनवास तथा अज्ञातवास कराया। द्यूत के समय जो शर्त ठहरी उस के अनुसार पांडवों ने बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष अज्ञातवास पूरा किया। द्यूत के समय दोनों पक्षों ने यह शर्त कबूल की थी कि, वनवास और अज्ञातवास पूर्ण करके लौट आने पर राज्य लौटा दिया जाय। अब पांडवों

के मन में ये दो प्रश्न उठने लगे कि, प्रथम तो शर्त के अनुसार दुर्योधन हमारा राज्य लौटावेगा या नहीं? और यदि न लौटावेगा तो हमें आगे कौन सा मार्ग स्वीकार करना होगा? द्रुपद और पांडवों के अनुकूल अन्य सब राजा, अभिमन्यु के विवाह के लिए, विराट के नगर में एकत्र हुए थे। विवाह के वाद एक दिन सब राजा विराट के सभागृह में जमा हुए। उपर्युक्त प्रश्न निकला। उस समय श्रीकृष्ण बोले, "दुर्योधन ने पांडवों पर छुटपन में ही कौन कौन संकट डाले, सभा में द्रौपदी किस प्रकार सताई गई, पांडवों का सब राज्य कपट से किस प्रकार हरण कर लिया गया और अन्त में उन्हें वन जाकर कौन कौन से संकट और आपत्तियां सहनी पड़ीं, यह सब आप लोगों को मालूम ही है। पराक्रमी पांडव यदि चाहते तो वे इन संकटों से अपना छुटकारा कर लेते और फिर सारी पृथ्वी का भी राज्य प्राप्त कर लेते; परन्तु केवल सत्यता के लिए उन्होंने तेरह वर्ष वनवास के दुःख सहे। पांडव स्वर्ग का भी, अन्याय से प्राप्त होनेवाला, राज्य नहीं चाहते। धर्म के अनुसार जो प्राप्त किया जा सकेगा उतने ही में उनका समाधान है। जान नहीं पड़ता कि, दुर्योधन, पांडवों का राज्य, जो कपट से छीन लिया है वह, उन्हें लौटा देगा या नहीं। इस लिए ऐसी दशा में क्या किया जाय, कौन सी वात दोनों पक्षों के लिए हितकर और धर्म तथा नीति के अनुसार होगी, इसका आप सब लोग-दुर्योधन के बढ़ते हुए राज्यलोभ और धर्मराज की सात्विकता पर ध्यान रख कर-विचार करें। मेरी राय है कि, कौरवों के पास एक दूत भेजा जाय कि, हमारा आधा राज्य हमें लौटा दिया जाय।" इस पर बलराम ने उत्तर दिया:—"युधिष्ठिर यदि आधे राज्य का अपना हक

छोड़ने के लिए तैयार हैं तो दुर्योधन भी बाकी आधे राज्य का अपना स्वामित्व खुशी से छोड़ेगा। तुम्हारा सब राज्य इस समय दुर्योधन के ही हाथ में है; इस लिए उसे इस समय नाखुश करना ठीक नहीं है। उसके पास जो दूत जाय वह द्यूत-विषयक सब दोष युधिष्ठिर ही पर लगावे; और इस प्रकार दुर्योधन आदि को खुश करके इस समय अपना काम निकाल लिया जाय।" बलराम दादा का यह कहना सात्यकी को बिलकुल ही पसन्द नहीं आया। वह बोला, "धर्मराज को द्यूत में कुशल न समझ कर दुष्टों ने उन्हें खेलने के लिए बुलाया और अपने क्षत्रियव्रत का स्मरण करके वे द्यूत के लिए आये, इसमें धर्मराज का कौन सा अपराध है? उन नीच कौरवों की सभा में धर्मराज का दूत जाकर धर्मराज ही की निन्दा करे? इस प्रकार स्वार्थी दुष्ट लोगों को खुश करके अपना राज्य प्राप्त करने की यह युक्ति अत्यन्त निन्दनीय है। इससे तो यही अच्छा है कि एकदम युद्ध शुरू कर दिया जाय। यही पुरुषार्थी क्षत्रियों का परम धर्म है।" इस प्रकार वादविवाद होते समय वृद्ध राजा द्रुपद ने गम्भीरता की सलाह बतलाई; और वह सब को पसन्द भी हुई। वह बोला, "दुर्योधन स्वभाव ही से दुष्ट है, वह शिष्टता से पांडवों का राज्य कभी न लौटावेगा। धृतराष्ट्र पुत्रप्रेम के कारण, भीष्म और द्रोण स्वार्थ के कारण, तथा कर्ण और शकुनी मूर्खता के कारण, दुर्योधन ही के अनुकूल नाचेंगे। कई अंशों में, उनके सामने शिष्टता की बातें करना भैंस के सामने बीन बजाना है। सौम्यता का बर्ताव यदि इस समय उनके साथ किया जायगा तो वे यही समझेंगे कि पांडव निर्बल और डरपोंक हैं। इसके सिवा, दुर्योधन उधर युद्ध की भी तैयारी करता होगा। इस लिए, श्रीकृष्ण ने जैसा कहा है, हमें एक दूत धृतराष्ट्र के पास भेजना चाहिए

और इधर भिन्न भिन्न राजाओं के पास दूत भेज कर उनसे विनती करना चाहिए कि वे हमें युद्ध में सहायता देने के लिए तैयार रहें। राजा लोग समझते हैं कि, जिसका दूत प्रथम आवेगा उसको मदद करना हमारा धर्म है; इस लिए यदि हमें दूत भेजने हैं तो जल्दी करना चाहिए।" राजा द्रुपद की इस सम्मति के अनुसार कार्य करना निश्चित हुआ। श्रीकृष्ण जब द्वारका को चले गये तब राजा द्रुपद ने कौरवों के पास अपना पुरोहित भेजा और युद्ध में मदद देने के लिए पांडवों ने सब देशों के राजाओं के पास दूत भेजे—(उद्योगपर्व, अ० १-६)।

यह बात कौरव-पांडव दोनों चाहते थे कि, आगे जो भयंकर और तुमुल युद्ध होनेवाला है उसमें श्रीकृष्ण की सहायता हमें मिलनी चाहिए। उन्हें युद्ध का निमंत्रण देने के लिए पांडवों की तरफ से अर्जुन और कौरवों की ओर से दुर्योधन द्वारका को गये; और दोनों एक ही दिन वहां पहुँचे। जिस समय दुर्योधन राजमहल में पहुँचा उस समय श्रीकृष्ण सो रहे थे; इस लिए वह उनके सिरहाने की तरफ एक आसन पर बैठ गया। पीछे से अर्जुन पहुँचे; परन्तु वे नम्रतापूर्वक श्रीकृष्ण के पैरों की तरफ बैठ गये। श्रीकृष्ण जब जगे तब पहले उन्होंने अर्जुन को और फिर दुर्योधन को देखा। उन्होंने दोनों का बराबर आगत स्वागत किया। दुर्योधन ने कहा, "युद्ध में आप की सहायता मांगने के लिए मैं पहले आया हूं, मेरी ही ओर आप आवें।" इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "दुर्योधन, तू पहले आया, यह ठीक है; पर मैंने पहले अर्जुन ही को देखा है। इस लिए मैं दोनों ओर मदद दूँगा। एक ओर मेरे दस लाख यादव योद्धा मदद करेंगे; और दूसरी ओर मैं, स्वयं युद्ध न करते हुए, और न शस्त्र ग्रहण करते हुए, अकेले ही, मदद करूंगा। इन दोनों में से, अर्जुन! बतला, तू क्या चाहता है?" यह सुन कर अर्जुन ने कहा कि, अकेले श्रीकृष्ण

श्रीकृष्ण ने जगने पर पहले अर्जुन को और फिर दुर्योधन को देखा।

ही हमें सहायता करें। दुर्योधन ने देखा कि, निःशस्त्र और युद्ध न करनेवाले श्रीकृष्ण की अपेक्षा सशस्त्र दश लक्ष यादव-वीर जो हमें मिल गये यह बहुत अच्छा हुआ। इससे उसे बहुत आनन्द हुआ। इधर बलराम ने निश्चय किया कि, हम किसी पक्ष को भी सहायता न करेंगे। दुर्योधन जब वहाँ से चला गया तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा, "यादवसेना न माँग कर तूने मेरी ही सहायता क्यों चाही?" इस पर अर्जुन ने उत्तर दिया, "अपने शत्रुओं का वध करने के लिए मैं अकेले ही समर्थ हूं, उस काम के लिए तेरी यादवसेना मुझे क्या करना है? परन्तु कृष्ण, जहां तू है वहीं यश और कीर्ति है, यही जान कर मैंने सिर्फ तेरा स्वीकार किया है। मेरी बहुत दिन से इच्छा थी कि, तू मेरा सारथ्य करे; अब वह इच्छा पूर्ण करने का अच्छा समय आ गया है।" अर्जुन की यह इच्छा देख कर श्रीकृष्ण ने आनन्द से उनका सारथ्य करना स्वीकार किया; और कुछ थोड़े से यादववीर साथ ले कर श्रीकृष्ण और अर्जुन युधिष्ठिर के पास आये।

पांडवों का निमंत्रण पाकर मद्र देश का राजा शल्य, अपनी सेना साथ लेकर, उनकी मदद के लिए चला। यह खबर पाते ही दुर्योधन ने उसके सुभीते के लिए मार्ग में जगह जगह उत्तम उत्तम शिविर, बाग, तालाब, कुएं बनवाये; और उसका तथा उसकी सेना का, सब प्रकार का प्रबन्ध रखा। शल्य ने समझा कि हमारा यह सब आदरसत्कार युधिष्ठिर ही की ओर से हो रहा है। इस लिए उसे बड़ा आनन्द हुआ। इस उत्तम प्रबन्ध के लिए जब शल्य ने युधिष्ठिर के सेवकों को

सेना का सेनापतित्व तुम्हें स्वीकार करना चाहिए, यही मुझे इस सेवा के बदले में इनाम दीजिए!" इस प्रकार वचन के पेंच में पड़ कर शल्य को दुर्योधन की प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद युधिष्ठिर के पास आकर शल्य ने यह सब हाल बतलाया। युधिष्ठिर ने कहा, "अच्छा, जाने दो; जो कुछ हुआ सो ठीक ही हुआ। परन्तु अब मेरी सिर्फ एक प्रार्थना आपको माननी चाहिए। वह यह कि, सारथ्यकर्म में तुम्हारी और श्रीकृष्ण की योग्यता बराबर ही है; इस लिए अर्जुन और कर्ण के द्वंद्वयुद्ध के समय, जब तक कर्ण का सारथ्य तुम्हारी तरफ रहे तब तक अर्जुन की तारीफ और कर्ण की निन्दा करके आप उसका तेजोवध (तेजोभंग) करावें और उसका धैर्य डिगा दें।" धर्मराज का यह कथन स्वीकार करके शल्य अपनी सेना-सहित दुर्योधन के पास चला गया—(उद्योगपर्व, अ० ७-१८)।

भरतभूमि के भिन्न भिन्न प्रबल राजाओं को, अपने अपने पक्ष के अनुकूल कर लेने के लिए, दोनों ओर से खूब प्रयत्न होने लगे। दोनों ओर की सेनाएं एकत्र होने लगीं। इधर द्रुपद का पुरोहित हस्तिनापुर आया; और कौरव-सभा में आकर उसने पांडवों का सन्देशा धृतराष्ट्र से बतलाया। वह बोला, "पूर्वपरंपरा देखते हुए पांडु के पीछे, बड़ों का उपार्जित किया हुआ राज्य, पांडवों ही को मिलना चाहिए; पर वह तुमने अन्याय से अपने पास रख लिया। अच्छा, यह बात जाने दो! पांडवों ने अपने पराक्रम से जो राज्य प्राप्त किया वह भी तुमने द्यूत में कपट से हरण कर लिया और उन्हें तेरह वर्ष के लिए वनवास को भेज दिया। इतने पर भी, वे तुम्हारे सब अपराधों को, अपने सब संकटों को, भूल कर तुम से अपने हक का आधा राज्य, शिष्टता के साथ, मांगते हैं। भयंकर प्राणहानि न होते हुए, यदि उनका राज्य उन्हें मिल

जायगा तो अच्छी ही बात है। अन्यथा वे एक प्रकार से युद्ध करने के लिए भी तैयार हैं। शांतिहित और राष्ट्रहित तथा धर्म और नीति को छप्पर पर रख कर यदि दुर्योधन अविचार ही करने लगेगा तो उसे सीधे मार्ग पर लाना तुम्हारा काम है। अतएव इन सब बातों का अच्छी तरह विचार करके तुम उनका राज्य उन्हें लौटा दो।" पुरोहित का यह कथन भीष्म को पसन्द आया। उन्होंने धर्मराज की सात्विकता और अर्जुन की शूरता तथा पराक्रम की प्रशंसा शुरू की। इस पर कर्ण एकदम बीच ही में उद्धटपन से बोल उठा, "धर्मराज द्यूत की शर्त के अनुसार राज्य नहीं माँग रहा है; किन्तु मत्स्य, पांचाल के सैन्यसामर्थ्य के घमंड से माँग रहा है। धर्मराज की इस सेना और इस धमकी से डर कर, आधा क्या, चौथाई राज्य भी उसे न देना चाहिए। पांडव यदि युद्ध ही करेंगे तो उनकी खबर लेने के लिए मैं खूब समर्थ हूं।" इस पर भीष्म ने कर्ण की बड़ी निन्दा की। वे बोलेः—"पांडवों को युद्ध में जीतने के लिए जो कर्ण घमंड कर रहा है वह व्यर्थ है। अकेले अर्जुन ने जब उत्तरगोग्रहण के समय छै वीरों को नीचा दिखाया तब कर्ण का 'सामर्थ्य' कहाँ गया था? इस ब्राह्मण के कथनानुसार यदि हम पांडवों को उनका आधा राज्य न दे देंगे तो हम सब को शीघ्र ही रणांगण की धूल खाते हुए पड़ा रहना होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।" इतने में धृतराष्ट्र ने समझा कि, हमारे ये सब विचार जो पांडवों के दूत के सामने हो रहे हैं, यह ठीक नहीं, इस लिए उसने द्रुपद के पुरोहित को सत्कारपूर्वक विदा

कुशल-प्रश्न पूछो और फिर उनसे यह सन्देशा कहो कि, " युद्ध करना अच्छा नहीं; उससे प्राणहानि बहुत होती है और प्रजा को कष्ट होता है; आज तक धर्म से चल कर अब तुम्हें निष्ठुर न होना चाहिए। हमें उम्मेद है कि, ऐहिक वैभव के लिए तुम युद्ध के समान क्रूर और घोर कृत्य न करोगे ; क्योंकि तुम सब धर्मात्मा हो। इस लिए हन दोनों की मित्रता रहनी चाहिए।" संजय ने पांडवों के पास जाकर धृतराष्ट्र का यह ' कावेबाज, ' ' मुबहम ' और ' उड़ता हुआ ' सन्देशा उनसे बतलाया। संजय के इस सन्देशे से पांडव यह बात बिलकुल नहीं समझ सके कि, धृतराष्ट्र हमारा आधा राज्य अब हमें देगा या नहीं। सिर्फ " युद्ध करना अच्छा नहीं। उससे कौरवकुल का नाश होगा, " इत्यादि, इत्यादि, साधारण बात ही उस सन्देशे में थीं। सन्देशा पाकर युधिष्ठिर ने आवेश के साथ उत्तर दिया, " धृतराष्ट्र को यह न समझना चाहिए कि, हम व्यर्थ युद्ध करके जीवहत्या करने के लिए बहुत उत्सुक हैं। हां, यदि हमें हमारा राज्य न लौट मिलेगा तो, इसमें सन्देह नहीं, हमें युद्ध करना पड़ेगा। हमारा इन्द्र-प्रस्थ का आधा राज्य यदि हमें खुशी से मिल जायगा तो हम सलाह करने के लिए तैयार हैं। " इस पर संजय यह प्रति-पादन करने लगा कि, " राज्य के लिए युद्ध करके सारे कुल और राष्ट्र का नाश करने की अपेक्षा भिक्षा माँग कर उदर-निर्वाह करना ही अच्छा है। " इस पर श्रीकृष्ण ने कहा, " पांडवों का माँगना धर्म और नीति के अनुसार ही है। भिक्षा माँगना या याचना करना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। पराक्रम से राज्य प्राप्त करके और प्रजा का पालन करके यश सम्पादन करना ही क्षत्रियों का पवित्र कर्तव्य है। कौरवों ने अनेक प्रकार से पांडवों को कष्ट दिया है; तिस पर

भी वे बदला लेने का विचार नहीं करते; किन्तु उलटे मित्रता करने की इच्छा रखते हैं; यह इनकी सज्जनता है। परन्तु भिक्षा मांग कर—क्षत्रियों का धर्म छोड़ कर—जो मिलता होगी उसे करने के लिए ये बिलकुल राजी नहीं हैं। मित्रता होने में पांडवों की ओर से कोई विघ्न नहीं है; किन्तु धृतराष्ट्र और उसके दुर्योधनादि पुत्र ही इस मित्रता में विघ्न डालते हैं। ऐसी दशा में, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि, तुम उलटे पांडवों ही को धर्म-नीति का उपदेश कर रहे हो। यह कोई बात नहीं है कि, प्रत्येक युद्ध पापकर्म ही समझा जाय। जो दुष्ट राजा दूसरों के राज्य जुल्म-जबरदस्ती या कपट से छीन लेते हैं उन्हींके शासन के अर्थ युद्ध और शस्त्र-अस्त्र आदि बनाये गये हैं। इस प्रकार का युद्ध पाप नहीं है, पुण्य ही है। जो दूसरों का द्रव्य ले लेता है वह चोर समझा जाता है। कौरवों ने कपटद्यूत से पांडवों का राज्य ले लिया और वनवास के बाद उसे लौटा देना भी स्वीकार किया। अतएव यह पांडवों का आधा राज्य उनके पास बतौर धरोहर के अब तक रहा; अब कौरव उसका अपहार करना चाहते हैं। इस लिए वे तो मामूली चोरों से भी दुष्ट हैं। भरी सभा में पांडवों की रानी की तुम लोगों ने क्या दुर्दशा की? उस समय भीष्म के समान लोगों ने भी देखी-अनदेखी की। तथापि ये सब पीछे के अपराध भूल कर मैं स्वयं कौरवों के पास जाऊंगा और उन्हें समझाने का प्रयत्न करूंगा। इतने

"तू चाहता है कि हम अकेले ही कुरुराष्ट्र पर राज्य करें, यह बिलकुल अन्याय है। अब दो ही मार्ग रह गये हैं- हमारा इन्द्रप्रस्थ हमें लौटा देना चाहिए या युद्ध करने के लिए तैयार रहना चाहिए। छुटपन ही में तुमने जो हमारे साथ बर्ताव किया, सभा में दुःशासन, कर्ण और तूने हमारी साध्वी स्त्री की जो विडम्बना की, वनवास और अज्ञातवास में जो संकट और आपत्तियां हमने भोगीं, आदि सभी बातें भूलने के लिए हम तैयार हैं। हम इसी लिए तेरे पिछले सब अपराधों को सहन कर रहे हैं जिससे हमारे ही हाथों हमारे कुरुकुल का संहार न हो। हमें आधा राज्य, कोई एक प्रान्त, अथवा बहुत नहीं तो—

'इन्द्रप्रस्थं वृकप्रस्थं माकंदीं वारणावतम्।
देहि मे चतुरो ग्रामान्पंचमं कंचिदेव तु ॥'

हम पांच भाइयों के लिए, कम से कम, पांच गावँ तो दे, हम इतने ही में सन्तुष्ट हैं। पांच गावँ दे देगा तो भी हम सुलह करने के लिए तैयार हैं!" इस प्रकार युधिष्ठिर का सन्देशा सुन कर, सब से विदा होकर, संजय हस्तिनापुर लौट आया— (उद्योगपर्व, अ० १९-३१)।

संजय जब उपप्लव्य नगर से हस्तिनापुर लौट आया तब दूसरे दिन, जिस समय धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, दुर्योधन, आदि सब लोग जमा थे तब, पांडवों का सन्देशा संजय ने सब से बतलाया। इसके बाद भीष्म, दुर्योधन और कर्ण आदि में उसपर वादविवाद शुरू हुआ। भीष्म ने यह कह कर अनेक प्रकार से समझाया कि, "श्रीकृष्ण और अर्जुन पूर्वजन्मों के नरनारायण हैं। उनके साथ युद्ध में कोई भी टिक नहीं सकता। इस लिए इसीमें सब की भलाई है कि, उनका राज्य उन्हें चुपके लौटा दिया जाय!" द्रोणाचार्य ने भी न्याय और सत्य का

पक्ष लेकर चंचल धृतराष्ट्र और हठवादी दुर्योधन को सम-
झाने का प्रयत्न किया। पर सब व्यर्थ हुआ। भीष्म और द्रोण
के उपदेश की ओर ध्यान न देते हुए धृतराष्ट्र संजय से इस
प्रकार पूछने लगा कि, पांडवों की सेना कितनी है और उसमें
कौन कौन योद्धा हैं? संजय ने, सेना का हाल बतलाते हुए,
अर्जुन के पराक्रम और भीम के बल का ऐसा वर्णन किया कि
उसे सुन कर धृतराष्ट्र के मन में बहुत ही भय उत्पन्न हुआ।
उसे, आखें न होने पर भी, यह देख पड़ने लगा कि, भीम की
गदा और अर्जुन के गांडीव से सब क्षत्रियों का और कौरवों
का बराबर संहार हो रहा है। इस भयंकर भावी नाश के
लिए वह मन ही मन घबड़ाने लगा, परन्तु उसके मन में यह
नहीं आया कि, अपने पुत्रों की सलाह न सुनते हुए पांडवों
का राज्य उन्हें लौटा दिया जाय। अपने पिता के मन की
यह छिपा स्थिति देख कर दुर्योधन उसे धीरज देने लगा।
वह बोलाः—"यह बात बिलकुल ही असम्भव है कि, पांडव
युद्ध में हमारा नाश कर डालेंगे। हमारी तरफ़ भीष्म, द्रोण,
अश्वत्थामा, कृप, कर्ण के समान महारथी हैं; गदायुद्ध में तो
मेरे समान कुशल कोई भी नहीं है। भीम के लिए तो मैं ही
अकेला बस हूं। ऐसी दशा में उनकी धमकियों में आकर
राज्य लौटा देने की कोई जरूरत नहीं है। अब, यह कभी
सम्भव नहीं कि हम और पांडव दोनों राजा के नाते से
एकत्र रहें। उन्हें मार कर या तो मैं ही अकेला राज्य का
स्वामी रहूंगा अथवा वे ही हमें मार कर राज्य के अधि-
कारी होंगे।

तीक्ष्ण अग्र पर जितनी मिट्टी रह सकती है उतनी भी पांडवों को लौटा देने के लिए मैं तैयार नहीं हूं।" इस प्रकार दुर्योधन कहता रहा; तथापि धृतराष्ट्र का मन नहीं कहता था कि पांडवों से युद्ध किया जाय। अतएव वह दुर्योधन को यह कह कर समझाने लगा कि, "इस कलह से क्षत्रियों का और सारी कौरव-सेना का संहार होगा। दुर्योधन! भरतवर्ष का आधा राज्य क्या तेरे मन का समाधान करने के लिए और तेरा वैभव स्थिर रखने के लिए बस नहीं है? पांडवों के समान और कोई भी मुझे पराक्रमी नहीं देख पड़ता। मुझे जान पड़ता है कि, यह झगड़ा सुलह करके ही मिटाना चाहिए।" परन्तु धृतराष्ट्र के इस कथन से दुर्योधन को और भी अधिक त्वेष आ गया और वह अपने पराक्रम, शौर्य तथा अस्त्रविद्या की बड़ाई करते हुए बोला, "भीष्म, द्रोण, आदि की मुझे बिलकुल ही जरूरत नहीं है। कर्ण, दुःशासन और हम-सिर्फ़ तीन ही सारे पांडवों का वध करने के लिए समर्थ हैं।" इस पर कर्ण भी उसे आधार देने के लिए बोल उठा, "तुम्हारी दोनों की भी जरूरत नहीं है। भगवान् परशुराम से प्राप्त किये हुए अस्त्र के योग से और इन्द्र की दी हुई दिव्य शक्ति से मैं अकेले ही पांडवों का और उनकी सारी सेना का वध कर डालता हूं। भीष्म, द्रोण और तुम कौरव, चुपके बैठ कर, प्रेक्षकों की तरह युद्ध देखना। अब पांडवों के नाश करने का काम बिलकुल ही मुझे सौंप दो!" यह आत्मश्लाघा की बड़बड़ सुन कर भीष्म बोले, "अरे मूढ़! तू व्यर्थ अपनी बड़ाई क्यों मारता है? तेरी उस इन्द्र की दी हुई शक्ति का, सर्पमुख बाणों का और अस्त्रों का, प्रसंग आ पड़ने पर, रत्ती भर भी उपयोग न होगा। अर्जुन की रक्षा स्वयं श्रीकृष्ण करेंगे, उनके सामने तेरी क्या चल सकती है? तुझे अर्जुन जरूर यमसदन पहुँचावेगा।" यह सुन कर उसे बहुत बुरा लगा और भीष्म के

द्वारा बार बार अपनी अप्रतिष्ठा होना उसे सहन नहीं हुआ। अतएव उस समय अत्यन्त क्रोधायमान होकर उसने यह प्रतिज्ञा की कि, सभा में अथवा युद्ध में अब मैं भीष्म को कभी मुख न दिखलाऊँगा; भीष्म के रणांगण में पतन हो जाने पर फिर मेरा पराक्रम सब को देख पड़ेगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा कर के कर्ण सभा से उठ कर चला गया। कुछ देर बाद भीष्म और द्रोण आदि भी सभा से चले गये। इसके बाद धृतराष्ट्र फिर दुर्योधन को समझाने का प्रयत्न करने लगा। परन्तु उसने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। उसने अपना यह अन्तिम उत्तर दिया कि, " श्रीकृष्ण और अर्जुन, दोनों, सब क्षत्रियों का, और कुरुकुल का ही क्यों, चाहे सारी पृथ्वी का नाश क्यों न कर डालें, तथापि मैं उनसे सुलह नहीं करने का!" धृतराष्ट्र और गांधारी ने जब देखा कि दुर्योधन हमारी एक भी नहीं मानता, तब उन्हें बहुत खेद हुआ। परन्तु करें क्या? दुष्ट और दुराग्रही लड़के के सामने उनकी कुछ चलती ही न थी! दुर्योधन का वध करके अथवा उसे कैद करके यदि वे स्वयं ही पांडवों से सुलह करते तो इसमें भी पुत्रप्रेम विघ्न डालता था! —(उद्योगपर्व, अ० ४५–६९)।

उधर कौरवों की सभा में इस प्रकार बात चीत और वाद-विवाद हो रहा था। इधर पांडवों की तरफ भी आपस में यह चर्चा हो रही थी कि युद्ध करना चाहिए या न करना चाहिए। युधिष्ठिर का कथन था कि, " मैंने दुर्योधन से यद्यपि यह याचना की कि, हमें सिर्फ पांच गावँ दो, उन्हींको पाकर हम सुलह करने को तैयार हैं, तथापि वह यह भी स्वीकार

कि, कौरव और पांडवों में सुलह कराने का प्रयत्न करने के लिए हम स्वयं ही कौरवों के यहां जानेवाले हैं। परन्तु श्रीकृष्ण का अकेले ही कौरवों के यहां जाना युधिष्ठिर को प्रशस्त नहीं जान पड़ता था। क्योंकि वे जानते थे कि दुर्योधन कुछ न कुछ उनके साथ अयोग्य वर्ताव करेगा। परन्तु श्रीकृष्ण ने कहा, " मेरे विषय में तुम्हें कोई चिन्ता न करनी चाहिए। मैं अकेले ही सुदर्शन चक्र लेकर यदि खड़ा हो जाऊंगा तो किस राजा का साहस हो सकता है जो मेरे सामने खड़ा तक रहे? वहां जाना बिलकुल ही निरर्थक नहीं होगा; कदाचित् हम लोगों का हेतु सिद्ध भी होगा; और यदि न भी हुआ तो युद्ध का, मनुष्यसंहार का और कुलक्षय का दोष तो अपने सिर पर न आयेगा! " इसके सिवाय उन्होंने युधिष्ठिर से यह भी कहा कि, " कदाचित् तुम समझोगे कि युद्ध न करके भिक्षा पर ही उदर-निर्वाह करना चाहिए, परन्तु भिक्षा पर चरितार्थ चलाना क्षत्रियों का काम नहीं है। न्याय का युद्ध करके उसमें जय प्राप्त करना अथवा मर जाना ही क्षत्रियों का कर्तव्य है। उस समय भीम ने भी यही कहा, कि श्रीकृष्ण कौरवों के पास जाकर उन्हें समझावें, दुर्योधन का दिल न दुखावें, जहां तक हो सके युद्ध का प्रसंग न लाते हुए ऐसा करें जिससे सुलह हो जाय! उस समय भीम का यह कथन सब को ऐसा ही जान पड़ा जैसे बड़ा पर्वत अपना प्रचण्ड रूप छोड़ कर कूड़े-कचरे का ढेर बन जाय अथवा अग्नि शीतल हो जाय! श्रीकृष्ण कुछ उन्हें टोंचते हुए बोले, " पहले तो तेरे बाहु युद्ध के लिए कैसे फड़कते थे! और अब कहता है कि जहां तक हो सके युद्ध टाल देना, यह क्या बात है? क्या तेरे मन में भी भय का संचार हो गया है? " उस समय भीम को क्रोध हो आया

और वे बोले, "मेरा पराक्रम और सामर्थ्य तुझे मालूम है; तिस पर भी तेरा यह कहना ठीक नहीं है। मैंने सिर्फ इसी लिए यह कहा कि जिससे अपने ही हाथों अपने कुल का नाश न हो।" इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "भीम, मनुष्य को चाहिए कि वह सदा अपने कर्तव्य की ओर ध्यान रखे और उसीको करता रहे। यह न देखे कि अपने इस कार्य का परिणाम कैसा होगा। फल की अपेक्षा कर्तव्य की तरफ दृष्टि रख कर चलना ही प्रत्येक दशा में श्रेयस्कर है। इस परिणाम की ओर देखने की कोई जरूरत नहीं है कि, युद्ध करने से भारतकुल का नाश होगा। दुष्टों ने हमारा राज्य हरण कर लिया है और अब मांगने पर वे देते नहीं-और इधर क्षत्रियों को राज्य अवश्य ही चाहिए; ऐसी दशा में युद्ध ही करना कर्तव्य है और वह, कुछ भी हो, क्षत्रियों को करना ही चाहिए।" अन्त में धर्मराज, भीम, अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल, आदि की यह सलाह पड़ी कि, जहां तक हो सके, युद्ध न करते हुए अपना राज्य प्राप्त कर लेने का प्रयत्न करना चाहिए और यदि यह न हो सके तो फिर युद्ध करना चाहिए। परन्तु सहदेव, सात्यकी, आदि तरुण योद्धाओं की तो यही सलाह पड़ी कि कौरवों से सुलह करने का प्रयत्न ही न करना चाहिए। ठीक तो यही है कि एकदम युद्ध ही किया जाय।

द्रौपदी को तो अभी तक यही न मालूम था कि कौरवों से सुलह करने की बातचीत चली है। उसे जब यह मालूम हुआ

अनेक आपत्तियां उठानी पड़ीं, तथापि पांडव सख्य की ही बात निकालते हैं, तब द्रौपदी को बहुत खेद आया और उसे रोष भी हुआ। वह श्रीकृष्ण से मिली और उन्हें इस बात की फिर याद दिला दी कि, पहले कौरवों के द्वारा हमारी कैसी विटम्बना हुई है और हमने कैसे भयंकर कष्ट सहे हैं; और अन्त में, जिन बालों को भरी सभा में दुष्ट दुःशासन ने झटका देकर खींचा था उन्हें एक हाथ से आगे पकड़ कर, आंखों में आंसू भर कर वह बोली:—

'अयं ते पुंडरीकाक्ष दुःशासन करोद्धृतः।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां संधिमिच्छतः॥'

"तुम कौरवों से सख्य करने की इच्छा तो रखते हो; परन्तु, चाहे जो करना, भरी सभा में दुःशासन के द्वारा खींचे हुए हमारे इन बालों की याद रखना, अर्जुन के समान पराक्रमी और भीम के समान बली योद्धा, अपना कर्तव्य भूल कर, यदि सख्य करने की इच्छा करते हों, तो मेरा वृद्ध पिता और मेरे पाँच शूर पुत्र, अभिमन्यु को सेनापति बना कर, युद्ध करेंगे। भड़की हुई अग्नि की तरह मैंने अपना क्रोध तेरह वर्ष तक पेट में रखा; पर अब उसका शमन होना ही चाहिए।

दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांशुगुंठितं।
यद्यहं तु न पश्यामि का शांतिर्हृदयस्य मे॥

जिसने भरी सभा में मेरी विटम्बना की वह दुःशासन का हाथ, रणांगण में टूट कर जब तक धूल में न लोटने लगेगा तब तक, चाहे जो हो, मेरा समाधान नहीं होगा।" इस प्रकार कहते कहते क्रोध से द्रौपदी का शरीर काँपने लगा और उसके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी! तब श्रीकृष्ण ने, यह कह कर कि, "तेरे शत्रु शीघ्र ही रण में नाश हो जायँ

और पांडव विजयी होंगे, इसमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं; अब तू अपना शोक बन्द कर,:" उसे समझाया।

विराट, द्रुपद, धर्मराज, आदि सब राजाओं से विदा होकर, निश्चित सम्मति के अनुसार, श्रीकृष्ण, सिर्फ सात्यकी को साथ लेकर, हस्तिनापुर को चले। धृतराष्ट्र ने जब सुना कि, पांडवों की ओर से सुलह की बातचीत करने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण आनेवाले हैं तब उसने उनके आदर-सत्कार और प्रवास के अन्य सब प्रकार के प्रबन्ध करने के लिए आज्ञा दी। उनके रहने के लिए मार्ग में बड़े बड़े डेरे और पानी के लिए कुएँ आदि बनाये गये। ऐसा प्रबन्ध किया गया कि, जिससे प्रवास में किसी प्रकार का असुभीता न हो। धृतराष्ट्र को आशा थी कि इस प्रकार के धूमधाम के स्वागत से हम श्रीकृष्ण को वश में कर लेंगे। परन्तु विदुर के भविष्यकथनानुसार उपर्युक्त ठाटबाट की ओर श्रीकृष्ण ने देखा भी नहीं और शीघ्र ही हस्तिनापुर के पास आकर वृकस्थल नामक गाँव में टिक रहे। स्पष्ट ही है; जो सच्चे कार्यकर्त्ता पुरुष होते हैं उनका सारा ध्यान सिर्फ कार्यसिद्धि की तरफ रहता है; अपनी प्रशंसा या मानसन्मान की उन्हें कुछ भी परवा नहीं रहती। कावेबाज बुड्ढे धृतराष्ट्र का विचार था कि श्रीकृष्ण को बड़े बड़े रथ, उत्तम अश्व, सुवर्णभूषण, रत्न, आदि की भेट से खुश करके अपनी ओर कर लेंगे। पर विदुर ने उसकी अच्छी खबर ली। उन्होंने कहा कि, " तू जो कुछ भेट देनेवाला है उसकी तो बात ही जाने दे, श्रीकृष्ण सारी पृथ्वी के राज्य का भी उपभोग करने की

भीष्म ने भी अपना यही मत दिया। परन्तु दुर्योधन ने कहा, "सचमुच कृष्ण का इतना आदरातिथ्य करने और उसे भेंट देने की कुछ भी जरूरत नहीं है। मैंने एक दूसरी ही युक्ति कर रखी है। वह यह कि, एक कृष्ण ही पांडवों का आधार है; कल ज्यों ही वह यहां आवेगा त्यों ही उसे मैं कैद करके कारागार में डाल दूँगा। ऐसा करने से सब यादव पूर्णतया मेरे वश हो जायँगे: और पांडवों की भी फिर कुछ न चलेगी।" उसका यह कहना सुन कर धृतराष्ट्र को भी बहुत बुरा लगा। यद्यपि वह नहीं चाहता था कि, पांडवों का आधा राज्य लौटा दिया जाय; तथापि वह यह बात जानता था कि, दुर्योधन ने जो साहस करना चाहा है वह ठीक-किंबहुना सुरक्षित-नहीं है। अतएव धृतराष्ट्र ने उससे कहा, "श्रीकृष्ण पांडवों का दूत होकर आता है; इसके सिवा वह अपना सम्बन्धी भी है। उसके साथ ऐसा कपट करना धर्म, नीति और व्यवहार के बिलकुल विरुद्ध है।" इसके बाद भीष्म यह कह कर कि, मुझसे यह भाषण सुना नहीं जाता; धृतराष्ट्र! तू यह पक्का समझ रखना कि, "यदि यह साहस दुर्योधन करेगा तो क्षणभर में उसका तथा अन्य सब कौरवों का नाश हो जायगा," वहां से चले गये—(उद्योगपर्व, अ० ७०-८८)।

दूसरे दिन श्रीकृष्ण वृकस्थल से हस्तिनापुर को आये। गर्विष्ट दुर्योधन को छोड़ कर और सब लोग उनके स्वागत को गये। धृतराष्ट्र सन्मानपूर्वक श्रीकृष्ण को अपने राजमहल में लाया। वहां सब से कुशलप्रश्न आदि होने के बाद श्रीकृष्ण विदुर के घर गये। वहां पांडवों की माता कुंती थी, जो १३ वर्ष दुःख से काल काट रही थी। श्रीकृष्ण को देखते ही उसे पांडवों की याद आ गई और उनकी तेरह वर्ष की आपत्तियों और संकटों का स्मरण करके कुन्ती बहुत दुःखित हुई। तथापि वनवास और अज्ञातवास के दुःखों पर उसे विशेष खेद नहीं

हुआ; परन्तु रजस्वला दशा में द्रौपदी को भरी सभा में खींच लाकर दुःशासन आदि दुष्टों ने, बड़ों के सामने, उसकी जो विटम्बना की थी उसके विषय में कुंती को बहुत दुःख होता था और उसका पूरा बदला निकालने के लिए उसने श्रीकृष्ण को पांडवों के लिए स्फूर्तिकारक सन्देशा बतलाया। वह बोली, "अरे! सुलह करने का यह मौका नहीं है। विदुला के उपदेशानुसार चलने का यह समय है। सिंधुराज ने जब राज्य हरण कर लिया तब विदुला ने अपने पुत्र संजय को जो उपदेश किया वही मेरा सन्देशा, श्रीकृष्ण! तू पांडवों को बतला, अपमान सह कर भी जिसे क्रोध और त्वेष नहीं आता वह सच्चा क्षत्रिय नहीं है। कुलक्षय के डर से चुप बैठ कर अथवा निराश होकर नीच स्थिति में मत रहो। सांपों की डाढ़ें उखाड़ कर निकाल लेने में चाहे मर जाओ तो अच्छा है; पर कुत्ते के समान मत मरो।

> आलातं तिंदुकस्येव मुहूर्तमपि हि ज्वल।
> मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः॥

टिमुरनी के लुटक की तरह क्षण भर चमक जाओ तो बस है; परन्तु जीव की आशा से, अथवा दूसरे किसी डर से, धान-भूसी की ज्वालाहीन अग्नि की तरह सुलगते मत रहो। शत्रुओं के अपमान, तिरस्कार और छल का भार गधे की तरह सहना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। यदि

दिखाता वह क्षत्रिय नहीं है, चोर है। यह ध्यान में रखो कि

अप्यपर्वणि भज्येत न नमेतेह कस्यचित्।

क्षत्रियों को शत्रु के सामने ईख की तरह टूट जाना चाहिए; पर लचना न चाहिए।

यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः।
काले हि समनुप्राप्ते त्यक्तव्यमपि जीवितं॥

जिसके लिए क्षत्रिय वीर स्त्री पुत्र प्रसव करती है वह कर दिखलाने का समय यही है। इस समय यदि लोगों के कहने में भूल कर अपना कर्तव्य करने में चूक जाओगे तो मैं तुम्हें सर्वथा त्याग दूँगी। मौका आ जाय तो प्रत्येक को अपना प्राण देने के लिए भी तैयार रहना चाहिए"। इस पर श्रीकृष्ण ने यह कह कर कि, "अपने सब शत्रुओं का वध करके और विजयी होकर पांडव शीघ्र ही राज्य सम्पादन करेंगे," कुन्ती का समाधान किया और फिर वे दुर्योधन से मिलने आये। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण का उचित रीति से आदर-सत्कार किया और इसके बाद उनसे अपने ही महल में भोजन करने का आग्रह किया, तब श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "अपना हेतु जब तक सिद्ध नहीं हो जाता तब तक दूत भोजन नहीं करते। मैं जिस हेतु से यहां शिष्टाई करने के लिए आया हूं वह सिद्ध हो जाने पर फिर तुम्हारे घर में भोजन करूंगा।" इस पर दुर्योधन ने कहा, "तुम्हारा हेतु सिद्ध हो या न हो, हमारे यहां भोजन करने में क्या हर्ज है? हमारी तुम्हारी कोई शत्रुता नहीं है। तुमने तो हमें सहायता देना भी स्वीकार किया है। हमारे तुम सम्बन्धी भी हो; यह सब होने पर भी भोजन के लिए इन्कार करना ठीक नहीं है।" यह सुन कर

श्रीकृष्ण ने बड़े आवेश से उत्तर दिया, "जिनका आपस में प्रेम हो उन्हें एक दूसरे के यहां भोजन करना चाहिए। अथवा यदि कोई संकट में हो तो उसे दूसरे के यहां अन्न ग्रहण करना चाहिए। यह शास्त्र में लिखा है। परन्तु मुझमें और तुझमें प्रेम भी नहीं है और मैं किसी संकट में भी नहीं हूं। तू अपने सद्‌गुणी भाई पांडवों से छुटपन ही से, विना कारण, द्वेष करता है। जो सद्गुणी पुरुषों से विना कारण द्वेष करता है वह "पुरुषाधम" ही कहलाने योग्य है। उसके स्पर्श से दूषित हुआ अन्न मैं कभी ग्रहण नहीं कर सकता। मैं जानता हूं कि, इससे तो यही अच्छा है कि मैं विदुर के घर में भोजन करूं।" यह कह कर श्रीकृष्ण वहां से विदुर के घर चले आये।

दूसरे दिन सुबह श्रीकृष्ण को राजसभा में लाने के लिए दुर्योधन, विदुर और शकुनी आये। सात्यकी और कृतवर्मा को साथ लेकर श्रीकृष्ण विदुर के घर से निकले और रथ में बैठ कर राजमहल में आये। ज्योंही श्रीकृष्ण सभा में पधारे त्योंही भीष्म, धृतराष्ट्र, आदि सब लोग उनके सन्मानार्थ खड़े हो गये। श्रीकृष्ण अपने आसन पर बैठ गये। चारो ओर शान्ति होने पर, सब का ध्यान इस ओर गया कि, देखें अब ये क्या कहते हैं। सभा की गड़बड़ बन्द होने पर मेघ के समान गम्भीर वाणी से श्रीकृष्ण ने बोलना प्रारंभ किया:-

कुरूणां पांडवानां च शमः स्यादिति भारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुमागतः ॥

"मैं इस हेतु से यहां आया ँ कि, जिससे ...

और इससे इन कुलों का वैभव बहुत ही बढ़ेगा । पर सख्य न करके यदि तुम युद्ध का प्रसंग लाओगे तो उसमें किसी का हित नहीं । युद्ध में, पांडवों का अथवा कौरवों का, चाहे जिसका, नाश हो; तथापि तुम्हारे सुख पर पानी फिर ही जायगा । पांडवों का पिता उनके छुटपन ही में परलोकवासी हो गया; उसके बाद जिस प्रेम से तुमने उनका पालनपोषण किया उसी प्रेम से इस समय भी तुम उनके साथ वर्ताव करो । तेरह वर्ष वनवास और अज्ञातवास करके, पांडवों ने, सत्य का स्मरण करके, अपना कर्तव्य किया है । हे धृतराष्ट्र, अब तुम अपना कर्तव्य करो । पांडवों ने जो संन्देशा तुम्हारे लिए कहा है वह सुनोः—तुम्हें हम अपने पिता की जगह पर मानते हैं; तुम्हारी आज्ञा से तेरह वर्ष हमने चुपके कष्ट सह लिये हैं । अब तुम भी हमारे साथ वही वर्ताव करो जो पिता के लिए योग्य है । हमारा आचरण यदि धर्म और न्याय के विरुद्ध हो तो हमारी भूल हमें बतलाओ; और तुम भी धर्म के अनुसार तथा सत्य के अनुसार चलो " धृतराष्ट्र, लड़कपन से तुम्हारे लड़के पांडवों के साथ जैसा वर्ताव करते आये हैं उसे तुम अपने ध्यान में लाओ । द्यूत कैसे हुआ, भरी सभा में द्रौपदी की कैसी विटम्बना हुई, पांडवों ने अपने कर्तव्य का स्मरण करके, और वचन पालने के लिए, तेरह वर्ष कैसे कष्ट सहे-इन बातों का तुम विचार करो । पांडव लोग कौरवों के इन सब अपराधों को क्षमा करने के लिए अब भी तैयार हैं । धर्म के लिए, न्याय के लिए, सत्य के लिए, और नहीं तो, अपने हित के लिए और सुख के लिए, तुम अवश्य ही पांडवों को राज्य का आधा भाग देकर उनसे सुलह करो; और एक दूसरे का वध करने के लिए दोनों पक्षों की ओर जो योद्धा जमा हुए हैं उन का विना कारण नाश मत होने दो । तुम्हारे लड़कों के मन में

लोभ की प्रबलता बहुत ही बढ़ी है; वे उच्छृंखल हो गये हैं; उन्हें रोको।

> स्थिताः शुश्रूषितुं पार्थाः स्थिता योद्धुमरिंदमाः ।
> यत्ते पथ्यतमं राजँस्तस्मिंस्तिष्ठ परंतप ॥ '

यदि पांडवों के विषय में कहो तो वे जैसे युद्ध करने के लिए तैयार हुए हैं वैसे ही वे तुम्हारी सेवा करने के लिए भी तैयार हैं। अब, जो मार्ग तुम्हें श्रेयस्कर और हितकारक समझ पड़े उसका स्वीकार करो।" श्रीकृष्ण का यह गम्भीर भाषण समाप्त होने पर, कुछ देर तक, सारे सभासद, आश्चर्य से, बिलकुल स्तब्ध हो गये। इसके बाद, वहां आये हुए अनेक ऋषियों ने, अनेक उदाहरण देकर दुर्योधन को समझाया कि अभिमान, गर्व और लोभ में पड़ने से मनुष्य का समूल नाश हो जाता है। उन्होंने यह भी उपदेश किया कि, "अभिमान और क्रोध को छोड़ कर, श्रीकृष्ण तथा अन्य सम्बन्धियों के कहने के अनुसार, पांडवों से सख्य कर लो।" परन्तु यह सब व्यर्थ गया। धृतराष्ट्र ने जब यह विनती की कि, श्रीकृष्ण स्वयं एक बार दुष्ट और दुराग्रही दुर्योधन को समझाने का प्रयत्न कर देखें तब श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास जाकर, सौम्यता के साथ, उसे उपदेश करने लगे, "दुर्योधन, तू अपना यह दुराग्रह छोड़ दे और पांडवों से सुलह कर ले। धृतराष्ट्र, विदुर, भीष्म, द्रोण, इत्यादि का यही मत है कि, पांडवों को उनका आधा राज्य देकर सलाह कर ली जाय। इसीके अनुसार तुझे भी बर्ताव करना चाहिए। इसीमें सब का कल्याण है।

धृतराष्ट्र को महाराज्य और तुझे यौवराज्य देंगे। तुझे उचित है कि तू पांडवों को उनका आधा राज्य लौटा कर उनसे सुलह कर ले, जिससे कुरुकुल नामशेष न हो और तुझे लोग 'कुलांगार' न कहें।" इसके बाद भीष्म, विदुर, द्रोण, धृतराष्ट्र ने भी फिर फिर, श्रीकृष्ण के कहने के अनुसार, करने के लिए, दुर्योधन से, अलग अलग कहा। परन्तु इससे दुर्योधन का मन नहीं बदला; किन्तु उलटे उसका क्रोध और भी अधिक बढ़ गया। वह बोला, "मेरा कोई भी अपराध नहीं है; तथापि कृष्ण, विदुर, धृतराष्ट्र, द्रोण, भीष्म, तुम सब मेरी ही निन्दा करते हो; अब हम क्या करें? द्यूत खेलने का व्यसन धर्मराज ही को अधिक है; ऐसी दशा में द्यूत के द्वारा यदि शकुनी ने उनका राज्य हरण कर लिया तो इसमें मेरा क्या दोष है? राजा द्रुपद की और पांचाल-सेना की सहायता से पांडव हमें धमकी देकर राज्य माँगते हैं। उनकी इस धमकी से डर कर राज्य लौटा देना मेरे समान सच्चे क्षत्रिय का कर्तव्य नहीं है। पांडवों के सामने सिर झुकाने की अपेक्षा युद्ध करके यदि हम सब रणभूमि की धूल में मिल जायँगे तो इसका मुझे कोई भी विषाद नहीं है-इसमें हमें कोई दुःख न होगा। परन्तु सुई के अग्रभाग पर जितनी मिट्टी रह सकती है उतनी भी मैं पांडवों को नहीं दे सकता; फिर आधे राज्य की तो बात ही अलग है। फिर इसके लिए चाहे हमारे कुरुकुल का, सब क्षत्रियों का, अथवा राष्ट्र का क्यों न नाश हो जाय, उसकी मुझे कोई परवा नहीं है!" श्रीकृष्ण ने जब देखा कि दुर्योधन से प्रार्थना करना व्यर्थ है तब उन्होंने तमक कर उत्तर दिया, "क्या तू रणांगण की धूल में पतन होना चाहता है? अच्छा है। तेरी यह इच्छा पांडव शीघ्र ही पूर्ण करेंगे। द्यूत में कपट करके राज्य हरण करना, अपनी भौजाई की, भरी सभा में, विडम्बना करना, भीम को विष देकर नदी में डुबाना,

पांडवों को और उनकी माता को वारणावत के लाक्षागृह में जला डालने की इच्छा करना, आदि, दुष्ट कृत्य करके भी क्या तू समझता है कि हमारा कोई भी अपराध नहीं है।

यच्चैभ्यो याचमानेभ्यो पित्र्यमंशं न दित्ससि।
तच्च पाप प्रदातासि भ्रष्टैश्वर्यो निपातितः ॥'

पांडव तुझसे यह याचना करते हैं कि, हमारा पितृपरंपरागत आधा राज्य लौटा दो; तथापि तू उन्हें नहीं देता। परन्तु युद्ध में भ्रष्टवैभव होकर जब तू धूल में लोटते फिरेगा तब तुझे वह राज्य अवश्य चुपके से दे देना पड़ेगा; यह तू अच्छी तरह समझ ले।" श्रीकृष्ण ने भरी सभा में जब उसका इस प्रकार तिरस्कार किया तब दुर्योधन, कुछ भी उत्तर न देकर, उद्धट-पन के साथ, सभा से उठ कर चला गया; और उसके पीछे दुःशासन आदि सब कौरव भी चले गये। इसके बाद श्रीकृष्ण ने, स्पष्टता से, धृतराष्ट्र को यह सलाह दी कि, दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनी को कैद करके पांडवों के उन्हें अधीन कर दो, जिससे कौरवकुल और सब क्षत्रियों का जो संहार होनेवाला है वह टल जाय। परन्तु धृतराष्ट्र ने इस ओर ध्यान न देकर अपना अन्तिम उपाय यह किया कि, गांधारी को बुला कर दुर्योधन को समझाने के लिए कहा। अतएव दुर्यो-धन फिर सभा में बुलाया गया; गांधारी ने, अपनी ओर से दुर्योधन को बहुत कुछ समझाया; पर उसके कहने की ओर ध्यान न देकर वह फिर, उद्धटपन के साथ, सभा से उठ गया। अब, दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण और शकुनी की चांडाल-चौकड़ी ने यह सलाह की कि, "धृतराष्ट्र, भीष्म, आदि की

हो जायँगे जैसे दांत गिराया हुआ सर्प।" चाणाक्ष सात्यकी उनकी इस सलाह को समझ गया। उसने धृतराष्ट्र, विदुर और श्रीकृष्ण से उनका वह विचार प्रकट कर दिया। उसने धृतराष्ट्र से कहा कि, श्रीकृष्ण को बलात्कार से कैद करना ऐसा है जैसे छोटे और मूर्ख लड़के भड़की हुई अग्नि को अपने वस्त्रों से बांधने का साहस करें। उस समय श्रीकृष्ण कुछ हँस कर बोले, "राजा, दुर्योधन को जो कुछ करना हो वह करने दो। उसका उद्देश मैं सफल न होने दूँगा। यह शंका मन में मत लाओ कि, क्रोध में आकर मैं और ही कुछ कर डालूंगा।" दुर्योधन आदि फिर सभा में बुला लाये गये। तब विदुर ने यह कह कर दुर्योधन को समझाया कि, "श्रीकृष्ण का सामर्थ्य और पराक्रम क्या तू नहीं जानता? उन्हें कैद करने का प्रयत्न करना ऐसा है जैसे पतंग, आप ही आप जाकर अग्नि में गिर पड़ता है" इसके बाद श्रीकृष्ण उससे बोले, "दुर्योधन, तू समझता है कि मैं यहां अकेला हूं, इसी लिए मुझे पकड़ कर तू कैद करना चाहता है। पर मैं अकेला नहीं हूं; मेरे साथ पांडव, यादव और सब देवगण भी यहां आये हैं, यह बात तुझ मूढ़ को कहां मालूम है?" इतना कह कर श्रीकृष्ण ज़ोर से हँसे। इतने में उनके शरीर से एकदम दिव्य तेज निकला और विद्युद्रूपी देवगण बाहर निकल आये! एकाएक चारो ओर अत्यन्त तेज छा गया। श्रीकृष्ण की एक ओर अर्जुन, दूसरी तरफ बलराम और पिछली तरफ़ चारो पांडव खड़े हुए सब ने देखे! यह चमत्कार देख कर सब सभासद कुछ देर आश्चर्य करते हैं कि, इतने ही में वह तेज, देवगण, आदि, सब गुप्त हो गया। श्रीकृष्ण भी वहां से उठ कर बाहर अपने रथ की ओर आये। तब धृतराष्ट्र उनके पास आकर बोला, "पांडवों के विषय में मेरे मन में पाप-बुद्धि नहीं है। पर दुर्योधन मेरी एक भी नहीं सुनता, इसके

लिए मैं क्या करूँ?" उसे कुछ भी उत्तर न देते हुए श्रीकृष्ण सभासदों और कौरवपक्ष के राजाओं को सम्बोधन करके बोले, " मैं सुलह करने के लिए आया था; पर मन्द-बुद्धि दुर्योधन क्रोध और उद्धटपन के साथ सभा से कैसे उठ गया और इधर धृतराष्ट्र भी अपने पुत्रों को रोकने के लिए समर्थ नहीं है, सो वह खुद ही कह रहा है, यह आप लोग जानते ही हैं। अब युद्ध को छोड़ कर दूसरा मार्ग नहीं रहा!" इतना कह कर श्रीकृष्ण सभा से निकल आये। पहले वे कुंती के पास आये और उससे यह सब हाल कहा। उसने पांडवों को बतलाने के लिए श्रीकृष्ण से यह सन्देशा कहा, " दुर्योधन यदि तुम्हारा आधा राज्य नहीं देता तो अब युद्ध करो, यही क्षत्रियों के लिए उचित है; और मेरे दुःख, द्रौपदी की विटम्बना और अपने अपमान का, अपने ही पराक्रम से, परिमार्जन करो।" इसके बाद श्रीकृष्ण अपने रथ में कर्ण को बैठा कर नगर से चल दिये—(उद्योगपर्व, अ० ८७–१३७)।

इधर भीष्म और द्रोण ने दुर्योधन को फिर समझाने का प्रयत्न किया कि, जिससे पांडवों के साथ सख्य हो जाय। द्रोण गुरु बोले, " हमारे दोनों के अन्तःकरण पांडवों की ओर हैं। अर्जुन तो मुझे अश्वत्थामा से भी अधिक प्रिय है। तिस पर भी, यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि, उससे हमें युद्ध करना पड़ेगा! जन्म लेकर जो कर्तव्य करने चाहिए वे सब ठीक ठीक करके हम कृतकृत्य हो चुके हैं। अब हमें इस संसार में थोड़े दिन रहना है। परन्तु, दुर्योधन! तू तरुण है। तुझे राज्यसुख भोगना है। इस लिए पांडवों के साथ युद्ध करके तू अपने सुख, राज्य, धन मित्र

इस जगह सहज ही एक ऐसा प्रश्न उठता है कि, जब पांडवों का पक्ष न्याय, सत्य और श्रीकृष्ण के आधार पर था और भीष्म, द्रोण, आदि का मन उधर आकर्षित भी होता था तब फिर उन्होंने पांडवों का पक्ष क्यों नहीं लिया और उलटे उन्हींपर इन धर्मात्माओं ने शस्त्र क्यों उठाया? अर्जुन पर, अश्वत्थामा से भी अधिक, जब द्रोणाचार्य का प्रेम था तब पांडवों से ही लड़ने के लिए वे क्यों तैयार हुए? धर्म क्या है, अधर्म क्या है, सत्यपक्ष कौन सा है, आदि सब बातें जान कर भी भीष्म मिथ्या पक्ष की ओर से सत्य पक्ष पर शस्त्र चलाने के लिए क्यों तैयार हुए? ऊपर ऊपर से देखने में भीष्म-द्रोण का यह बर्ताव अनुचित मालूम होने की सम्भावना है। पर थोड़ा सा विचार करने पर मालूम हो जायगा कि, ऐसे संकट के समय में उनकी कर्तव्यनिष्ठा जितनी पूर्णता के साथ देख पड़ी उतनी अन्य समय पर न देख पड़ी होगी। भीष्म-द्रोण, एक प्रकार से, धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों की सेवा ही करते थे और उनका अन्न खाते थे। जिस समय पांडवों ने इन्द्रप्रस्थ में राज्य स्थापन किया उसी समय यदि वे उनके पास चले गये होते तो बात दूसरी थी। परन्तु वे धृतराष्ट्र और दुर्योधन के प्रजाजन थे, वे उनके योद्धा और मंत्री भी थे। उन्होंने उनकी सेवा में अपना जन्म बिताया था। पांडवों से युद्ध करना चाहिए, इस विषय में मंत्री के नाते से योग्य सलाह देना उनका काम था। परन्तु वह सलाह राजा को यदि पसन्द नहीं पड़ी, और युद्ध करना एक बार निश्चित हो गया, तो फिर यह देखना उनके लिए योग्य न था कि, न्याय और सत्य किस पक्ष की ओर है। अपने राजा के लिए, अपने स्वामी के लिए और अपने देश के लिए लड़ना क्षत्रियों का कर्तव्य है; इसके अनुसार उन्हें सब मौकों पर

चलना ही चाहिए। उनका प्रेम, उनकी भक्ति और उनका अन्तःकरण श्रीकृष्ण और पांडवों की ओर झुकता था। परन्तु यह सब भूल कर, अपना शारीरिक सामर्थ्य, अपना युद्ध-कौशल, अपनी बुद्धिमत्ता, अपने स्वामी के लिए-दुर्योधन के लिए-युद्ध में खर्च करना उनका कर्तव्य था। यह कर्तव्य करते हुए सच्चे पक्ष पर शस्त्र उठाने में, मन को चाहे जितना दुख हो, अन्तःकरण चाहे जितना संकट में पड़ता हो-अधिक क्या, उसमें मरण भी हो जाय-तथापि उसकी ओर ध्यान न देना ही उनका धर्म था। इस विवेचन से सहज ही ध्यान में आ जायगा कि, धृतराष्ट्र और दुर्योधन के अन्न से बढ़े हुए शरीर की आहुति उनके लिए रणयज्ञ में देने का जो भीष्म-द्रोण ने निश्चय किया वह ठीक ही है।

इधर कर्ण के रथ पर बैठ जाने पर श्रीकृष्ण का रथ चलने लगा। कुछ देर बाद श्रीकृष्ण उससे बोलेः—"कर्ण, तेरी सच्ची माता कुंती है। जब वह अपने नैहर में थी उस समय, कौमार्यावस्था में, तू उसीसे सूर्य के द्वारा उत्पन्न हुआ है। इस लिए, वास्तव में पांडु तेरा पिता और पांडव तेरे छोटे भाई हैं। मैं तुझे अब उनके यहां लिये चलता हूं और तेरे जन्म का सच्चा हाल बतलाता हूं। पांडव तुझे अपना बड़ा भाई समझ कर सब राज्य तुझे ही अर्पण करेंगे और आगे भी उन सब की मदद से तुझे पृथ्वी का भी राज्य प्राप्त होगा।" श्रीकृष्ण का यह कहना सुन कर कर्ण ने उत्तर दियाः—"श्रीकृष्ण, यह मैं जानता हूं कि कुंती मेरी मा और राजा पांडु मेरा पिता है। पर मेरे जन्मते ही जब कुन्ती ने मेरा त्याग कर दिया तब आधिरथ मुझे अपने घर ले आया। राधे ने बालपन से

सूतज्ञाति की स्त्रियों से मैंने विवाह किये हैं। उनसे मेरे लड़के-वाले और नातीपन्ती भी हुए हैं। ये सब प्रेमबन्धन, जो आज तक दृढ़ हो रहे हैं, तोड़ कर ठीक युद्ध के समय में पांडवों के यहां कैसे आ सकता हूं? दुर्योधन के ही आश्रय से मैं रहता हूं; उसीने मुझे अंग देश का राज्य देकर प्रतिष्ठित किया है। इस आशा से, कि अर्जुन के साथ युद्ध करके मैं उसे मार डालूँगा, उसने युद्ध का प्रारम्भ किया है। ऐसे समय में उसे छोड़ कर पांडवों के पक्ष में मिल जाना अत्यन्त नीच कृतघ्नता है। राजा होने के लिए सर्वथैव युधिष्ठिर ही योग्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं। उससे मेरे जन्म का हाल मत बतलाना। यदि बतला दोगे तो वह युद्ध भी न करेगा और न राज्य का स्वीकार ही करेगा। यह मैं जानता हूं कि, शीघ्र ही जो भयंकर रणयज्ञ शुरू होनेवाला है उसमें सब कौरवों और क्षत्रियों की आहुति पड़नेवाली है। पर ऐसे मौके में दुर्योधन को छोड़ जाना अधमता है। दुर्योधन को खुश करने के लिए पांडवों और द्रौपदी को मैंने जो दुर्वचन कहे उन पर अब मुझे पश्चात्ताप होता है। श्रीकृष्ण, अब अन्त में मेरी इतनी ही इच्छा है कि रणांगण में हम सब का नाश होकर सब क्षत्रियों का उद्धार हो"। कर्ण का यह भाषण सुन कर श्रीकृष्ण बोले:—"मेरे उपदेश के अनुसार तू पांडवों की तरफ़ नहीं आता। इस कारण तू पृथ्वी के राज्य से हाथ धोता है। अच्छा तेरी खुशी! यह सत्य है कि पांडव इस युद्ध में विजय प्राप्त करेंगे। अस्तु। आज से सात दिन बाद अमावास्या है। उस दिन युद्ध शुरू होगा। तू यह बात द्रोण, भीष्म, कृप और धृतराष्ट्र को बतला देना।" इसके बाद कर्ण ने बड़े प्रेम से श्रीकृष्ण को आलिंगन दिया और उनसे अन्तिम विदा मांगी! उसने कहा कि, "इस महायुद्ध से यदि हम दोनों जीते बचे

तो फिर भेट होगी। अन्यथा हमारी तुम्हारी अब स्वर्ग ही में भेट होगी।" इस प्रकार आज्ञा लेकर कर्ण नीचे उतर पड़ा और अपने रथ में बैठ कर हस्तिनापुर लौट आया।

कुंती को जब यह मालूम हुआ कि, दोनों ओर से युद्ध की तैयारी शुरू हो गई है तब उसने भी सोचा कि, कर्ण के पास जाकर और उसे सच्चा हाल बतला कर उसे समझाना चाहिए कि, वह पांडवों के पक्ष में जा मिले। दैववशात् भागीरथी नदी पर कर्ण से उसकी भेट भी हो गई। उसे देखते ही कर्ण ने इस प्रकार नामोच्चारपूर्वक उसे नमस्कार किया कि, "यह राधापुत्र तुझे नमस्कार करता है।" यह सुन कर उसने कहा कि तू राधापुत्र नहीं है, कुन्तीपुत्र है। इतना कह कर उसने उसके जन्म का सच्चा वृत्तान्त बतलाया और वह बोली, "कर्ण, युद्ध में शत्रु की तरह भिड़ने की अपेक्षा यदि तेरा और अर्जुन का भाई भाई के नाते से समागम हो तो क्या ही अच्छी बात हो। तू सूत नहीं है, पार्थ है, इस लिए कौरवों के यहां रहने की अपेक्षा यदि तू अपने पाँच भाइयों में जा मिलेगा तो तू अधिक शोभा पावेगा।" इसके बाद आकाशवाणी के रूप से सूर्य ने भी कहा कि, कुंती का कहना सच है, तू पांडवों के यहां जा। कर्ण ने सोचा कि, कौमार्यावस्था में कुंती ने मूर्खता की जिज्ञासा से सूर्य को बुलाया और उसीसे हमारी उत्पत्ति हुई; ज्योंही हम पैदा हुए त्योंही निर्दयतापूर्वक इसने हमें छोड़ दिया और अब, जब युद्ध का मौका आ गया है तब, कुन्ती हमसे कह रही है कि पांडवों से जा मिलो। उसकी इस निष्ठुरता और स्वार्थ के लिए कर्ण ने उसे दोष दिया। उसने कहा, "आज तक मैं सूत के नाम से प्रसिद्ध हूँ और अब तू

की जो इच्छा है उसीको पूर्ण करने में मुझे प्रवृत्त होना चाहिए। आज तक जिन्होंने दुर्योधन का अन्न खाया है उन्हें वह सार्थक कर दिखाने का यह अच्छा मौका है। चाहे प्राण भले ही चले जायँ; पर मैं यह मौका हाथ से न जाने दूँगा। तथापि तुझसे मेरी जो यह भेट हो गई है उसे भी मैं बिलकुल ही निष्फल न होने दूँगा। धर्मराज, भीम, नकुल और सहदेव को मैं युद्ध में न मारूंगा। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि, अर्जुन से मैं तब तक बराबर युद्ध करता रहूँगा जब तक कि उसका या मेरा वध न हो जाय। युद्ध के बाद अर्जुन या कर्ण दो में से एक न रहेगा, तेरे पाँच पुत्र बने रहेंगे। यह मैं वचन देता हूँ।" इतने वचन से कुंती का समाधान हो गया और वह विदुर के घर लौट आई—(उद्योगपर्व, अ० १३८–१४६)

इधर पांडव अभी तक विराट के मत्स्य देश की सीमा के पास उपप्लव्य नगर में ही थे। श्रीकृष्ण वहां पहुँचे और कौरव-सभा का सब वृत्तान्त उन्होंने युधिष्ठिर से बतलाया। इस प्रकार, श्रीकृष्ण तथा अन्य लोगों ने भी बहुत प्रयत्न किये कि, पराक्रमी कुरुकुल की इन दोनों शाखाओं में मेल हो जाय और युद्ध के कारण जो भयंकर क्षत्रियनाश और कुलक्षय होनेवाला है वह टल जाय; पर वे सब प्रयत्न निष्फल हुए और कौरवों की ओर से ११ अक्षौहिणी सेना पहले ही से कुरुक्षेत्र में जा डँटी। इस लिए अब, इसके आगे, युद्ध को छोड़ कर दूसरा मार्ग ही न रहा। पांडवों की ओर कुल ७ अक्षौहिणी सेना जमा हुई। पांडवों ने द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखंडी, सात्यकी, चेकितान और भीम, इन सात योद्धाओं को सात अक्षौहिणियों का सेनापति नियत किया। इसके बाद इस बात पर बहुत देर तक वादविवाद हुआ कि, सब सेना का मुख्य सेनापति कौन हो। तब श्रीकृष्ण ने सूचना दी कि, द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्न को मुख्य सेनापति नियत करना चाहिए। यह सलाह

सब को पसन्द पड़ी और उसे मुख्य सेनापति का अभिषेक किया गया। इधर दुर्योधन ने प्रार्थना की कि, कौरवों की ११ अक्षौहिणियों का आधिपत्य भीष्म को स्वीकार करना चाहिए। इस पर भीष्म ने उत्तर दिया कि, कर्ण सदा मुझसे स्पर्धा करता रहता है, उसे यह अभिमान है कि, मेरे समान और कोई वीर नहीं है। इस लिए हम दो में से चाहे जिस एक को, यदि पहले लड़ने का मौका मिलेगा तो मैं सेनापति बनने के लिए तैयार हूं। कर्ण भी यही चाहता था। शल्य, शकुनी, जयद्रथ, कृतवर्मा, आदि १० महारथियों को १० अक्षौहिणियों का सेनापति नियत करके भीष्म स्वयं, शुभ्र कवच पहन कर और श्वेत शिरस्त्राण बाँध कर, ग्यारहवीं कौरव अक्षौहिणी के सेनापति हुए। इधर द्रौपदी को तथा अन्य राजस्त्रियों और दासदासियों को बन्दोबस्त के साथ उपप्लव्य नगर ही में रख कर पांडवों की सेना ने वहां से कूच किया; और थोड़े ही दिनों में रणभूमि में पहुँच कर अपना डेरा डाल दिया। इधर कौरवसेना तो हस्तिनापुर से चल कर पहले ही कुरुक्षेत्र में आ पहुँची थी। पांडवसेना का मुख पूर्व की ओर, और कौरवों का पश्चिम की तरफ था। दोनों ओर की छावनियों में हाथियों की गर्जना, घोड़ों की हिनहिनाहट, योद्धाओं का सिंहनाद, धनुषों की टंकार और भेरी, नगारे, शंख, इत्यादि की गंभीर ध्वनि का एक ही प्रचण्ड कोलाहल मच गया, और उससे कुरुक्षेत्र का सारा मैदान गूज उठा*—(उद्योगपर्व, अ० १४७–१७६)।

---

* इस भयंकर युद्ध में, बलराम और रुक्म को छोड़ कर, उस समय के अन्य सब बलवान् क्षत्रिय वीर शामिल हुए। बलराम दोनों पक्षों की ओर बराबर झुकते थे। दुर्योधन और भीम दोनों उनके बराबर प्रिय शिष्य थे।

सातवाँ प्रकरण।
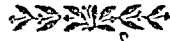
युद्ध का पूर्वभाग।

कुरुक्षेत्र के मैदान में जब दोनों सेनाओं के डेरे पड़ गये तब भगवान् व्यास ऋषि धृतराष्ट्र के पास आये। उन्होंने उससे कहा कि, यदि तू युद्धचमत्कार देखना चाहता हो तो मैं तुझे, उसके लिए, दृष्टि देता हूं। पर धृतराष्ट्र यह न चाहता था कि, बहुत सा जीवन अंधेपन में व्यतीत करके अब अन्त में मुझे दृष्टि मिले, जिससे मैं वह युद्ध देखूं जिसमें हमारी सब जाति का नाश और कुलक्षय होनेवाला है। इस कारण उसने व्यास से अपनी यह उत्कंठा प्रदर्शित की कि, मैं अब दृष्टि तो नहीं चाहता; पर युद्ध का इत्थंभूत वृत्तान्त सुनना जरूर चाहता हूं। तब व्यास ने संजय को दिव्य दृष्टि दी और यह वर दिया कि, "युद्ध में और रणभूमि पर दिन में अथवा रात में, प्रत्यक्ष किंवा गुप्त, जो जो घटनाएं होंगी वे सब तुझे देख पड़ेंगी।" इस पर संजय ने प्रतिदिन के युद्ध का सारा वृत्तान्त धृतराष्ट्र को बतलाना स्वीकार किया। इस विषय में, कि युद्ध में विजय किसको मिलेगा, व्यास ने यह अभिप्राय दिया कि 'यतो धर्मस्ततो जयः' जहां धर्म वहीं जय—(भीष्मपर्व, अ० १–२५)।

था। गांडीव और शार्ङ्ग नामक दिव्य धनुषों के समान इन्द्र का विजय नामक धनुष उसे प्राप्त हुआ था। इस भारतीय युद्ध में शामिल होने के लिए वह सेना लेकर आया था; परन्तु वह बहुत घमंडी तथा गर्विष्ठ था, इस कारण दोनों ही पक्षों ने उसकी सहायता लेने से इन्कार कर दिया।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा कि, " न योत्स्ये "--मैं युद्ध न करूंगा। (पृ० २०१)

इधर कुरुक्षेत्र की रणभूमि में दोनों सेनायें, युद्ध के लिए तैयार होकर, आमने सामने खड़ी हो गईं। अनेक वर्षों से जिसके विषय में उत्कंठा हो रही थी वह युद्ध करने के लिए, अपने रथ पर चढ़ने के पूर्व, अर्जुन ने श्रीकृष्ण के कथनानुसार भक्तिपूर्वक दुर्गा की स्तुति करके गांडीव धनुष हाथ में लिया; और इसके बाद वे रथ पर आरूढ़ हुए। दोनों ओर की सेनाओं में शंख, नगारे, दुंदुभी, इत्यादि के शब्द और वीरों के सिंहनाद शुरू हुए। अर्जुन का रथ श्रीकृष्ण ने दोनों सेनाओं के बीच में लाकर खड़ा किया। अर्जुन ने जब चारो ओर की सेना पर दृष्टि फेंकी तब उनके हृदय में कुछ दूसरे ही प्रकार के विकार उठने लगे और उनका मन पीछे हटने लगा। कुछ यह बात नहीं कि, अपने शत्रुओं के डर से या मरने के भय से उनका धैर्य छूट गया हो; किन्तु जब उन्होंने देखा कि हमारे इष्ट-मित्र, सम्बन्धी, लड़कपन के प्राण प्यारे मित्र, भीष्म के समान पितामह, द्रोण-कृप के समान गुरु, कौरवों के समान भाईबन्द, द्रुपद-विराट के समान सम्बन्धी राजा और आर्यावर्त के अन्य अनेक शूर योद्धा तथा क्षत्रियों का, न कुछ राज्य के लिए, हमारे ही हाथों, संहार होनेवाला है तब उनका मन कचराने लगा। उन्होंने समझा कि, भूलोक के राज्य की तो कोई बात ही नहीं है; किन्तु त्रैलोक्य के राज्य के लिए भी, अपने कुल का संहार करना महत्पातक है। अतएव अर्जुन ने उस समय, श्रीकृष्ण से कहा कि "न योत्स्ये"— मैं युद्ध न करूंगा। इस पर श्रीकृष्ण ने जो उपदेश करके उनका मोह और भ्रान्ति दूर की और, निर्भयता के साथ, अपना कर्तव्य करने के लिए तैयार किया वह उपदेश

करूंगा सो यह तेरी बड़ी भारी भूल है। तू, मैं, भीष्म और ये सब राजा, आत्मस्वरूप से भूतकाल में सदैव से अस्तित्व में थे और इस लौकिक मरण के बाद भी रहेंगे। हम में जो मुख्य तत्व आत्मा है वह न किसी को मारता है और न स्वयं कभी मरता ही है। अथवा उस पर दूसरा कोई भी परिणाम नहीं होता। पुराने कपड़े छोड़ कर जिस प्रकार मनुष्य इच्छानुसार नवीन कपड़े पहनता है उसी प्रकार आत्मा भी, अपने कर्म या वासना के अनुसार, एक देह छोड़ कर दूसरा धारण करता है-यही मरण है। इसमें दुःख करने की क्या जरूरत है? तथापि, यदि, यह मान भी लिया जाय कि, यह सदा जीता मरता रहता है तो भी, जो जन्मेगा वह मरे ही गा और जो मरेगा वह फिर जन्म पावे ही गा-यह अपरिहार्य है; तब इसके लिए शोक करने से लाभ ही क्या है? जन्म के पहले यह देह अव्यक्त स्वरूप ही में थी और मरण के बाद भी उसी स्थिति में जायगी-तो फिर बीच की, यह थोड़ी देर टिकनेवाली स्थिति, यदि समाप्त होने लगे तो इसके लिए शोक क्यों करना चाहिए? यह तो इस आत्मा के अमरत्व की बात हुई, अब, यदि, तू अपने धर्म-कर्तव्य-की ओर देखता है तो भी इस प्रकार का शोक करके युद्ध टाल देना ठीक नहीं है। न्याय से यदि युद्ध किया जाय तो इससे बढ़ कर और कोई भी दूसरी बात, क्षत्रियों के लिए नहीं है। प्रयत्न के बिना, सहज गति से, उपस्थित होनेवाला युद्ध तो स्वर्ग का खुला हुआ द्वार ही है। ऐसा धर्ममूलक युद्ध भाग्यशाली क्षत्रियों ही को मिलता है; यह मौका तुझे व्यर्थ न खोना चाहिए। यह धर्मयुद्ध यदि तू न करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति का नाश होगा और तुझे पाप अवश्य लगेगा। तेरा ऐसा अपयश होगा जिसका कभी नाश न होगा-निरन्तर

लोग उसे कहेंगे। मानी पुरुष के लिए अपयश की अपेक्षा मरना ही अच्छा है। जो आज तक तुझे भारी योद्धा मानते थे वे समझेंगे कि तूने डर कर युद्ध टाल दिया और उनकी दृष्टि में तू डरपोंक ठहरेगा। दुर्योधन आदि तेरे शत्रु, तुझे निर्बल जान कर, तेरी निर्भर्त्सना और हँसी करेंगे; इससे अधिक और तेरे लिए दुःख की बात क्या हो सकती है? युद्ध करना क्षत्रियों का कर्तव्य है; और इस युद्ध में न्याय, धर्म तथा सत्य अपनी ही ओर हैं, इस लिए यह युद्ध करते हुए चाहे जिसका और चाहे जितना नाश हो जाय, तथापि उसका दोष तुझ पर नहीं आ सकता। सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय, जीवन-मरण, आदि द्वन्द्वों के विषय में हर्ष-विषाद न मानते हुए, और फल की अपेक्षा न रखते हुए, कर्तव्य समझ कर, यदि तू यह युद्ध करेगा तो इसका पाप तुझे कुछ भी न लगेगा। अरे, युद्ध में मर जायगा तो स्वर्गसुख भोगेगा और विजय मिल गया तो राज्यसुख रखा ही है; इस लिए तू यह भ्रान्ति छोड़ दे और उठ; युद्ध का प्रारम्भ कर।" इत्यादि उपदेश से अर्जुन का सब मोह नष्ट हो गया और वे फिर युद्ध करने के लिए तैयार हुए। अब दोनों पक्षों की सेनाएं युद्ध करने के लिए भिड़ने ही वाली थीं कि, इतने में एक विचित्र घटना हुई। धर्मराज ने अपने शस्त्र और कवच रथ में रख दिया; और पैदल ही वे कौरवसेना की ओर चल दिये। अब निःशस्त्र होकर धर्मराज कौरवों की ओर क्यों जाते हैं, इसका रहस्य पांडवों को और उनकी ओर के अन्य राजाओं को बिलकुल ही न मालूम हुआ! अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण और

प्रकार उसकी निन्दा करने लगे कि, "अरे यह बिलकुल ही डरपोक है, क्षत्रिय होकर भी, युद्ध न करते हुए, शस्त्र नीचे रख कर, यह कौरवों के शरण आता है।" धर्मराज पहले पहल सीधे भीष्म के पास गये; और उनके चरणों पर मस्तक रख कर नम्रता के साथ बोले, "बाबा, मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं; हम तुमसे युद्ध करते हैं; इसके लिये हमें तुम्हारी अनुज्ञा चाहिए। हमें आप आशीर्वाद दीजिये।" वृद्ध और बड़ों के विषय में धर्मराज की यह पूज्यबुद्धि देख कर भीष्म बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने धर्मराज से कहा, "द्रव्य के योग से मैं कौरवों के पक्ष में बँध गया हूं; युद्ध को छोड़ कर दूसरा चाहे जो वर माँग।" उन्होंने भीष्म से कहा कि, "आप इस विषय में हमें सलाह दीजिए कि आप का वध कैसे होगा और आप को युद्ध में कैसे जीतना चाहिए?" भीष्म ने उत्तर दिया, "मैं जब तक शस्त्र लेकर लड़ता रहूंगा तब तक मुझे जीतने का अथवा मेरा वध करने का किसीका सामर्थ्य नहीं है। फिर कभी मिलने के लिए आओ, तब मैं तुझे इसका उपाय बतलाऊंगा।" यह सुन कर धर्मराज द्रोणगुरु के पास गये और उन्हें भी नमस्कार किया। उन्होंने भी जब प्रसन्न होकर वर देने कहा तब धर्मराज ने उनसे भी वही प्रश्न किया जो भीष्म पितामह से किया था। तब द्रोणाचार्य ने उत्तर दिया, "किसी मनुष्य के मुख से जब मैं दुष्ट वार्ता सुनूंगा तब मैं शस्त्र नीचे रख कर, समाधि लगा कर, बैठ जाऊंगा। उसी समय चाहे जो मुझे मार सकता है, अन्यथा, अन्य समय, कोई भी मेरा वध नहीं कर सकता।" इसके बाद युधिष्ठिर कृपाचार्य और शल्य के पास गये और उन्हें नमस्कार करके उनका आशीर्वाद लिया। तत्पश्चात् धर्मराज पांडवों सहित अपनी सेना की ओर लौटे। कौरवों की सेना से लौट कर, दोनों सेनाओं के बीच में खड़े होकर, धर्मराज ने कहा,

"युद्ध में हमें सहायता करने के लिए जिसे हमारे पक्ष की ओर आना हो वह अभी चला आवे।" उस समय 'युयुत्सु' कौरवों का पक्ष छोड़कर पांडवों की ओर चला आया। उसे लेकर पांडव अपनी सेना में आ पहुँचे—(भीष्मपर्व, अ० ४३)।

इसके बाद दोनों पक्षों की सेना में भेरी, मृदंग, शँख, दुंदुभी, इत्यादि की गंभीर ध्वनि शुरू हुई और हाथी, घोड़ों, आदि के शब्दों का एक बड़ा भारी कोलाहल मच गया। उस दिन तीसरे पहर दोनों सेनाएं, एक दूसरे से, भिड़ीं; और क्षणभर में सारी रणभूमि पर भीष्म और अर्जुन, सात्यकी और कृतवर्मा, भीम और दुर्योधन, युधिष्ठिर और शल्य के समान महान् योद्धाओं के रथ एक दूसरे से आ भिड़े। सम्पूर्ण कुरु-क्षेत्र में भयंकर रण-कोलाहल मच गया! इस प्रकार युद्ध हो रहा था; पर भीष्म के सामने कोई नहीं टिकता था। पहले पहल शल्य ने शक्ति फेंक कर विराट के पुत्र उत्तर का वध किया और इस महारणयज्ञकुंड में उसीकी पहली आहुति दी। श्वेत ने जब देखा कि, हमारा भाई मारा गया तब वह शल्य पर टूट पड़ा। उन दोनों का बहुत देर तक युद्ध होता रहा। शल्य मूर्छित होकर रथ में गिर पड़ा। यह देख कर भीष्म श्वेत पर चढ़ धाये। इन दोनों का बहुत देर तक घनघोर युद्ध होता रहा। अन्त में भीष्म ने अपने ब्रह्मास्त्रयुक्त बाण से श्वेत को रण में पतन कर दिया। यह देख कर कौरवों की सेना में आनन्द की प्रचण्ड ध्वनि हुई। इतने में संध्याकाल हो गया और दोनों सेनाएं युद्ध बन्द करके अपने अपने शिविर में लौट आयीं—(भीष्मपर्व, अ० ४४-४८)।

दूसरे दिन सुबह फिर युद्ध शुरू हुआ। आरम्भ ही में भीष्माचार्य ने

से जा भिड़ाया और दोनों वृद्ध-तरुण वीरों का घनघोर युद्ध शुरू हुआ। इसके सिवा, चारो ओर दोनों पक्षों के योद्धाओं का संग्राम हो ही रहा था। भीम ने कलिंग-सेना पर धावा किया और कलिंग का वध किया। भीष्म ने जब देखा कि, भीम, अपनी गदा से सारी कलिंग-सेना का संहार किये डालता है तब वे अर्जुन को इधर ही छोड़ कर अपना रथ उधर ले गये। भीम की सहायता के लिए सात्यकी भी आ गया। भीम ने अपनी गदा से भीष्म के सारथी को मार डाला; त्योंही उनके रथ के घोड़े अनिवार्य हो गये और भीष्म को रथ-सहित रण के बाहर ले गये। इधर दुर्योधन आदि वीर अकेले अभिमन्यु को घेर कर उसके साथ युद्ध कर रहे थे। अर्जुन उसकी सहायता के लिए गये और सब कौरवसेना का संहार शुरू किया। उनके बाणों से जर्जर होकर सब कौरव-सेना दशों दिशाओं में भगने लगी। इतने ही में सूर्य अस्त हो गया और युद्ध बन्द होने पर, दोनों ओर के सब योद्धा शिबिरों में लौट आये—(भीष्मपर्व, अ० ४९-५५)।

तीसरे दिन सुबह कौरवों ने अपनी सेना का गरुड़व्यूह और पांडवों ने अर्धचन्द्रव्यूह रच कर युद्ध शुरू किया। भीष्म की बाणवृष्टि के आगे पांडवों की सेना का कोई उपाय न चलने लगा। तब अर्जुन फिर आगे बढ़े और कौरवसेना पर रथ भिड़ा कर उन्होंने उसको छिन्नभिन्न करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार एक बार कौरवसेना और एक बार पांडव-सेना, क्रम क्रम से, विजयी और पराभूत होने लगी। इतने में श्रीकृष्ण ने जब देखा कि, ऐसे संकुल युद्ध से लड़ाई का अन्त नहीं होता तब उन्होंने अर्जुन का रथ भीष्म के रथ से जा भिड़ाया और दोनों का द्वन्द्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ। यद्यपि भीष्म की ओर से अर्जुन पर बराबर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों की वर्षा हो रही थी तथापि वे, क्षत्रियों का कर्तव्य भूल कर, भीष्म

से कुछ सौम्यता के साथ युद्ध करते थे। यह देख कर, अर्जुन के मन को लजाने के लिए, श्रीकृष्ण खुद ही हाथ में चक्र लेकर और रथ से नीचे उतर कर भीष्म की ओर दौड़े। भीष्म ने समझा कि, हमारा वध करने के लिए स्वयं श्रीकृष्ण ही हमारे पास आ रहे हैं, अतएव यह, श्रीकृष्ण ने हमारा बड़ा मान किया। वे बोले, "श्रीकृष्ण, आओ, और मुझे अपने हाथ से मार डालो। तेरे हाथ से यदि मेरा वध होगा तो उससे मेरा इहलोक और परलोक दोनों में कल्याण ही होगा।" इधर अर्जुन ने जब देखा कि, श्रीकृष्ण अपनी प्रतिज्ञा छोड़ कर हमें लज्जित करने के लिए भीष्म के रथ की ओर जा रहे हैं तब रथ से नीचे कूद कर उन्होंने श्रीकृष्ण को पकड़ लिया और कहने लगे, "अच्छा, अब मैं मन से गहरा युद्ध करता हूं। मैं अपने भाइयों और पुत्रों की शपथ लेकर कहता हूं कि, अब मैं तुमुल युद्ध करके कौरवों का नाश करता हूं।" यह सुन कर श्रीकृष्ण रथ पर आ बैठे; और फिर युद्ध शुरू हुआ। वह युद्ध वैसा ही संध्याकाल तक होता रहा। सूर्यास्त होने पर सब सेनाएं अपनी अपनी छावनियों में लौट आईं—(भीष्मपर्व, अ० ५६–५९)।

चौथे दिन भी भीष्म और अर्जुन, सात्यकी और भूरिश्रवा, भीम और दुर्योधन के समान युग्मवीरों के गम्भीर द्वन्द्व युद्ध शुरू हुए। धृष्टद्युम्न के साथ राजा सांयमनि के पुत्र का युद्ध हुआ। धृष्टद्युम्न ने गदा से उक्त राजपुत्र का वध करके रणभूमि में गिरा दिया। आगे संध्याकाल तक के युद्ध में भीम ने अतिशय पराक्रम दिखलाया और शत्रुओं का बहुत नाश किया। सूर्यास्त के बाद युद्ध बन्द हुआ और दोनों सेनाएं शिविर में ...

मदद देने के लिए भी वे जाते रहे। इस प्रकार सायंकाल तक रणभूमि में संकुल युद्ध होता रहा। इसके बाद सात्यकी, दस पुत्रों और भूरिश्रवा में घनघोर युद्ध हुआ। अन्त में भूरिश्रवा ने सात्यकी के दसों पुत्रों के शिरकमल बाणों से उड़ा दिये। छठवें दिन भी ऐसा ही तुमुल युद्ध हुआ और दुर्योधन तथा भीम के रथ एक दूसरे से जा भिड़े; भीम ने एक बाण से उसका छत्र और दूसरे से उसका ध्वज तोड़ कर धूल में गिरा दिया, और तीसरे बाण से उसे रथ पर मूर्छित कर दिया। सातवें दिन संकुल युद्ध नहीं हुआ; किन्तु उभय पक्ष के बराबरवाले वीरों अपने रथ शत्रु के रथों से भिड़ा कर सायंकाल तक द्वन्द्वयुद्ध किये। इन युद्धों में किसी पक्ष को भी विशेष जय नहीं प्राप्त हुआ, और न किसी पक्ष का कोई योद्धा ही पतन हुआ। सायंकाल के लगभग पांडवपक्ष के सब मुख्य महारथियों ने भीष्म पर एकदम ही धावा किया; तथापि भीष्म के शौर्य और पराक्रम को वे नहीं रोक सके। अन्त में पांडवों ने शिखंडी को आगे करके भीष्म को दूसरी ओर जाने के लिए बाध्य किया—(भीष्मपर्व, ६०-८६)।

आठवें दिन भी बड़ा गहरा संग्राम हुआ। उस दिन अकेले भीम ही ने सुनाम, अपराजित, कुंडधार, पंडित, विशालाक्ष, महोदर, आदित्यकेतु, बह्वाशी, इत्यादि, धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार डाला। कौरवों की ओर के आर्षशृंगी नामक राक्षस और अर्जुन के इरावत् नामक एक पुत्र में युद्ध शुरू हुआ। राक्षस ने अन्त में अपने शत्रु का शिर तलवार से उड़ा दिया। इसके बाद पांडवों का तरफ़ के राक्षसवीर घटोत्कच के साथ कौरवों की राक्षससेना का युद्ध हुआ। उसमें घटोत्कच ने सब सेना को पराभूत किया। उस दिन कौरवों के योद्धा भगदत्त ने भी बहुत पराक्रम दिखलाया और पांडवों की बहुत सेना मार डाली—(भीष्मपर्व, अ० ८७-९६)।

दुर्योधन ने जब देखा कि, भीष्म-द्रोण के समान योद्धा, ग्यारह अक्षौहिणी सेना के साथ, आठ दिन से लड़ रहे हैं; तिस पर भी पांडवों की ओर का एक भी महारथी पतन नहीं हुआ तब उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह कर्ण से मिला और इस विषय में सलाह पूछी। अन्त में दोनों ने निश्चित किया कि भीष्म, द्रोण, कृप, शल्य और सोमदत्ती पांडवों की ओर अधिक झुकते हैं; इस कारण वे मन से युद्ध न करते होंगे अथवा पांडवों को जीतने का उनमें सामर्थ्य न होगा; इन दो कारणों के सिवाय, उनके ठीक तौर से युद्ध न करने का, और कोई तीसरा कारण नहीं हो सकता। इसके बाद कर्ण ने दुर्योधन को यह भड़ी दे दी कि, "चाहे जिस उपाय से हो, तू भीष्म से युद्ध बन्द करा दे और फिर पांडवों के वध करने का कार्य मुझको सौंप दे। ऐसा करने से मेरा पराक्रम तुझे मालूम हो जायगा।" इससे दुर्योधन भीष्म के पास जा-कर बोला, "तुम्हारे ही भरोसे पर हमने पांडवों से युद्ध शुरू किया है; पर अभी तक तुमने कोई भी पराक्रम नहीं दिखलाया। पांडवों का वध करने में यदि तुम्हें दया आती हो अथवा मेरा दुर्भाग्य विघ्न डालता हो तो कर्ण को आज्ञा दो। वह पांडवों की अच्छी तरह खबर लेगा।" यह सुन कर भीष्म को अपनी परवशता पर और दुर्योधन की कृतघ्नता पर बहुत दुःख और सन्ताप हुआ। उन्होंने दुर्योधन को अर्जुन के पराक्रम की याद दिलाई और गोग्राहण आदि मौकों पर घमंडी कर्ण ने जो पराक्रम दिखलाया उसकी याद दिलाई। इसके बाद उन्होंने प्राण जाने तक युद्ध करने का वचन देकर दुर्योधन को विदा किया।

ने बड़ा पराक्रम किया। दो पहर के बाद युद्ध और भी अधिक वेग से होने लगा। कौरवों की तरफ़ से भीष्म, द्रोण, सुशर्मा आदि योद्धाओं ने और पांडवों की तरफ़ से अर्जुन, भीम आदि महा वीरों ने एक दूसरे की सेना का खूब संहार किया। संध्याकाल के क़रीब श्रीकृष्ण ने कुछ अधिक ज़ोर से लड़ने के लिए अर्जुन को इशारा दिया और उनका रथ भीष्म के रथ पर लगाया। उस युद्ध में भी भीष्म पर बाणों की वृष्टि करने में अर्जुन फिर घबड़ाने लगे। यह देख कर श्रीकृष्ण स्वयं तुरन्त ही फिर सिर्फ चाबुक ही लेकर भीष्म की, रथ की, ओर दौड़े। उस समय भीष्म ने, बड़े आनन्द और उत्सुकता से, कहा:—

एह्येहि पुंडरीकाक्ष देवदेव नमोस्तु ते ।
प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चानघ ॥

इतने में अर्जुन ने, पीछे से आकर, श्रीकृष्ण को रथ की ओर लौटा लिया और कहा, "श्रीकृष्ण, तूने जो प्रतिज्ञा की है उसे भंग न करना चाहिए। यदि प्रतिज्ञा भंग करके तू युद्ध करेगा तो लोग तुझे असत्यवादी कहेंगे; और उसका सब दोष मुझ पर आवेगा। श्रीकृष्ण, मैं अपने शस्त्रों की, सत्य की और अपने सत्कृत्यों की शपथ लेकर कहता हूं कि मैं शत्रुओं के साथ वेग से लडूंगा और (हनिष्यामि पितामहं) अपने भीष्म बाबा का वध करूंगा।" यह सुन कर श्रीकृष्ण रथ पर आ गये; और फिर अर्जुन तथा भीष्म का सूर्यास्त तक भयंकर युद्ध हुआ। दिन डूबने पर सब सेना पूर्ववत् शिबिर को लौट आई—(भीष्मपर्व, अ० ९७–१०६)।

अपने शिबिर में लौट आने पर उस रात को पांडवों की बात चीत हुई। धर्मराज को इस बात पर बड़ा खेद हुआ कि, नव दिन से बराबर युद्ध हो रहा है; तथापि अर्जुन एक बार

भी भीष्म का पराभव या वध नहीं करता: उलटे वे ही हमारी सब सेना का बराबर संहार कर रहे हैं; हमें राज्य प्राप्त कर देने के लिए हमारे बांधवों को अवश्य व्यर्थ ही कष्ट हो रहा है इस पर श्रीकृष्ण ने कहा कि, " भीष्म तथा अन्य सब कौरवों को मैं अकेला ही मार डालता हूं; सिर्फ तेरी आज्ञा चाहिए। " परन्तु धर्मराज को यह बात प्रशस्त न मालूम होती थी कि, श्रीकृष्ण ने युद्ध न करते हुए सहायता करने की जो प्रतिज्ञा की है वह हमारे ही द्वारा भंग कराई जाय। पहले दिन युद्ध शुरू होने के पूर्व युधिष्ठिर जब भीष्म को नमस्कार करने के लिए गये थे तब उन्होंने कहा था कि फिर मिलने के लिए आना। उसके अनुसार धर्मराज ने सूचना दी कि अब भीष्म के पास जाकर उनके वध का और विजय प्राप्त करने का उपाय उनसे पूछना चाहिए। यह सलाह श्रीकृष्ण आदि सब को पसन्द पड़ी और उस रात में पांच पांडव और छठे श्रीकृष्ण, कवच न पहन कर और शस्त्र न लेकर, भीष्म के शिबिर में गये। भीष्म ने उन सब का स्वागत करके आने का कारण पूछा। तब युधिष्ठिर बोले, " हमें जय कैसे मिलेगा, सो उपाय बताओ। " भीष्म ने कहा, " मैं जब तक युद्ध करता हूं तब तक तुम्हें जय कभी न प्राप्त होगा; इस लिए मेरा वध करने का सब से पहले तुम प्रयत्न करो! " धर्मः—" अपने वध ही का उपाय बताओ। " भीष्मः—मुझे युद्ध में जीतने के लिए अथवा मेरा वध करने के लिए कोई भी समर्थ नहीं है। क्षत्रियधर्म के अनुसार मैं स्त्रियों से कभी युद्ध नहीं करता। तुम्हारी सेना में शिखंडी पहले स्त्री था; अब पुरुष हो गया है। इस लिए मैं उस पर शस्त्र न उठाऊंगा। उसे आगे करके यदि अर्जुन मुझ पर लगातार बाण छोड़ेगा तो मेरा वध होना सम्भव है। अन्यथा नहीं। " भीष्म का यह कथन सुन कर अर्जुन का अन्तःकरण दुःख

और लज्जा से भर गया। उन्होंने सोचा कि हमारे बाप के बाद भीष्म ने ही हमारा पालन-पोषण किया और भीष्म ही सब कुरुकुल के पितामह हैं; जिन्होंने हमारे पिता का भी पुत्र की तरह पालन-पोषण किया उनका इस प्रकार से वध करना अत्यन्त निन्दनीय है। फिर उन्होंने कहा, "चाहे हमारी सब सेना मर जाय या बच जाय, चाहे हमारा जय हो चाहे पराजय हो, मेरा वध हो चाहे न हो; धर्मराज को राज्य मिले अथवा न मिले; मैं इस प्रकार से भीष्म को नहीं मार सकता।" अर्जुन का यह भाषण सुन कर श्रीकृष्ण ने उन्हें उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलाई और कहा कि एक बार की हुई प्रतिज्ञा का भंग करना क्षत्रियों का धर्म नहीं है। बिना भीष्म का पराजय हुए जय कभी नहीं मिल सकता और भीष्म की बतलाई हुई युक्ति का अवलम्बन किये बिना उनका पराजय नहीं हो सकता। इस लिए उनके कहने के अनुसार ही चलना आवश्यक है। यह श्रीकृष्ण का उपदेश सुन कर अर्जुन का समाधान हो गया। इसके बाद भीष्म की आज्ञा पाकर सब लोग अपने शिविर को लौट आये—(भीष्मपर्व, अ० १०७)।

दसवें दिन सुबह शिखंडी का रथ और उसकी सेना आगे करके पांडव शिविर से बाहर निकले। दोनों सेनाएं जब आमने-सामने आ भिड़ीं; तब सब रणभूमि पर चारों ओर से युद्ध प्रारम्भ हुआ। कौरवपक्ष की ओर से भीष्म, द्रोण, कृप, भगदत्त, शल्य, दुर्योधन, दुःशासन और पांडवों की ओर से अर्जुन, भीम, अभिमन्यु, सात्यकी, इत्यादि रथी-महारथियों ने अपने पराक्रम की पराकाष्ठा कर दी। आज के अन्तिम दिन में भीष्म की शूरता और पराक्रम का पारावार ही न रहा। शिखंडी और उसके पीछे चलते हुए अर्जुन को छोड़ कर

उनके सामने और कोई तीसरा ठहर ही नहीं सका। भीष्म को आगे करके, और पीछे से उनकी रक्षा करते हुए, दुर्योधन आदि कौरववीर युद्ध कर रहे थे; और शिखंडी को आगे करके पांडवों के योद्धा लड़ रहे थे। दोनों ओर की, और ख़ास कर पांडवपक्ष की बहुत सी, सेना उस दिन रणभूमि में काम आई। भीष्म ने विराट के भाई शतानीक का उसी दिन वध किया। संध्याकाल के करीब पांडवों के सब बड़े बड़े वीरों ने भीष्म के रथ पर चारो ओर से एकदम धावा किया। अर्जुन ने भीष्म के आसपास के सब वीरों को जर्जर कर डाला और इसके बाद, बड़ी ख़ूबी के साथ, उन्होंने लगातार भीष्म के अनेक धनुष तोड़ डाले। इधर शिखंडी आदि अन्य वीर भीष्म पर बराबर बाण-वर्षा कर रहे थे। उनका कवच भेद कर उनके शरीर में इतने बाण घुस गये थे कि घावों से रहित दो अंगुल जगह भी उनके शरीर में बाकी न थी। भीष्म ने सोचा कि हमारा कर्तव्य पूरा हो चुका; और हमारा जन्म सार्थक हो गया; अब हमारी मृत्यु के लिए यही समय उचित है। इसके बाद उन्होंने अपना अन्तःकरण युद्ध से कुछ कुछ पराङ्मुख किया। अर्जुन ने लगातार बाण-वर्षा करके भीष्म का ध्वज तोड़ कर गिरा दिया; उनके धनुष तोड़ डाले; और उनके सारथी को मार डाला। इस प्रकार जब सब शस्त्र और धनुष नष्ट हो गये तब हाथ में ढाल तलवार लेकर भीष्म रथ से नीचे उतरने लगे। इतने में अर्जुन ने अपने बाणों से उनकी ढाल तलवार के टुकड़े कर डाले। यह देख कर पांडव-सेना ने प्रचण्ड जयघोष किया और अर्जुन आदि वीरों ने अधिक वेग से शस्त्रास्त्रों की वर्षा की। अन्त में जब भीष्म के शरीर में हज़ारों बाण लगे तब वे व्याकुल होकर रथ से नीचे गिर पड़े। इनके शरीर में इतने बाण लगे थे कि उनका शरीर पृथ्वी में गिरते समय बाणों ही के सिरों पर सध गया।

भीष्म जिस समय भूमि पर गिरे उस समय उन्होंने देखा कि उनका सिर पूर्व की ओर है और अस्त होता हुआ सूर्य दक्षिणायन में है। यह जान कर कि, दक्षिणायन में मृत्यु होना ठीक नहीं है, उन्होंने अपने इच्छामरण-वर के प्रभाव से और योगबल से, सूर्य उत्तरायण में आने तक, वैसे ही अपने प्राण धारण करने का निश्चय किया, भीष्म के पतन होने का समाचार दुःशासन ने जाकर द्रोणाचार्य से बतलाया; उस समय कौरवसेना में एकदम हाहाकार मच गया! तुरन्त ही युद्ध बन्द हो गया और दोनों ओर के योद्धा, अपने अपने कवच निकाल कर और शस्त्र छोड़ कर उस बलवान् वृद्ध वीर के अन्तिम दर्शन करने के लिए आये। भीष्म जब वीरोचित शरशय्या पर पड़े थे तब उनका सिर कुछ नीचे लटकने लगा इस लिए उन्होंने तकिया मांगी। दुर्योधन आदि ने उसी समय नरम नरम तकियां मगवाईं! परन्तु वे तकियां ऐसी न थीं जो रणभूमि पर बाणों के बिछौने के लिए शोभा देतीं; इस लिए भीष्म ने अर्जुन से तकिया माँगी। उन्होंने अपना शोक रोक लिया; और तीन बाण निकाल कर तथा उन्हें अभिमंत्रित करके उनकी गर्दन के नीचे, तकियों की तरह मार दिये! यह देख कर भीष्म बहुत प्रसन्न हुए और सब की ओर देख कर उन्होंने सब से कहा, "क्षत्रियों को, रणभूमि पर प्राण छोड़ने के लिए, इसी प्रकार की शय्या पर सोना चाहिए।" उनके शरीर से बाण निकाल कर घावों में औषधि आदि लगाने के लिए कुशल शस्त्रवैद्य वहां आये; परन्तु भीष्म ने उनसे कोई उपचार नहीं कराया और उन्हें सन्मानपूर्वक बिदा किया।

दूसरे दिन सुबह, युद्ध प्रारम्भ होने के पहले, सब योद्धा भीष्म के पास आये। उस समय घावों की वेदना से उनके प्राण व्याकुल थे और उन्हें प्यास लगी थी। उन्होंने जब पानी मांगा तब दुर्योधन ने कुछ लोगों से ठंढा पानी और खाने के

भूमि से स्वच्छ पानी की धार ऊपर उठने लगी। (पृ० २२५)

कुछ पदार्थ मँगवाये। परन्तु उन्होंने यह कह कर अर्जुन की ओर देखा कि, "मुझे अब ये ऐहिक भोग नहीं चाहिए; मैं मनुष्यों से अलग होकर बाणों की शय्या पर पड़ा हूं। इस लिए तुम में से कोई वीर ऐसा पानी मुझे दे जो इस स्थिति के योग्य हो।" इस पर अर्जुन ने पास आकर उन्हें नमस्कार किया और एक बाण पर्जन्यास्त्र से अभिमंत्रित करके, भीष्म की दाहिनी ओर पृथ्वी में छोड़ दिया। तुरन्त ही वहां से स्वच्छ पानी की एक धार ऊपर उड़ने लगी। अर्जुन का यह कौशल और यह अस्त्रविद्या देख कर सब को आश्चर्य और कौतुक हुआ। भीष्म जब उस धार का पानी पी कर तृप्त हुए तब अर्जुन के पराक्रम की और अस्त्रविद्या-कौशल की प्रशंसा करके उन्होंने उस समय भी इस प्रकार का उपदेश किया कि, "जब तक अर्जुन योद्धा और उसके सहायक श्रीकृष्ण हैं तब तक कौरव जीत नहीं सकते। इस लिए युद्ध में हमारी मृत्यु की ही हानि सह कर पांडवों से सुलह कर लो और उनका आधा राज्य उन्हें लौटा दो।" परन्तु भीष्म का यह उपदेश भी पहले ही की तरह निष्फल हुआ। कुछ देर बाद कर्ण भी उनके दर्शन के लिए आया और उन्हें नमस्कार करके तथा आखों में आंसू भर कर बोला, "जिसका आप सदा द्वेष करते थे वही यह राधेय आपको नमस्कार करता है।" यह सुन कर भीष्म ने उसकी ओर दृष्टि की और प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ फिरा कर बोले, "कर्ण, मैं सदा जो तेरी निन्दा किया करता था उसका कारण यही है कि आपस में कलह न होना चाहिए। तू पांडवों का बिना कारण द्वेष करता था; और तेरे ही कारण दुर्योधन ने इस युद्ध के करने का साहस किया है। तेरा पराक्रम और शौर्य मैं कम नहीं समझता। तेरी और अर्जुन की योग्यता बराबर ही है। परन्तु मैं तेरे पराक्रम की अवहेलना इस हेतु से करता रहता था कि, जिससे इस

भारतकुल का नाश न हो। मेरे मन में तेरे विषय में द्वेषभाव बिलकुल नहीं है। कर्ण, तू राधेय नहीं कौंतेय है; तू ही पांडवों से सख्य करने का प्रयत्न कर," परन्तु सत्यप्रिय और कर्तव्य दक्ष कर्ण ने यह नहीं माना। उसने उत्तर दिया, "दुर्योधन के लिए तन, मन, धन, घर-द्वार और राज्य तक अर्पण करना मेरा कर्तव्य है। इसके सिवा छुटपन से, मेरा अर्जुन से जो वैर हो गया है वह ऐसे सख्य से दूर भी नहीं हो सकता। अतएव पांडवों के साथ मुझे युद्ध ही करना चाहिए। इसके लिए मुझे आपकी अनुज्ञा चाहिए।" इस पर भीष्म ने उत्तर दिया,-"जा, तू यथाशक्ति और यथोत्साह युद्ध कर। परन्तु युद्ध करते समय मन में द्वेष या बदला लेने की बुद्धि को स्थान मत देना।" इस प्रकार जब आपस का वैमनस्य दूर हो गया तब भीष्म की आज्ञा लेकर कर्ण रथ में बैठा और युद्ध के लिए चला-(भी॰ प॰, अ॰ १०८-१२२)।

आठवाँ प्रकरण ।

घनघोर युद्ध ।

भारतकुल के सब से बड़े और सब में पराक्रमी वीर भीष्म उत्तरायण की बाट देखते हुए शर-पंजर में पड़े थे; उन्हें वहां वैसा ही छोड़कर कौरव-पांडव सेनाएं पुनरपि युद्ध को तैयार हुईं। अब दुर्योधन आदि लोग इस विचार में पड़े कि, अब भीष्म के बाद कौरव-सेना का आधिपत्य किसको दिया जाय। सब ने समझा कि भीष्म के बाद उनकी बराबरी का अकेला कर्ण ही इस काम के योग्य है।

परन्तु कर्ण ने कहा कि, सब मुख्य मुख्य वीरों को धनुर्विद्या की शिक्षा देनेवाले गुरु द्रोणाचार्य भीष्म के बाद सेनापति बनाये जायँ। यह सलाह सब को पसन्द पड़ी और द्रोण को सेनापति का अभिषेक किया गया। द्रोण ने दुर्योधन से वर माँगने के लिए कहा। तब उसने यह वर माँगा कि, "युधिष्ठिर को मुझे जीता पकड़ दो।" द्रोणगुरु ने जब देखा कि, दुर्योधन धर्मराज का वध नहीं करना चाहता तब वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उससे कहा कि, "धर्मराज का 'अजातशत्रु' नाम बहुत ही ठीक है। यह बहुत ही अच्छी बात है जो उसका वध करना तुझे भी पसन्द नहीं है। तू जो युधिष्ठिर का वध नहीं चाहता उसका कारण यह तो नहीं है कि पांडवों को युद्ध में जीत कर और इस प्रकार उन्हें अपना पराक्रम दिखा कर फिर उनका राज्य उन्हें लौटा दिया जाय और सुलह कर ली जाय?" द्रोण के इस प्रश्न पर कुटिल दुर्योधन ने यह उत्तर दिया, "युद्ध में धर्मराज का वध करने से हमारा सच्चा जय नहीं होगा। उसे यदि लड़ाई में मार डालेंगे तो पांडव उसका बदला लेंगे। परन्तु उसे जीता पकड़ कर कैद कर लेने से और फिर द्यूत में पराजित करके पांडवों को वन में भेज देने से जो हमारा जय होगा वही दीर्घकाल टिकनेवाला सच्चा जय है!" उस समय द्रोण ने कहा, कि "जब तक धर्मराज के पास अर्जुन है तब तक उसे कैद करना असम्भव है; अर्जुन यदि कुछ समय के लिए उससे दूर हो जाय तो फिर धर्मराज को कैद करने में मुझे देर न लगे।" कौरवों के शिविर की यह सलाह गुप्तचरों से पांडवों को मालूम हो गई। तब अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा करके सब का भय दूर किया,—"कुछ भी हो यद्यपि मैं द्रोणाचार्य का वध न करूंगा, तथापि जब तक मैं जीवित हूं तब तक युधिष्ठिर को मैं शत्रुओं के हाथ में न जाने दूँगा।" इसके बाद दोनों पक्षों के सेनापतियों ने व्यूहरचना

करके युद्ध प्रारम्भ किया। कुरुक्षेत्र के मैदान में शीघ्र ही दोनों पक्षों के मुख्य मुख्य वीरों के रथ एक दूसरे से भिड़ गये और द्वन्द्वयुद्ध शुरू हुए। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने उस दिन बहुत ही पराक्रम किया और पारव, जयद्रथ, शल्य, इत्यादि बड़े बड़े वीरों का पराभव किया। भीम और शल्य का भयंकर गदा-युद्ध हुआ। अन्त में जब शल्य बेहोश होकर गिर पड़ा तब कृतवर्मा उसे अपने रथ में डाल कर रणांगण से दूर ले गया। द्रोणाचार्य ने जब देखा कि, कौरवसेना पराभूत हुई तब उन्हों-ने अपना रथ धर्मराज की सेना पर लगाया। उस समय शिखंडी और नकुल आदि धर्मराज की रक्षा कर रहे थे। द्रोणाचार्य ने इनका पराभव किया और सिंहसेन तथा व्याघ्र-दत्त नामक पांचाल-वीरों का वध करके उन्होंने अपना रथ धर्मराज के रथ से जा भिड़ाया। यह देख कर कौरवसेना में एकदम आनन्द का जयघोष हुआ। दुर्योधन ने समझ लिया कि, द्रोणगुरु अब धर्मराज को कैद करके लाने ही वाले हैं। पांडवसेना ने जब देखा कि युधिष्ठिर अब शत्रु के हाथ में फँसते हैं तब वह अधिक वेग से लड़ने लगी। इतने ही में अर्जुन का रथ, जो स्वच्छ शुभ्र अश्वों से और कपिध्वज से सुशोभित था, विद्युल्लता के समान वेग से, कौरवसेना का विध्वंस करता हुआ वहां आ पहुँचा। उस समय अर्जुन ने असंख्य बाणों की भारी वर्षा की और अपना अतुल अस्त्र-प्रभाव दिखला कर कौरवसेना का सत्यानाश कर डाला, इतने में सूर्य अस्त होने का समय आ गया और सेनापतियों की आज्ञा से युद्ध बन्द हुआ। इसके बाद दोनों दल अपने अपने शिविरों को लौट गये—(द्रोणपर्व, अ० १-१६)।

उस रात को कौरवों में यह विचार उपस्थित हुआ कि, दूसरे दिन अर्जुन को दूसरी ओर युद्ध में कौन और कैसे फँसावे। उस समय त्रिगर्तों के राजा सुशर्मा और उसके पाँच

भाइयों ने यह घोर प्रतिज्ञा की कि, बिना अर्जुन का वध किये हम न लौटेंगे। इसके अनुसार दूसरे दिन उन्होंने और संशप्तक योद्धाओं ने अर्जुन को युद्ध के लिए ललकारा। क्षत्रिय-धर्म के अनुसार अर्जुन इसके लिए इन्कार नहीं कर सके और धर्मराज की रक्षा करने का काम सात्यकी को सौंप कर वे संशप्तकों से युद्ध करने के लिए चले गये। संशप्तक-सेना अर्धचन्द्राकार व्यूह रच कर खड़ी थी। अर्जुन ने उस पर आक्रमण करके युद्ध शुरू किया। और सुधन्वा नामक वीर को उन्होंने तुरंत ही मार डाला। इधर अर्जुन तो संशप्तकों से युद्ध कर रहे थे और उधर द्रोण तथा युधिष्ठिर की सेनाएं आपस में भिड़ गई। धर्मराज को जीता पकड़ने के लिए द्रोण आदि कौरववीर वेग से युद्ध करने लगे। द्रोणाचार्य ने उस दिन अतुल पराक्रम दिखला कर पांचाल-वीर सत्यजित्, विराटपुत्र शतानीक और वसुदान आदि अनेक रथियों का वध किया। इस प्रकार मत्स्य और पांचाल सेनाओं को सत्यानाश करते हुए द्रोण का रथ ज्यों ज्यों युधिष्ठिर के रथ के पास आने लगा त्यों त्यों युद्ध अधिक भयंकर होता गया और रणांगण भर में घनघोर संग्राम मच गया। भगदत्त ने, अपनी गजसेना के साथ, भीमसेन पर हमला किया। उनका बहुत देर तक युद्ध होता रहा। इसके बाद रथ से नीचे उतर कर भीमसेन ने गदा से ही भगदत्त की गजसेना का विध्वंस शुरू किया। धर्मराज के रथ के आस-पास जमा हुए हाथियों की गर्जना सुन कर और धूल के बादल उड़े हुए देख कर, धर्मराज की रक्षा के विषय में अर्जुन के मन में चिन्ता उत्पन्न हुई। अब उन्हें यही न सूझने लगा कि, संशप्तकों के साथ ऐसा ही युद्ध करते रहें या धर्मराज की रक्षा के लिए जायँ; परन्तु अन्त में संशप्तकों का ही पूर्ण पराभव करने का निश्चय करके उन्होंने और भी अधिक जोर से युद्ध करना शुरू किया; और शीघ्र ही

त्रिगर्तों के राजा सुशर्मा और उसके पाँच भाइयों को यमसदन भेज दिया। इसके बाद तुरंत ही अर्जुन का रथ, वायुवेग से, युधिष्ठिर की सेना की ओर दौड़ता हुआ आने लगा। यह देख कर भगदत्त ने अपनी गजसेना, भीम के सामने से हटा कर, अर्जुन पर लगाई। भगदत्त के मदोन्मत्त हाथियों के हल्लों से बच कर श्रीकृष्ण ने बड़ी चतुराई से रथ चलाया; और अर्जुन ने बाणों की वृष्टि से हाथियों की सेना का संहार किया। अन्त में, निर्वाण का प्रसंग देख कर, भगदत्त ने हाथ का अंकुश 'वैष्णवास्त्र' से अभिमंत्रित करके अर्जुन पर छोड़ दिया; उसे श्रीकृष्ण ने, अर्जुन से बचा कर, अपनी ही छाती पर ले लिया। तुरंत ही वह अंकुश कमलों की वैजयन्ती माला बन गया और वह माला श्रीकृष्ण के गले में लटकने लगी। अर्जुन ने जब देखा कि इस अस्त्र का निवारण करने में मैं असमर्थ नहीं था; तथापि श्रीकृष्ण बीच में आये तब उन्होंने श्रीकृष्ण को दोष दिया। तब श्रीकृष्ण ने यह बतलाया कि यह अस्त्र पहले पहल श्रीविष्णु की ओर से पृथ्वी के पास और इसके बाद पृथ्वी के पुत्र नर के पास और उससे भगदत्त के पास आया है। मुझको छोड़ कर इसे और कोई भी नहीं रोक सकता था। अस्तु; यह अस्त्र जब तक भगदत्त के पास था तब तक उसका वध होना असम्भव था; पर उसके निकल जाते ही अर्जुन ने भगदत्त को और उसके हाथी को अर्धचन्द्र बाण से तुरन्त ही मार डाला। इसके बाद गांधारसेना ने अर्जुन पर धावा किया। उससे युद्ध करके अर्जुन ने दुर्योधन के मामा वृषक और अचल को यमलोक पहुँचाया तथा शकुनी को रण से भगा दिया। अब सूर्यास्त का समय समीप ही आ पहुँचा था, तथापि दुर्योधन, भीम, सात्यकी, धृष्टद्युम्न, कर्ण, अर्जुन, इत्यादि वीरों ने युद्ध बराबर वैसा ही जारी रक्खा। उसमें अश्वत्थामा ने पांडवों के नील नामक योद्धा का वध

किया। इस प्रकार यह भयानक युद्ध होते होते सूर्य अस्त हो गया और धीरे धीरे रणभूमि पर अंधकार फैलने लगा; तब युद्ध बन्द हुआ और दोनों सेनाएं अपनी अपनी छावनी में लौट आईं—(द्रोणपर्व, अ० १७–३२)।

द्रोणाचार्य के सेनापति होने के बाद तीसरे दिन का युद्ध तो बहुत ही घनघोर हुआ। उस दिन तरुण अभिमन्यु ने अतुल पराक्रम प्रकट करके, कौरवों के अनेक योद्धाओं का वध किया। आरम्भ में सेना की चक्रव्यूहरचना करके द्रोणाचार्य ने कर्ण, दुःशासन, कृप, आदि के साथ दुर्योधन को व्यूह के मध्यभाग में रखा और स्वयं आप व्यूह के मुख पर खड़े हुए। उनके आसपास लाल रंग की पोशाक पहने हुए और रक्तध्वजवाले सूर्यवंशी योद्धा लक्ष्मण के साथ खड़े थे। पूर्व दिवस की तरह संशप्तक अर्जुन को युद्ध के लिए ललकार कर दूर ले गये। इधर धर्मराज इस चिन्ता में पड़े कि चक्रव्यूह की रचना कौन तोड़ेगा, अर्जुन, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न और अभिमन्यु को छोड़ कर इस व्यूह के तोड़ने की कला और किसीको भी अवगत न थी। इस लिए चक्रव्यूह में प्रवेश करने के विषय में धर्मराज ने अभिमन्यु को आज्ञा दी। तब अभिमन्यु बोला, "मैं व्यूह को भेद कर, आपके आशीर्वाद से, भीतर चला जाऊंगा; पर मैं वहां से लौट नहीं सकूंगा।" परन्तु भीमादि योद्धाओं ने उसके पीछे पीछे व्यूह में प्रवेश करने का उसे वचन दिया तब उस बालवीर ने, बड़े आनन्द से, धर्मराज की यह आज्ञा शिर पर धारण की और द्रोण की सेना पर अपना रथ ले जाकर लगाने के लिए उसने अपने सारथी सुमित्र को आज्ञा दी। जाते जाते ही उसने द्रोण आदि महारथियों का पराभव किया और व्यूह भेद कर सारी सेना पर लगातार बाणों की वर्षा शुरू कर दी। तथा शल्य को मूर्छित करके उसके भाई का सिर उड़ा दिया। फिर जब दुःशासन ने उस पर धावा

किया तब उसने उस दुष्ट को सभा की विटम्बना और मर्म-
भेदी बोलों का स्मरण दिलाया और उस पर एक ही अमोघ
बाण छोड़ कर, अभिमन्यु ने, उसे मूर्छित कर दिया ! इसके बाद
कर्ण उस पर चढ़ धाया, उसका भी उस वीर बालक ने पराभव
किया और उसके छोटे भाई को यमलोक पहुँचाया ! आगे
अभिमन्यु और उसके पीछे अन्य पांडववीर, इस प्रकार कौरव-
सेना में प्रवेश करके, लगातार संहार करते हुए, उन्होंने कौरव
सेना को भगा दिया । इतने ही में सिंधुराज जयद्रथ ने बड़े
वेग से अभिमन्यु पर धावा किया और पूर्व में प्राप्त किये हुए
वर के जोर पर, अभिमन्यु को छोड़ कर, अन्य सब पांडव वीरों
को रोक लिया । इधर अभिमन्यु कौरव-सेना में अकेला ही
पड़ गया और भीम, सात्यकी, आदि का जो आधार उसे था
वह नष्ट हो गया । तथापि उसने बड़ी शूरता से युद्ध किया ।
दुर्योधन को भगा कर उसके पुत्र लक्ष्मण को अभिमन्यु ने मार
डाला और शल्य के पुत्र रुक्मरथ का भी उसने सिर उड़ा
दिया ! जब कौरवयोद्धाओं ने देखा कि अभिमन्यु के सामने
कोई भी अकेला वीर नहीं टिक सकता तब द्रोण, अश्वत्थामा
कर्ण, कृप, कृतवर्मा और बृहद्बल इन छै महारथियों ने उस
बालवीर पर एकदम आक्रमण करके युद्ध प्रारम्भ किया ।
इधर जयद्रथ ने सारी पांडवसेना रोक रखी थी; इस कारण
अकेले अभिमन्यु, इन छै महारथियों के बीच में लाचार सा
हो गया । तथापि उसने अपने पराक्रम की चरमसीमा कर दी
और उन छै महारथियों में से बृहद्बल को यमलोक पहुँचा
दिया ! इतने में द्रोणाचार्य का इशारा पाकर कर्ण ने अभिमन्यु
का धनुष तोड़ डाला, कृतवर्मा ने रथ के घोड़े मार डाले और
कृपाचार्य ने उसके सारथी मारे ! इस प्रकार निरुपाय हो जाने
पर सिर्फ ढाल तलवार हाथ में लेकर वह रथ से उतर पड़ा
और कौरवसेना में घुसा । इतने में द्रोणगुरु ने उसकी तलवार

मूठ के पास से तोड़ डाली और कर्ण ने ढाल के टुकड़े टुकड़े कर डाले। "इसके बाद सिर्फ चक्र ही हाथ में लेकर अभिमन्यु युद्ध करने लगा। जब वह चक्र भी निरुपयोगी हो गया तब अभिमन्यु गदा लेकर युद्ध करने लगा। अश्वत्थामा को पीछे हटा कर उसने गदा से, दुःशासन-पुत्र दौःशासनी के घोड़े मार डाले। दुःशासनपुत्र भी गदा लेकर रथ से नीचे कूद पड़ा। दोनों ने एक दूसरे पर गदा के प्रबल प्रहार किये और दोनों मूर्छित हुए। परन्तु दौःशासनी की मूर्छा पहले जग उठी और उसने भूमि ही पर पड़े हुए अभिमन्यु पर बड़े जोर से और शीघ्रता के साथ गदा का प्रहार किया; इस कारण वह बालवीर व्याकुल होकर मर गया।—(द्रोणपर्व, अ० ३३–५०)।

अभिमन्यु के समान शूर योद्धा के रण में पतन होने पर कौरवों के आनन्द और पांडवों के दुःख का पारावार नहीं रहा। इधर सूर्य भी अस्त हो गया; इस कारण सेनाएं शिबिर को लौट आईं। धर्मराज के दुःख की तो सीमा ही न रही। वे यह सोच सोच कर व्याकुल होने लगे कि वास्तव में युद्ध का सब भार भीम के समान कसे हुए योद्धा पर रखना चाहिए था; परन्तु ऐसा न करके युद्ध का अग्रआपन सौभद्र के समान छोटे और अननुभवी लड़के को दिया; इसके सिवा उसकी रक्षा करने में भी हम असमर्थ हुए; अब अर्जुन और सुभद्रा को मुख कैसे दिखावें? अर्जुन के यह पूछने पर, कि अभिमन्यु कहां है, मैं उसे क्या उत्तर दूँगा? इस पर व्यास ने अनेक प्रकार की प्राचीन कथाएं कह कर उनके समझाने का प्रयत्न किया। परन्तु अभिमन्यु-वध का दुःख तिलमात्र भी कम न हुआ—(द्रोणपर्व, अ० ५१–७१)।

इधर संशप्तकों का युद्ध समाप्त करके अर्जुन जब लौटने लगे तब उन्हें बहुत से अपशकुन हुए; और उनके मन में यह बात आने लगी कि, हमारे प्यारे पुत्र पर कोई न कोई आपदा आई

पिंडादिक क्रिया भी निःसंदेह निर्माल्य (चावल का भोग) से ही करे ॥ १७ ॥

स्वतंत्रपाकजाड्यं चेद्बदरीनाथदृष्टिताः ॥
विश्वेदेवान्पितृनन्यान्भावयेदंतरात्मना ॥ १८॥

चौका आदि न लगाकर (याने कुछ विचार न कर) स्वतंत्रतासे बनाया बासी नैवेद्य (सूखा हुआ देश देशावरों को भी ले जाने में महाप्रसादही के तुल्य है) बद्रीश के दृष्टिमात्रसे पवित्र होता है उसकेही द्वारा हृदय से विश्वेदेव पितर तथा औरों का भी सत्कार करे ॥ १९ ॥

ये नरा न प्रगृह्णन्ति पापाः संसारभागिनः ॥
यात्राकृतं फलं तेषां न कदाचित्प्रजायते ॥२०॥

जो संसार में अधम पुरुष विष्णु के नैवेद्य को ग्रहण नहीं करते उनको यात्रा करने का फल कदापि नहीं होता ॥ २० ॥

नैवद्यनिन्दनाद्विष्णोर्नितान्तेन तमोगतिः ॥

विष्णु के नैवेद्य की निन्दा करने से घोर तामिस्र नरक होता है।

लगें और मैं रौरव नरक में पड़ूं; कल जयद्रथ-वध होने के पहले ही यदि सूर्य डूब गया तो मैं चिता में अवश्य प्रवेश करूंगा।" उस महाशूर की यह प्रबल प्रतिज्ञा सुन कर अन्य पांडव वीरों ने भी प्रचण्ड जयघोष किया। गुप्तचरों ने यह खबर कौरवों के शिविर में जाकर बतलाई। उसे सुन कर जयद्रथ भयभीत हुआ। और वह कहने लगा कि, मैं प्राण बचाने के लिए कहीं भगा जाता हूं! परन्तु दुर्योधन आदि ने उसे धीरज दिया; और स्वयं द्रोण ने जब यह आश्वासन दिया, कि, "मैं तेरी रक्षा करूंगा, तू मत डर।" तब वह वैसा ही धैर्य धर कर छावनी की सेना में बना रहा। इधर श्रीकृष्ण ने जब देखा कि, पांडवों से अथवा हमसे न पूछते हुए अर्जुन ने ऐसी घोर प्रतिज्ञा कर ली तब उन्होंने अर्जुन को बहुत ही दोष दिया। परन्तु अर्जुन अपने शौर्यादि पराक्रम का वर्णन करके, दूसरे दिन युद्ध के लिए, विशेष दृढ़ता के साथ रथ तैयार करने को श्रीकृष्ण से कहा। श्रीकृष्ण वहां से चल कर सुभद्रा के पास गये और, जहां तक हो सका, उसका समाधान किया। इसके बाद दूसरे दिन के युद्ध के लिए वे दारुक से, अपना ही रथ तैयार करने के लिए, कह कर सोने को चले गये। पर उस रात को उन्हें बिलकुल नींद नहीं आई-वे रात भर यही सोचते रहे कि अर्जुन की यह प्रतिज्ञा कैसे पूर्ण हो—(द्रोणपर्व, अ० ७२-८२)।

चौथे दिन सूर्योदय होते ही दोनों ओर की सेनाएं रणांगण में आ डटीं और युद्ध शुरू हुआ। अर्जुन ने, सात्यकी को धर्मराज की रक्षा के लिए रख कर, कौरवसैन्य पर धावा किया। पहले पहल उन पर दुःशासन की, हाथियों की, सेना चढ़ धाई। अर्जुन ने उसे मार काट कर दुःशासन का पराभव किया और फिर अपना रथ द्रोणाचार्य के रथ की तरफ बढ़ाया। गुरु को शिष्य ने पहले प्रणाम करके फिर युद्ध प्रारम्भ किया।

बहुत देर तक गुरुशिष्यों का युद्ध होता रहा। उसमें जब श्रीकृष्ण ने देखा कि, द्रोण गुरु हारते नहीं तब उन्होंने आचार्य को वहीं छोड़ कर अर्जुन का रथ जयद्रथ के रथ की तरफ़ सेना में लगाया। मार्ग के घनघोर युद्ध में अर्जुन एक बार मूर्च्छित भी हो गये थे। परन्तु शीघ्र ही सावधान होकर उन्होंने श्रुतायुध और सुदक्षिण का वध किया। इसके बाद अर्जुन का रथ ज्यों ज्यों जयद्रथ की ओर अधिक पास पास होता गया त्यों त्यों मार्ग में तुमुल युद्ध होता गया। उसमें अंबष्ठ का वध हुआ और दुर्योधन का पूर्ण पराभव हुआ। उसी युद्ध में अवंति देश के राजपुत्र विंद और अनुविंद भी मारे गये। अर्जुन के घोड़े श्रम और घावों से बिलकुल थक गये; इस कारण श्रीकृष्ण ने भरी सेना के बीचों बीच में ही रथ खड़ा कर दिया और घोड़े छोड़ दिये। अर्जुन ने एक बाण अस्त्र से मंत्रित करके, पृथ्वी में छोड़ दिया। उसके छोड़ते ही एक सरोवर वहां निर्माण हो गया। इसके बाद अर्जुन, अकेले ही पैदल, शत्रुओं से लड़ने लगे। इधर श्रीकृष्ण ने घोड़ों को पानी आदि पिला कर सचेत किया और उन्हें रथ में जुटाया; युद्ध फिर शुरू हुआ। इधर द्रोण ने धर्मराज पर धावा करके उन्हें पराजित किया। धर्मराज को विरथ करके द्रोणाचार्य उन्हें क़ैद करना ही चाहते थे कि इतने में सात्यकी के आ जाने से वह मौका टल गया। इधर अर्जुन का रथ प्रचंड कौरवसेना में दूर चला गया; इस कारण वह देख न पड़ने लगा। तब धर्मराज की आज्ञा से सात्यकी अर्जुन के पीछे चला। कौरवसेना में घुस कर सात्यकी, द्रोण, दुर्योधन, और दुःशासन को पराभूत करके, वेग से युद्ध करने लगा। उसमें अलंबुप, जलसंध,, इत्यादि राक्षस वीर मारे गये। विस्तृत कौरवसेना में जब अर्जुन और सात्यकी न देख पड़ने लगे तब धर्मराज को उन दोनों के विषय में चिन्ता उत्पन्न हुई और

उन्होंने फिर भीम को अर्जुन तथा सात्यकी के पीछे पीछे भेजा। भीम ने भी अतुल पराक्रम दिखला कर द्रोण को विरथ करके कर्ण को मूर्च्छित किया। परन्तु कर्ण उठ कर फिर भीम से युद्ध करने लगा। उसमें कर्ण बिलकुल निःशस्त्र होकर भीम के हाथ में पड़ गया; तथापि अर्जुन की प्रतिज्ञा ध्यान में लाकर भीम ने उसे छोड़ दिया! इसके बाद भीम भी जब विरथ और निःशस्त्र होकर कर्ण के हाथ में पड़ गये तब कर्ण ने भी, कुन्ती को दिये हुए वचन की याद करके, भीम को छोड़ दिया! सात्यकी ज्यों ज्यों अर्जुन के रथ के पास आता गया त्यों त्यों कौरव अधिक वेग से लड़ने लगे। उस युद्ध में अर्जुन ने पहले भूरिश्रवा के हाथ तोड़ डाले और अन्त में सात्यकी ने उसका वध किया। अब सूर्य अस्त होने में थोड़ा ही अवकाश रह गया था। जयद्रथ तो कौरवसेना और दुर्योधनादि छै महा-रथियों की सेना के मध्यभाग में छिपा बैठा था। उस समय श्रीकृष्ण ने अपनी योगमाया से सूर्य को बिलकुल आच्छादित कर दिया। इससे जान पड़ा कि सूर्य अस्त हो गया; इस कारण जयद्रथ असावधान और निर्भय होकर सेना में फिरने लगा; यह देखते ही श्रीकृष्ण के इशारे से अर्जुन ने उसकी सेना पर बड़ी दृढ़ता से और वेग से आक्रमण किया तथा उसकी रक्षा करनेवाले छै रथियों को जर्जर कर डाला; इसके बाद शीघ्रता के साथ एक बाण, वज्रास्त्र से अभिमंत्रित करके, जयद्रथ पर छोड़ दिया। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह सूचना पहले ही कर रखी थी कि जयद्रथ के पिता का उसे यह वर है कि जो उसका सिर जमीन पर गिरावेगा उसके मस्तक के एकदम सौ टुकड़े हो जायँगे। अर्जुन ने इस प्रकार वह बाण चलाया कि जयद्रथ का मस्तक टूट कर, आकाश मार्ग से उड़ कर, उसके पिता की गोद में जा पड़ा। यह बात उसे मालूम नहीं हुई और जब वह संध्यावदन के समय सूर्य के अर्घ्य देने

के लिए उठा तब उसीके द्वारा वह सिर पृथ्वी पर गिरा! इस कारण उसके ही मस्तक के शतशः टुकड़े हो गये और वह गतप्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा! असत्पक्ष जिस उपाय की योजना करता है वह उसे मौके पर विघ्नकारक होता ही है। जयद्रथ का वध हो जाने पर, दुर्योधन, द्रोण के पास जाकर, अप्रसन्नता से बोला, " तुम इतने पराक्रमी और अस्त्रवेत्ता वीर हो; पर पांडव अब तक पराभूत नहीं होते; इससे जान पड़ता है कि तुम्हारे मन में पांडवों का पक्षपात है और तुम मन लगा कर युद्ध नहीं करते! यह मर्मभेदक कथन सुन कर द्रोण को बहुत बुरा लगा। उन्होंने उस समय यह प्रतिज्ञा की कि, " मैं अब वृद्ध हो गया हूं; तथापि यथाशक्ति लड़ कर अपना प्राण तेरे लिए धोखे में डालता हूं और तिस पर भी तू कृतघ्नता से मेरी निन्दा करता है। अस्तु। धर्मयुद्ध एक ओर रख कर, अब मैं या तो अस्त्र से सब का वध कर डालूँगा या मैं स्वयं मर जाऊंगा।" इधर श्रीकृष्ण ने जब सूर्य से योगमाया का आवरण हटा लिया तब सूर्य फिर देख पड़ने लगा। सच्चा सूर्यास्त होने तक अर्जुन ने कृप, अश्वत्थामा इत्यादि वीरों का पराभव किया; और सात्यकी ने भी कर्ण को विरथ किया। रोज की पद्धति के अनुसार सूर्यास्त होते ही युद्ध बन्द होकर सेनाएं शिविर में लौट जानी चाहिए थीं; परन्तु उस दिन दोनों ओर के सेनापतियों ने युद्ध बन्द करने का नगाड़ा नहीं बजाया; इस कारण रात को भी युद्ध हो रहा था। रात अँधेरी होने के कारण युद्ध बहुत ही भयंकर हुआ। भीम, द्रोण, अश्वत्थामा, दुर्योधन बड़े पराक्रम से युद्ध कर रहे थे। परन्तु उसमें भीम के पुत्र घटोत्कच ने प्रबल पराक्रम करके लक्षावधि कौरवसेना रणभूमि में गिरा दी। तथा अलंबुष और अलायुध नामक दो कौरव-पक्षी राक्षसों को उसने

यमधाम को भेज दिया। घटोत्कच और कर्ण में उस समय जो युद्ध हुआ वह अद्वितीय था। कर्ण की अस्त्रविद्या और घटोत्कच के मायायुद्ध की उस समय पूरी परीक्षा हुई। घटोत्कच ने अपनी मायाविद्या के योग से कौरवसैन्य का अतिशय संहार किया। उस रात के युद्ध में घटोत्कच ने १ अक्षौहिणी कौरवसेना मार डाली! इससे, दुर्योधन के मन में जो यह आशा थी, कि पांडवों को हरा कर कीर्ति और वैभव प्राप्त करेंगे, वह बिलकुल जाती रही और सब कौरवों ने समझ लिया कि, अब घटोत्कच के हाथ से हमारा वध होगा! इस कारण उन्होंने कर्ण से यह आग्रह किया कि तू इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति घटोत्कच पर डाल दे। कर्ण चाहता था कि इस अमोघ शक्ति से अर्जुन को मारूंगा; इस लिए उसने वह शक्ति बड़ी युक्ति से अभी तक रख ली थी। परन्तु जब जब अर्जुन से उसका सामना होता तब तब श्रीकृष्ण अपनी माया से से कर्ण को मोहित कर डालते थे, इस कारण वह शक्ति अपने कट्टर शत्रु पर छोड़ने की उसे याद ही न रहती थी! परन्तु जब उसने देखा कि; घटोत्कच कौरवसेना का भारी संहार कर रहा है और दुर्योधन आदि यह शक्ति छोड़ने के लिए मुझे आज्ञा दे रहे हैं तब उसने, बड़ी लाचारी से, वह अमोघ शक्ति घटोत्कच पर छोड़ दी। उस शक्ति का यह प्रभाव ही था कि जिस पर वह छोड़ी जायगी वह अवश्य मर जायगा। अतएव उसने तत्काल घटोत्कच के प्राण हरण कर लिये! कौरवों ने समझा कि आज बड़ी कठिनाई से इस काल के गाल से हमारा छुटकारा हुआ। इस पर कौरवों को अत्यन्त हर्ष हुआ; परन्तु कर्ण को अवश्य ही बड़ा खेद हुआ। कर्ण के मन में बार बार ये विचार आने लगे कि, अर्जुन के लिए जो अमोघ शक्ति हमने रख छोड़ी थी उसे आज हमने छोड़ दिया; अब उसे जीतने या उसके वध करने की आशा करना

वसुधारा-माहात्म्य ।

मानसोद्भेदनात्प्रत्यग्दिशि सर्वमनोहरम् ॥
वसुधारेति विख्यातं तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम्॥१॥

मानसोद्भेद तीर्थ से पश्चिम की ओर सब प्रकार से मनोहर तीनों लोक में दुर्लभ वसुधारा नामक तीर्थ प्रसिद्ध है ॥ १ ॥

अत्र पुण्यवतां ज्योतिर्दर्शनं जलमध्यतः ॥
यद्दृष्ट्वा न पुनर्मर्त्यो गर्भवासं प्रपद्यते ॥ २ ॥

इस वसुधारा के जल में पुण्य मनुष्यों को ज्योति का दर्शन होता है जिसके दर्शन से मनुष्य पुनः गर्भ में प्राप्त नहीं होता ॥ २ ॥

येऽशुद्धपितृजाः पापाःपाखण्डमतिवृत्तयः ॥ न
तेषां शिरसि प्रायः पतन्त्यापः कदाचन ॥ ३ ॥

बदरी पुरी से (४) मीलपर वसुधारा तीर्थ है इसके अंतर्गत मातामूर्ति का दर्शन है । तथा पुलपार हो कर मणभद्र पुरी, व्यास-गुफा आदि और भी कई एक दृश्य हैं ।

सेना को छार छार करने लगे। तब श्रीकृष्ण ने यह सूचना दी कि, "जब द्रोण को अश्वत्थामा के वध होने की वार्ता कोई बतलावेगा तभी वे युद्ध करना छोड़ देंगे और पांडवसेना बच जायगी।" इस प्रकार का निंद्य कार्य करने के लिए द्रोण के शिष्य अर्जुन बिलकुल ही तैयार न होते थे और अन्य लोग भी इसके लिए राजी न थे। तब भीम ने मालवराज इन्द्रवर्मा के "अश्वत्थामा' नामक हाथी को गदा से मार कर द्रोणाचार्य के पास जाकर चिल्लाते हुए कहा, "अश्वत्थामा को मार डाला।" यह सुनते ही उनका धैर्य कुछ कम हो गया। परन्तु अपने पुत्र का पराक्रम ध्यान में लाकर उन्होंने फिर साहस के साथ युद्ध जारी किया। पर इतने में द्रोणाचार्य ने देखा कि, अपने पिता और पुत्र के वध का बदला लेने के लिए धृष्टद्युम्न अपनी सेनासहित हम पर चला आ रहा है। तब उनका चित्त जरूर उद्विग्न हुआ। द्रोणाचार्य ने यह जान कर कि पृथ्वी ही नहीं; किन्तु त्रैलोक्य के राज्य के लिए भी धर्मराज झूठ न बोलेगा; अश्वत्थामा का सच्चा हाल उनसे पूछा। उस समय श्रीकृष्ण ने धर्मराज से कहा कि, "इस समय यदि तू झूठ न बोलेगा तो द्रोण आधे दिन में ही हमारी सब सेना का नाश कर डालेंगे। प्राण बचाने के लिए झूठ बोलने में कोई पाप नहीं।" तब धर्मराज झूठ बोलने के लिए तैयार हुए! इस जगह यह शंका उठ सकती है कि, श्रीकृष्ण ने झूठ बोलने का उपदेश युधिष्ठिर को क्यों किया? परन्तु धर्मराज की सत्यनिष्ठा की दृढ़ता परखने के लिए उन्होंने यह सलाह दी। धर्मराज यद्यपि स्वयं सत्यनिष्ठ, शांत, पापभीरु और शुद्धाचरणी थे, तथापि उनके अन्तःकरण में एक जो बड़ा दोष गुप्तरूप से था वह इस समय देख पड़ा। अपने साहस और उत्तरदायित्व पर कोई भी महत्व की बात करने के लिए उनके अन्तःकरण में दृढ़ता न थी। ऐसे महत्व के काम में दूसरे के

उपदेश, सम्मति और पराक्रम पर ही अवलम्बित रहने का उनका स्वभाव था। इसी स्वभाव ने इस समय उनका सत्व हरण किया। 'अश्वत्थामा' मारा गया, इतना जोर से कह कर उन्होंने 'कुंजर' धीरे ही से कह दिया! धर्मराज के ये शब्द सुन कर द्रोणाचार्य को बहुत दुःख हुआ। धर्मराज की पूर्ण सत्यनिष्ठा के कारण, उनका रथ सदा भूमि से चार अंगुल ऊपर चलता था! परन्तु उनके मुख से उपर्युक्त झूठे शब्द निकलते ही उनका रथ जमीन में आ लगा। इससे यह अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि एक छोटे से असत्य भाषण से भी कितनी अधोगति होती है। एक ओर यह अनिष्ट खबर सुनाई दी और उधर धृष्टद्युम्न का रथ भी धीरे धीरे द्रोण के रथ के पास आने लगा; इतने में भीम ने, वहां आकर, द्रोण की इस विषय में निर्भत्सना की कि, तुमने ब्राह्मणधर्म छोड़कर क्षत्रिय-कर्म का अंगीकार किया; इन कारणों से द्रोणाचार्य को बहुत दुःख और सन्ताप हुआ। उन्होंने शस्त्र नीचे रख दिये और रथ पर ही समाधि लगा कर वे बैठ गये। यह मौका देख कर धृष्टद्युम्न हाथ में तलवार लेकर द्रोण के रथ पर चढ़ गया और उस वृद्ध ब्राह्मणवीर के स्वच्छ शुभ्र केश बाएं हाथ से पकड़ कर तलवार उठाई। तब अर्जुन और पांडवों की ओर के अन्य योद्धा चिल्लाए कि, "हां, हां, गुरू को जीता पकड़ लो, मारो मत," परन्तु धृष्टद्युम्न ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया और तलवार की एक वार से उसने उनका सिर तत्काल उड़ा दिया; और उसे हाथ में लेकर कौरवों की सेना के आगे फेंक दिया! ८५ वर्ष के वृद्ध वीर और गुरु की यह दशा देख कर कौरवसेना चारो ओर भगने लगी। इधर पांडवपक्ष के योद्धाओं में यह वाद शुरू हुआ कि, द्रोणाचार्य को-विशेषतः ऐसी दशा में-जो धृष्टद्युम्न ने मार डाला सो यह कृत्य योग्य हुआ या अयोग्य। धृष्टद्युम्न और भीम का मत यह हुआ कि,

जो कुछ हो गया यह योग्य ही हुआ। परन्तु अर्जुन और सात्यकी को यह कृत्य अधमता का जान पड़ा। अर्जुन को जान पड़ता था कि हमारे जीते हुए और हमारे देखते देखते द्रोणगुरु का जो इस प्रकार वध हुआ सो यह अपने लिए बड़े ही लांछन और पाप की बात हुई। यह वाद अन्त में यहां तक बढ़ गया कि सात्यकी और धृष्टद्युम्न एक दूसरे पर शस्त्र लेकर दौड़े! इधर धर्मराज का असत्य-भाषण और धृष्टद्युम्न की अधमता का कृत्य जब अश्वत्थामा को मालूम हुआ तब वह इसका बदला लेने के लिए, भागी हुई सब कौरवसेना को इकट्ठा करके, पांडवों पर बड़े ज़ोर से चढ़ आया; और उसने अत्यन्त भयंकर 'नारायणास्त्र' चलाया! पांडवों की ओर के योद्धा उस अस्त्र का ज्यों ज्यों प्रतिकार करने लगे त्यों त्यों वह अस्त्र और भी अधिक वेग से उनका संहार करने लगा! यह देख कर श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी कि, "शस्त्र नीचे रख कर रथ से नीचे उतर कर अस्त्र को नमस्कार करना चाहिये।" सब ने ऐसा ही किया। परन्तु शस्त्र नीचे रखने के लिए अकेले भीमसेन अवश्य ही तैयार नहीं हुए! इस कारण उनके रथ के आस पास उस अस्त्र से उत्पन्न हुई अग्नि फैलने लगी। इतने में श्रीकृष्ण और अर्जुन ने आकर उनके हाथ से शस्त्र छीन लिये और उन्हें रथ के नीचे खींच लिया। तब वह शस्त्र शान्त हुआ और सेना का नाश बन्द हुआ! फिर एक बार यही अस्त्र छोड़ने के लिए दुर्योधन ने अश्वत्थामा से कहा; परन्तु यह अस्त्र एक बार छोड़कर फिर लौटा लेना उसे न आता था; और दूसरी बार छोड़ना भी नहीं आता था; इस कारण वह निरुपाय हो गया। तथापि उसने वैसा ही युद्ध करके पांडवों की ओर के वृद्ध पौरव राजा और मालवराजा सुदर्शन का वध करके सात्यकी, धृष्टद्युम्न और भीम का पराभव किया। इसके बाद अर्जुन ने अपना रथ अश्वत्थामा पर लगाया। तब अर्जुन

को और विशेषतः श्रीकृष्ण को ही एकदम मार डालने के हेतु से अश्वत्थामा ने 'आग्नेयास्त्र' चलाया। परन्तु अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र छोड़ कर उसे शान्त कर दिया। इस प्रकार जब सब प्रयत्न व्यर्थ हुए तब बहुत ही खिझ कर अश्वत्थामा रण से भग गया। इधर सूर्यास्त का समय भी समीप आगया: इस कारण दोनों पक्षों के सेनापतियों ने युद्ध बन्द करने का नगाड़ा बजाने के लिए आज्ञा दी; और दोनों दल अपने अपने डेरों में लौट आये—(द्रोणपर्व, अ० १८६-२०४)।

नववाँ प्रकरण ।

युद्ध का अन्त ।

कुरुक्षेत्र के मैदान में पन्द्रह दिवस बराबर घनघोर युद्ध हुआ; और दोनों पक्षों के अनेक रथी और हजारों सामान्य योद्धा पतन हुए। परन्तु कौरवपक्ष के भीष्म, द्रोण के समान करे हुए वृद्ध वीर और अतिरथी युद्ध में पतन हुए, इस हिसाब से पांडवपक्ष का एक भी नाम लेने लायक योद्धा नहीं मारा गया। इससे जब दुर्योधन ने देखा कि पन्द्रह दिनों के संग्राम की बहुत सी सफलता पांडवों की ही ओर जाती है तब उसे बहुत दुःख हुआ। तथापि अब भी उसका विश्वास कर्ण पर था। और वह समझता था कि पांडवपक्ष की हार उड़ाने का सामर्थ्य यदि किसी में है तो वह एक कर्ण ही है। दुर्योधन ने निश्चय किया कि, भीष्म, द्रोण के पीछे बची हुई कौरवसेना का सेना

गति होने के लिए कर्ण ही योग्य है। यह सलाह अन्य कौरव-वीरों को भी-विशेषतः अश्वत्थामा को-पसन्द पड़ी; यह देख कर दुर्योधन को बहुत सन्तोष हुआ। युद्ध का सोलहवाँ दिन आया और सब के मतानुसार कर्ण को सेनापति का अभिषेक किया गया। कर्ण अपना शंख एक बार बड़े उत्साह से बजा कर रथ पर बैठा और उसने अपना विजय नामक दिव्य धनुष हाथ में लिया। तुरंत ही कौरव-शिविर में भेरी, नगारे और शंखों की ध्वनि होने लगी और सब सेना तैयार हुई। कौरव-दल का मकरव्यूह रच कर और स्वयं आगे होकर कर्ण रणांगण की ओर चला। इधर अर्जुन ने भी पांडवसेना का अर्धचन्द्रव्यूह रच कर कूच किया। इस प्रकार दोनों दल, व्यवस्था-पूर्वक चढ़ कर, रणभूमि में आ भिड़े; और बहुत दिन से जिन दोनों वीरों की युद्ध की उत्कंठा लगी थी उन कर्णार्जुन का अद्वितीय युद्ध प्रारम्भ हुआ। पहले पहल कुछ देर तक पैदल से पैदल, सवारों से सवार, रथों से रथ और हाथियों से हाथी भिड़ कर, बड़े प्रबन्ध के साथ, युद्ध हो रहा था; पर यह समान युद्ध जल्दी ही टूट गया और संकुल युद्ध शुरू हुआ; तथा सर्वत्र लड़ाई की धूम मच गई। भीम अर्धचन्द्रव्यूह के बाएं सिरे पर थे, वे एक हाथी पर बैठ कर कौरवसेना में घुसे। उनके हाथी पर क्षेमधूर्ती ने अपना हाथी लगाया; और इन दोनों प्रबल वीरों का भयंकर युद्ध शुरू हुआ। पहले बाणों से और फिर पीछे भालों से युद्ध हुआ; और अन्त में दोनों वीर जान पर खेल कर लड़ने लगे। अन्त में भीम ने गदा के एक प्रचण्ड प्रहार से क्षेमधूर्ती और उसके हाथी दोनों को यमसदन भेज दिया।

रणभूमि की दूसरी ओर भी वैसे ही वेग से लड़ाई हो रही थी; और कौरवपांडववीरों के द्वन्द्वयुद्ध जारी थे। सात्यकी ने कैकेय भाई भाई राजा विंदानुविंद, श्रुतकर्मा ने चित्रसेन,

यत्र साक्षात्सरिच्छ्रेष्ठा गंगा पापौघनाशिनी १६

जो बदरीक्षेत्र बेरके वृक्षोंसे शोभित है और वह पवित्र स्थल है जहाँ पापसमूहको नष्ट करनेवाली साक्षात् गंगाजी वहन करती हैं ॥ १६ ॥

विष्णोश्चाप्यत्र सान्निध्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
एतत्परात्मकं क्षेत्रं न त्याज्यं मुक्तिमिच्छता १७

हे प्रिये ! संपूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाली विष्णुकी स्थिति भी यहीं है यह सर्वोत्तम क्षेत्र मुक्ति चाहनेवाले पुरुषको नहीं त्यागना चाहिये ॥ १७ ॥

यावत्प्राणाः शरीरेऽस्मिन् यावदिन्द्रियशुद्ध-ता । गात्राणि यावच्छैथिल्यं प्राप्नुवन्ति महा-त्मभिः ॥ १८ ॥

इस शरीरमें जबतक प्राण हैं जबतक इन्द्रियें शुद्ध हैं जबतक शरीर शिथिल नहीं होता तबतक महात्मा पुरुषों को बदरीवनकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये ॥ १८ ॥

इति श्रीस्कान्दे केदारखण्डान्तर्गतबदरीमाहात्म्ये

भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

धनुर्धर से ऐसा कहना उसके लिए अनुचित था, नकुल का उपर्युक्त भाषण सुन कर कर्ण बोला, "ठीक है; जो पराक्रम तुझमें हो सो दिखा; जो सच्चे शूर पुरुष होते हैं वे पराक्रम की बलगना न करते हुए यथाशक्ति युद्ध करते हैं; और फिर अपने शौर्य तथा बल की बड़ाई मारते हैं। हँ, खींच धनुष; शीघ्र ही मैं तेरी आखों पर की धुंधी उतारता हूं।" इस प्रकार भाषण होने के बाद दोनों का तुमुल युद्ध शुरू हुआ। बहुत देर तक शौर्य और पराक्रम में दोनों की बराबरी होती रही; परन्तु अन्त में कर्ण ने उसे निःशस्त्र और विरथ कर दिया; त्यों ही नकुल भाग कर जाने लगा। परन्तु कर्ण ने उसका पीछा करके उसे पकड़ लिया; और उसके गले में धनुष डाल कर और उसे रोक कर तथा पकड़ कर कर्ण बोला, "नकुल, तेरी वह मिथ्या बड़बड़ अब कहां गई? अब से प्रबल कौरववीरों का सामना न करके अपनी बराबरी के वीरों से युद्ध किया कर; अथवा चुपके घर लौट जा; नहीं तो कृष्णार्जुन के आश्रय से रहा कर।" इतना कह कर, कुन्ती को दिये हुए वचन के अनुसार कर्ण ने उसे, गले में पड़े हुए धनुष के सहित, छोड़ दिया। नकुल भी अत्यन्त खिझ कर और लज्जित होकर युधिष्ठिर के रथ में चला गया। कुछ देर बाद धर्मराज और दुर्योधन—इन पांडव-कौरव राजाओं—के छत्रयुक्त रथ एक दूसरे से भिड़ गये। धर्मराज ने पहले ही सपाटे में दुर्योधन के घोड़े और सारथी को मार डाला, ध्वज गिरा दिया, धनुष और तलवार तोड़ डाली, और दुर्योधन को भी घायल किया। धर्मराज और दुर्योधन का यह युद्ध देख कर कर्ण, अश्वत्थामा, कृप, आदि कौरव धनुर्धर और पांडव पांचालवीर अपने अपने राजाओं की मदद के लिए आकर अत्यन्त घोर लड़ाई करने लगे; और दो घड़ी वहां तुमुल

संग्राम मच गया। अन्त में धर्मराज ने दुर्योधन पर एक महा-शक्ति छोड़ कर उसे रथ ही में घायल और मूर्छित किया। परन्तु भीम की प्रतिज्ञा का स्मरण करके धर्मराज ने उसे जीवित छोड़ दिया। इसके बाद कुछ देर तक रणभूमि में संकुल युद्ध होते रहा। इतने में सूर्यास्त का समय समीप आ गया और दोनों दल अपने अपने शिविर में लौट आये-(कर्णपर्व, अ० १-३०)

युद्ध खतम करके कौरवपक्ष के सब योद्धा जब अपने शिविर में आये तब कर्ण को यह सोच कर बहुत बुरा लगा और खेप भी आया कि, अर्जुन का वध करने की जो प्रतिज्ञा हमने की थी वह आज सफल नहीं हुई। अतएव सब राजाओं के सामने उसने प्रतिज्ञा की कि, "अर्जुन स्वयं ही दृढ़, शूर और दक्ष है और उसमें भी श्रीकृष्ण उसे सलाह देने के लिए सदा उसके पास रहते हैं: इसी कारण आज उसने, अस्त्रों की मार करके, और हम सब को धोखा देकर, मुझसे भिड़ने का मौका युक्ति से टाल दिया। परन्तु अब मैं उसे इस प्रकार की धोखेबाजी न करने दूँगा। कल मैं इस वेग से लडूंगा कि अर्जुन का वध किये बिना न लौटूंगा, अथवा वही मुझे मार डालेगा!"

दूसरे दिन सुबह कर्ण पहले दुर्योधन के शिविर में आया और अपने पराक्रम की बड़ाई मार कर बोला:—"शस्त्रास्त्र कौ-शल, शौर्य, धैर्य, पराक्रम, इत्यादि गुणों में मैं अर्जुन से कुछ भी कम नहीं हूं। उसके गांडीव धनुष से भी अधिक योग्यता का विजय धनुष मेरे पास है। इन्द्र ने इसी धनुष से दैत्यों का संहार किया; और परशुराम ने भी इसी धनुष से इक्कीस बार पृथ्वी को निःक्षत्रिय किया। उस मेरे गुरु ने, मुझ पर प्रसन्न होकर, यह धनुष मुझे दिया है। अर्जुन के धनुष की डोरी, उसके तूणीर और रथ दिव्य हैं, इनका नाश नहीं हो सकता; और श्रीकृष्ण के समान अश्वविद्याकुशलवीर उसका

सारथी है; इस विषय में अवश्य अर्जुन मुझसे बढ़ा चढ़ा है। इस लिए आज तुम ऐसा प्रबन्ध करो कि, उत्तम जातिवंत घोड़ोंवाले सैकड़ों रथ मेरे पीछे पीछे रहें और उत्कृष्ट तथा पानीदार बाणों से भरी हुई अनेक गाड़ियां मेरे पास रहें; विशेषतः सारथ्यकर्म में श्रीकृष्ण की बराबरी करनेवाले मद्राधिपति शल्य को आज मेरा सारथ्य करने के लिए कहो। इतना यदि तुम करोगे तो मैं आज ही अर्जुन का वध करके रणयज्ञ की पूर्णाहुति कर दूँगा।" कर्ण के इस कथन पर दुर्योधन शल्य के पास गया और कर्ण के पराक्रम की प्रशंसा करके उसने शल्य से यह प्रार्थना की कि, मेरे लिए और शत्रुओं का नाश करने के लिए, आज तुम कर्ण का सारथ्य करो। यह सुन कर शल्य अत्यन्त क्रोध करके बोला, मेरे समान राजकुल में उत्पन्न हुए और मूर्धाभिषिक्त महारथी से तू कहता है कि, इस शूद्रतुल्य घमंडी सूतपुत्र का सारथ्य करो, इस पर तुझे लज्जा भी नहीं आती ? तू यदि यह समझता हो कि, कर्ण मुझसे अधिक शूर अथवा पराक्रमी है तो तू समझा कर; पर मुझे युद्ध का जो काम बतलाना हो सो बतला; वह मैं एक क्षण में करके अपने देश को लौट जाता हूँ। इस प्रकार का अपमान सह कर अब मेरी इच्छा नहीं है कि, तुम्हारी सहायता करूं।" यह कह कर शल्य क्रोधपूर्वक सभा से उठ कर जाने लगा। इतने ही में दुर्योधन ने उसे रोक लिया और बड़ी नम्रता से, विनयपूर्वक, कहाः—"मुझसे और कर्ण से आप शौर्य पराक्रमादि गुणों में श्रेष्ठ ही हैं; कुछ यह बात नहीं है कि, आप में ये गुण कम हैं; इस लिए हम आप से सारथ्य करने के लिए कहते हों। हम आपको यह काम इसी लिए बतलाते हैं कि, कर्ण जिस प्रकार अर्जुन से श्रेष्ठ योद्धा है उसी प्रकार आप श्रीकृष्ण की अपेक्षा अश्वविद्या और सारथ्यकर्म में अधिक निपुण हैं।" इस प्रकार कह कर

दुर्योधन ने शल्य का क्रोध दूर किया। परन्तु शल्य ने कहा कि "बुरा भला जो कुछ मुझे जान पड़ेगा वह मैं कर्ण से कहूंगा; उसके लिए तुझे अथवा कर्ण को विषाद न मानना चाहिए। यह शर्त यदि कबूल हो तो मैं सारथ्य करने के लिए तैयार हूँ।" कर्ण और दुर्योधन ने यह बात मान ली।

इस प्रकार सब तैयारी होने पर कर्ण और शल्य रथ पर बैठे; उस समय दुर्योधन कर्ण से कहने लगाः—"मुझे बहुत भरोसा था कि, भीष्म और द्रोण अर्जुन-भीम का रण में वध करके मुझे यश देंगे। परन्तु उनके लिए भी जो कृत्य दुष्कर हो गया वह करके तू सब पांडवों का वध कर, अथवा अर्जुन ही का वध कर किंवा अधिक नहीं तो धर्मराज को मुझे जीता पकड़ दे। जा, पांडवसेना में घुस कर उनको सत्यानाश कर दे; तेरी जय हो।" इतना कह कर दुर्योधन ने कर्ण को बिदा किया; और हजारों वाद्यों की ध्वनि में तथा लाखों वीरों के जयघोष में कर्ण का रथ आगे बढ़ा। कर्ण ने फिर अपने पराक्रम की बड़ाई मार कर शल्य से कहा, रथ पांडवसेना से जा भिड़ा और फिर मेरा सामर्थ्य देख ले-फिर देख लेना कि, मैं पांडवों को यमधाम को भेजता हूँ या नहीं। इस पर शल्य ने उत्तर दियाः—अरे सूतपुत्र, तू पांडवों का इस प्रकार बारम्बार अपमान क्यों करता है? अर्जुन के गांडीव की टंकार जब तेरे कानों में पड़ेगी तब तेरी यह बकबक और आत्मस्तुति अवश्य ही बन्द हो जायगी।" इस प्रकार बातचीत होते हुए, कर्ण का रथ जब तक पांडवसेना से भिड़े भिड़े तब तक, रथी और सारथी का यह झगड़ा बहुत बढ़ गया; और कर्ण के लिए यह एक अशुभ शकुन ही हुआ। कर्ण फिर अपने शौर्य की बड़ाई मार कर बोला, "आज मैं कृष्णार्जुन को मार डालूंगा अथवा मैं ही स्वयं भीष्मद्रोण के पीछे स्वर्गलोक जाऊंगा।" इस पर शल्य ने कहा, कि, "वन में गंधर्वसेन ने जब तुझे जर्जर किया

तब तू ही पहले पहल रण से भग गया; और गंधर्व के हाथ से श्रीअर्जुन ने ही दुर्योधन तथा कौरवस्त्रियों को छुड़ाया; उस समय तेरा पराक्रम कहाँ गया था? और उत्तर गोग्रहण के समय अकेले अर्जुन ने ही तुम सब को मार भगाया; तब तेरा यह शौर्य और धैर्य किस कोने में जा छिपा था? उस समय जो पराक्रम तू ने दिखलाया वही आज भी दिखलायेगा न?',
कर्ण:—"अर्जुन और श्रीकृष्ण का पराक्रम, बल तथा शौर्य जिस प्रकार मैं पहचानता हूं उसी प्रकार अपने गुण भी मैं जानता हूं। मेरा यह साहस ऐसा नहीं है कि जैसे पतंग अग्नि में गिरता हो; किन्तु स्व-पर-बलाबल जान कर ही आज मैं अर्जुन से भिड़नेवाला हूं। जो स्वयं डरपोक है वह दूसरे की शूरता कैसे परख सकता है? और यदि उसने परख भी ली तो उसका उसे स्वयं भय मालूम होता है! पर जो सच्चा शूर है उसीको शत्रु के शौर्य-पराक्रम की परीक्षा हो सकती है, और परीक्षा करने पर वही निर्भयतापूर्वक उससे लड़ भी सकता है! तू सिर्फ बाहर से मित्रता दिखला कर शत्रु की स्तुति और मेरी निन्दा करता है और अत्यन्त नीच मद्रदेश पर राज्य करना जानता है। तुझ डरपोक को कृष्णार्जुन के पराक्रम की अथवा मेरे पराक्रम की सच्ची कीमत कैसे मालूम हो सकती है? तू तो बस मेरे समान पराक्रमी और शूर पुरुष की निन्दा भर करना जानता है! पर तू समझ रखना कि, यह कर्ण शत्रु को डरने के लिए उत्पन्न नहीं हुआ है; किन्तु पराक्रम दिखला कर यश और वैभव सम्पादन करने के लिए ही मेरा अवतार हुआ है। तेरे समान कटु भाषण करनेवाले का मैं क्षण में वध कर सकता हूं; परन्तु दुर्योधन की ओर देख कर और अपने वचन पर ध्यान रख कर मैं तुझे जीता छोड़ता हूं।"
इसके बाद कर्ण, मद्रदेश के स्त्री-पुरुषों के घृणित और अनीति-

मूलक आचारों का निन्दाप्रचुर वर्णन करने लगा; तब शल्य ने उत्तर दियाः—"दूसरे की छोड़ दी हुई जूठन खाकर पुष्ट हुए कौवे के समान धृतराष्ट्र के लड़कों के उच्छिष्ट राज्य उपभोग कर तू मत्त और गर्विष्ट हो गया है। भीष्म ने युद्ध के आरम्भ ही में कह दिया है कि, "कर्ण पराक्रमी और शूर जरूर है; परन्तु वह क्रोधी और घमंडी भी है; इस कारण उसकी शूरता का मौके पर कोई उपयोग न होगा,"—सो भीष्म का कथन तू याद रख। मेरे मद्रदेश की तो तू निन्दा करता है; पर तेरे ही देश में क्या है? रोगियों को त्याग करने और अपने स्त्री-बच्चों का, दास की तरह, क्रयविक्रय करने के समान पातक क्या तेरे देश की प्रजा नहीं करती? प्रत्येक देश में कुछ अच्छे और कुछ बुरे पुरुष और स्त्रियां होती ही हैं; उनसे किसीको भी कोई सामान्य सिद्धान्त न स्थिर कर लेना चाहिये। तू अपना यह भ्रम छोड़ दे कि अनीति और पाप किसी एक ही देश में भरे हैं और अन्य सब देश सोज्वल तथा पुण्यमय हैं।" इस प्रकार बोलचाल होते हुए कर्ण का रथ पांडवसैन्य के पास आ गया; इस कारण जब दुर्योधन ने बीच-बचाव किया तब वह झगड़ा मिटा और युद्ध प्रारम्भ हुआ—(कर्णपर्व, अ० ३१-४५)।

कर्ण और शल्य का झगड़ा मिटा; और दोनों दल एक दूसरे से भिड़े। एक दूसरे पर टूट कर शस्त्रास्त्रों की खनखनाहट शुरू होने के पहले कर्ण ने कौरवसेना का दुर्भेद्य व्यूह रचा। व्यूह की दाहनी ओर कृप, कृतवर्मा आदि वीरों को रख कर उनके पीछे शल्य को अपनी सवार-सेना-सहित खड़ा किया। बाँई ओर ३४ हजार संशप्तकों के रथ रख कर उनके पीछे कांबोज, शक, यवन, इत्यादि योद्धाओं की योजना की; मध्यभाग में कर्ण ने अपने को रख कर पीछे दुःशासन,

दुर्योधन, अश्वत्थामा आदि धनुर्धरों के रथ खड़े किये। इधर अर्जुन ने भी जब अपनी सेना का व्यूह रच लिया तब दोनों ओर से वाद्यों की तुमुल ध्वनि हुई और दोनों सेनाएं गंगा-यमुना की तरह एक दूसरे से मिलीं और भयंकर संग्राम होने लगा। पिछली चाल के अनुसार संशप्तक योद्धाओं ने अर्जुन को घेर लिया; और लड़ते लड़ते वे अर्जुन को अन्य सेना से दूर ले गये। इधर कौरवों से पांचाल, चेदी और संजय की लड़ाई शुरू हुई। कर्ण ने पहले ही सपाटे में भानुदेव, चित्रसेन, आदि पांच पांचाल-राजपुत्रों को मार डाला। भीम ने भी कर्ण के एक राजपुत्र का सिर उड़ा कर उसका बदला ले लिया। कुछ देर बाद कर्ण और धर्मराज के रथ एक दूसरे से भिड़ गये। उस समय धर्मराज ने कर्ण से कहा कि, "कौरवों के आश्रय से रह कर तू सूतपुत्र आज तक हमारा द्वेष और अर्जुन से स्पर्धा करता रहा है। तुझमें जो कुछ बल, पराक्रम, शूरता और हम पर द्वेष हो वह सब आज दिखला दे। अपने पराक्रम का जो तू अभिमान करता है वह मैं आज तेरा घमंड अभी चूर किये देता हूं।" इतना कह कर धर्मराज ने लगातार उस पर दस बाण छोड़े। दोनों का भारी संग्राम हुआ। धर्मराज का बाण कर्ण को लगा और वह रथ में मूर्च्छित हो गया; पर कुछ देर बाद उठ कर उसने बाणों की वर्षा शुरू की और अन्त में धर्मराज का कवच भेद डाला। तब धर्मराज अपना रथ कर्ण के सामने से निकाल कर दूसरी ओर ले जाने लगे; पर कर्ण ने उन्हें शीघ्र ही घेर लिया और उनके कंधे पर हाथ रख कर हँसते हँसते बोला, "अरे, तू अच्छे कुल का क्षत्रिय होकर भी, डरपोक की तरह जी बचाने के लिए रण से क्यों भगा जाता है? मैं जानता हूं तू क्षात्रधर्म में विशेष कुशल नहीं है; किन्तु वेदाध्ययन, यज्ञयाग, आदि का ब्राह्मणी बल सिर्फ तुझमें है। इस लिए महायुद्ध में अब मत आना और

की वृद्धि होतीहै, सो और धर्म करनेसे नहीं होती ॥ २५ ॥

अहो कथं न कुर्वन्ति संसारोद्विग्नमानसाः ।
वासमेव बदर्याख्ये क्षेत्रे नारायणप्रिये ॥ २६ ॥

बड़ा आश्चर्य है कि संसारके जन्ममरणसे डरनेवाले प्राणी नारायण के प्यारे बदरिकाश्रम में वास नहीं करते ॥ २६ ॥

सत्यं ब्रवीमि योगीन्द्र भुजमुद्धृत्य नानृतम् ।
बदरीवासमात्रेण पुरुषार्थः कलौ युगे ॥ २७ ॥

हे योगीन्द्र नारद ! मैं भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ झूठ नहीं, इस कलियुगमें बदरिकाश्रम में निवास करनेही से पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है ॥ २७ ॥

क्षेत्रान्तराणि सर्वाणि बदरीगोपनाय वै ।
गदितानि पुराणादौ नात्र कार्या विचारणा २८

और पुराणआदिकोंमें जो अन्य क्षेत्र वर्णन कियेहैं सो बदरीनारायणके छिपानेके निमित्त हैं इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ २८ ॥

बदरीक्षेत्रमुत्सृज्य क्षेत्रांतरयियासुना । जन्मा-

निःशस्त्र और विरथ किया। रणभूमि की दूसरी तरफ कर्ण-भीम का घोर द्वन्द्वयुद्ध हो ही रहा था। इतने में संशप्तकों का पराभव करके अर्जुन कौरवसेना की ओर आ गये। कांबोज-राजपुत्र का वध करके उन्होंने अश्वत्थामा को भी मूर्छित किया। मूर्छा जागृत होने पर उसने कर्ण और दुर्योधन के सामने यह प्रतिज्ञा की कि, हमारे बाप का अमानुषी रीति से जिसने वध किया है उस धृष्टद्युम्न को जब तक मैं न मार डालूंगा तब तक मैं शरीर से यह कवच न निकालूंगा! कुछ देर बाद कर्ण और सात्यकी तथा धृष्टद्युम्न का भयंकर युद्ध शुरू हुआ; अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न को घेर कर उसके रथ से अपना रथ भिड़ाया और क्रोध से संतप्त होकर अश्वत्थामा ने उससे कहाः—"अरे नीच, समाधि-अवस्था में मेरे पिता का वध करके तूने जो महत्पातक किया है उसका प्रायश्चित मैं तुझे अभी देता हूं। तू यदि डरपोक की तरह लड़ाई से भग न गया, अथवा नामर्द की तरह अर्जुन के पीछे न जा छिपा तो आज मैं तुझे अवश्य यमलोक पहुँचा दूंगा!" इस पर धृष्टद्युम्न ने भी उतने ही क्रोध और आवेश के साथ उत्तर दियाः—"तेरे बाप को जिस तलवार से मैंने मार डाला है वही तलवार तुझे इसका उत्तर देगी। ब्राह्मणधर्म छोड़ कर क्षात्रियकर्म करनेवाले ब्राह्मणाधम द्रोण को जब मैंने मार डाला तब तेरी-उसके बच्चे की-मेरे सामने क्या प्रतिष्ठा है?" इस प्रकार बातचीत होने के बाद दोनों वीर बड़े त्वेष के साथ लड़ने लगे; पर किसीका भी पराभव नहीं हुआ। इतने में अर्जुन, जो धर्मराज के पास जा रहे थे, वहां से आ निकले। उन्होंने मार्ग में यह युद्ध देखकर अश्वत्थामा को मूर्छित किया, और धृष्टद्युम्न को उसके पंजे से छुड़ाया। इधर युद्ध में घायल हो जाने के कारण धर्मराज सेना से एक कोस पर रथ खड़ा करके विश्रान्ति ले रहे थे; उन पर कर्ण और अन्य कौरववीरों ने बड़े जोर से हमला

लज्जित होकर शिविर को चले गये हैं; उनके पास पहले जाना चाहिए। इस कारण वे दोनों अपने शिविर में आये—(कर्णपर्व, अ० ४६–६४)।

रथ से नीचे उतर कर कृष्णार्जुन युधिष्ठिर के पास गये और उन्हें नमस्कार किया। यह समझ कर कि, कर्ण को मार कर, विजय प्राप्त किये हुए, ये दोनों आनन्द-समाचार सुनाने के लिए हमारे पास आ रहे हैं, धर्मराज को अत्यन्त हर्ष हुआ। जो अत्यन्त शूर, अभिमानी, पराक्रमी तथा कौरवों का मुख्य आधार था; जिसके डर से धर्मराज को वनवास में दिन में चैन और रात में नींद नहीं आई; जिसने द्रौपदी को भरी सभा में खींच लाने की सम्मति दी; और जिसने सब राजाओं और आप्तजनों के सामने पांडवों को 'षंढ' आदि कह कर मर्मभेदक भाषणों से दुःख दिया; भीष्म, द्रोण, आदि ने भी जो नहीं किया वह करके जिसने धर्मराज को पराभूत किया और भिरखाण उड़ाया; तथा जिसने विशेष कर धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव और पांडवपुत्रों के देखते देखते धर्मराज को जीवदान देकर इतना खिझाया और लज्जित किया कि, उन्हें राज्य और प्राणों से भी घृणा हो गई—उसी कर्ण को अर्जुन ने रण में मार डाला, यह समझ कर धर्मराज को अत्यानन्द हुआ। और वे बड़े हर्ष के साथ अर्जुन से पूछने लगे कि, "उसे किस प्रकार मारा, मुझे शीघ्र बतलाओ" अर्जुन ने उत्तर दिया:— "पहले संशप्तक वीरों से और फिर अश्वत्थामा से युद्ध करने में मेरा समय गया; बाद को कर्ण ने मुझ पर धावा किया; इतने ही में मैंने सुना कि, आप कर्ण और अश्वत्थामा के बाणों से घायल होकर शिविर में चले गये हैं, इस कारण आपका दर्शन करने के लिए, कर्ण को वहीं छोड़ कर, मैं इधर चला आया। आप मुझे आशीर्वाद देकर युद्धचमत्कार देखने के लिए आइये। मैं आज ही—ज्यों ही भीम को कौरवों ने

घेरा त्यों ही—उसका वध करता हूँ।" यह सुन कर धर्मराज को अत्यन्त दुःख हुआ; और विशेष आश्चर्य यह है कि, क्रोध जो उन्हें कभी स्वप्न में भी न आता था, बहुत ही जोर से आ गया। वे बोलेः—तूने हमें द्वैतवन में यह वचन दिया है कि 'मैं अकेला युद्ध में कर्ण का वध करूंगा;' और अब तू, भीम को अकेले कौरवसेना में छोड़ कर, कर्ण से न भिड़ते हुए, यहां डरपोक की तरह लौट आया है? तेरे पराक्रम, शौर्य और उत्साह का मुझे कुछ भी उपयोग नहीं हुआ! कुन्ती की कोख से जन्म लेकर तूने व्यर्थ को उसे दुःख दिया। तुझ पर हम सब का भार है; तिस पर भी तूने हमें निराश किया। धिक्कार है तेरे गांडीव धनुष को, उन अक्षय तूणीरों को और तेरे पराक्रम को! तुझसे जो अधिक शस्त्रास्त्रकुशल और शूर दूसरा कोई योद्धा हो उसे यह गांडीव धनुष दे क्यों नहीं डालता?" युधिष्ठिर का यह भाषण सुन कर अर्जुन को अत्यन्त सन्ताप हुआ और वे म्यान से तलवार निकाल कर धर्मराज की ओर जाने लगे। अर्जुन के इस संताप को पहचान कर श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन म्यान से तलवार निकालने का कारण क्या है? धर्मराज घायल हुआ है, उसे देखने के लिए तू यहां आया है। युधिष्ठिर को तूने देख लिया; और तुझे यह भी मालूम हो गया कि, उसके बहुत से घाव नहीं हुए। अब, ऐसे आनन्द के समय में तूने किसका वध करने के लिए यह खड्ग हाथ में लिया है? यहां तो तेरा शत्रु कोई नहीं देख पड़ता। तू भ्रम में तो नहीं पड़ गया?" यह सुन कर अर्जुन ने उत्तर दियाः—"मेरी प्रतिज्ञा है कि जो कोई मुझसे यह कहेगा कि, गांडीव धनुष दूसरे को दे, उसका सिर काट डालूंगा। श्रीकृष्ण, तेरे सामने धर्मराज ने मुझसे ऐसा कहा है; इस लिए मैं उसका वध करूंगा; इस अपराध को मैं क्षमा

नहीं कर सकता।" अर्जुन का यह भाषण सुन कर श्रीकृष्ण ने उन्हें बोध किया और धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, इत्यादि नीतितत्वों का मार्मिक विवेचन करके अर्जुन का भ्रम दूर किया। श्रीकृष्ण ने कहा कि अहिंसा धर्म सब से श्रेष्ठ है; उसके लिए, मौका आ जाने पर, यदि कुछ प्रतिज्ञाभंग या असत्य-भाषण हो जाय तो भी कोई पाप नहीं; किन्तु पुण्य ही है। धर्मराज तेरा धर्मनिष्ठ बड़ा भाई और राजा है, प्रतिज्ञा पालन के लिए उसका वध करना अनुचित है। यह बात अर्जुन ने मान ली; परन्तु श्रीकृष्ण से उन्होंने प्रार्थना की कि, कोई ऐसी युक्ति बतलाओ जिससे भ्रातृवध का पातक न लगे और प्रतिज्ञा भंग भी न हो। इस पर श्रीकृष्ण ने यह सम्मति दी कि पुरखा आदमी का, "अरे, क्योंरे!" कह कर, अपमान करना उसका वध करने के बराबर ही है। इस लिए धर्मराज से वैसा कह कर यदि तू कठोर भाषण करके उसका अपमान कर देगा तो भ्रातृवध और प्रतिज्ञाभंग दोनों टल जायँगे। इस पर अर्जुन धर्मराज के पास जाकर बोले, "रणभूमि से कोस भर दूर भागनेवाला तू डरपोंक है! तुझे मेरे गांडीव धनुष और मेरी शूरता को धिक्कारने का क्या अधिकार है? वीरश्रेष्ठ भीम जो निःशस्त्र और विरथ होने पर भी हाथ में गदा लेकर शत्रुओं की सेना में घुस कर उनका संहार करता है, उसे अवश्य मुझसे कठोर भाषण करने का अधिकार है। भीम का यह पराक्रम क्या तेरे हाथों कभी हो सकता है? तेरे हित के लिए हम अपने लड़के-बच्चे अधिक क्यों, अपने प्राण भी देने के लिए तैयार हैं; तिस पर भी तू द्रौपदी के बिछौने पर चुपके लोटता हुआ, मेरी निर्भर्त्सना करता है; ऐसे निष्ठुर भाई से मुझे सुख कैसे मिलेगा? यह मालूम होने पर भी, कि द्यूत के समान दुष्ट और आर्यों

को कलंक लगानेवाला दूसरा और कोई भी व्यसन नहीं है, तूने यह पापकर्म किया; और अब वह भूल कर शत्रुओं को जीतने का भार तू अवश्य ही मेरे सिर लाद रहा है! द्यूत खेलनेवाला तू ही है; और उसके कारण जो हम पर संकट आये हैं जो राज्यनाश, प्राणहानि और कुलक्षय हुआ है उस सब का दोष और पातक तेरे ही मत्थे है; व्यर्थ निष्ठुर भाषण करके तू मुझे संतप्त क्यों कर रहा है?" प्रतिज्ञा पालने के लिए अपने बड़े भाई से इस प्रकार निष्ठुर वचन कह कर अर्जुन अत्यन्त लज्जित हुए और उस दुःख के आवेश में, धर्मराज को मारने के लिए जो तलवार निकाली थी उससे वे अपना शिरच्छेद करने लगे! तब श्रीकृष्ण ने उन्हें समझाया कि भ्रातृ-वध की अपेक्षा आत्महत्या का पातक और भी अधिक घोर है: इससे बड़ा भयंकर नरक प्राप्त होगा; तुझे यदि आत्महत्या ही करना हो तो अपने मुख से अपने गुणों की प्रशंसा कर; क्योंकि आत्मश्लाघा करनेवाले को आत्महत्या का पातक लगता है, यह शास्त्र का वचन है! यह सुन कर अर्जुन ने अपना धनुष हाथ में लिया और इस प्रकार कह कर अपनी बड़ाई की कि, मेरे समान पराक्रमी और शूर धनुर्धर संसार में और कोई नहीं है; मेरी बराबरी यदि कोई कर सकता है तो वे शंकर ही हैं, इत्यादि०। अर्जुन के ये भाषण सुन कर, कोमल अन्तःकरण के, धर्मराज को बहुत खेद हुआ; और बिछौने पर से उठकर वे बोले:—"अर्जुन, तू जो कुछ कहता है वही ठीक है; मेरे ही कारण तुम लोगों पर संकट आये, और तुम को आपत्तियां सहनी पड़ीं। इस लिए मैं जो कुलांगार और अधमाधम हूं उसका शिरच्छेद कर। मेरे समान पापी, व्यसनी, आलसी, डरपोक और षंढ पुरुष राजा नहीं हो सकता। अकेले भीम ही सिंहासन पर बैठने योग्य है। इस लिए मुझे

भाई, फिर वनवास के लिए जाने दे ।" इतना कह कर धर्मराज वहाँ से उठ कर तम्बू के बाहर जाने लगे। पर उन्हें रोक कर श्रीकृष्ण बोले, "अर्जुन की यह प्रतिज्ञा तुमको मालूम है कि, जो कोई हमसे गांडीव धनुष दूसरे को देने के लिए कहेगा उसका वध करेंगे; वह प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए, और मेरे कहने से, अर्जुन ने तुम्हें 'अरे, क्यों रे' कह कर निष्ठुर भाषण किया है। क्योंकि

गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते ।

बड़ों का अपमान करना मानो उनका वध करना ही है ! प्रतिज्ञा पालने के लिए जो यह अमर्यादा की गई, उसके लिए हम दोनों को क्षमा करो। कर्ण का तुम डर मत करो। आज रणभूमि पापी कर्ण का रक्त अवश्य पान करेगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।" यह कह कर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने धर्मराज के पैरों पर सिर रखा। इतने से धर्मराज का क्रोध और दुःख दूर हो गया, उन्होंने श्रीकृष्ण को उठाया और अर्जुन को आलिंगन देकर समझाया। अन्त में यह कह कर उन्होंने धर्मराज को नमस्कार किया कि, आज कर्ण का वध किये बिना मैं रणभूमि से नहीं लौटूंगा।" इसके बाद धर्मराज का आशीर्वाद लेकर कृष्णार्जुन फिर रथ में बैठ कर रणभूमि की ओर चले—(कर्णपर्व, अ० ६५–७१)।

अब अर्जुन इस चिन्ता में पड़े कि, हमने जो यह प्रतिज्ञा की है वह पूरी कैसे होगी। श्रीकृष्ण ने देखा कि, इसी चिन्ता के कारण अर्जुन के मुख पर धर्म-बिन्दु आ गये हैं। इस लिए उन्हें उत्साह और त्वेष दिलाने के लिए श्रीकृष्ण बोले, "इस प्रतिज्ञा के लिए तू चिन्ता मत कर; भीष्म, द्रोण, भगदत्त आदि वीर जिसने मारे उसे कर्ण के विषय में चिन्ता करने की कोई आवश्ययकता नहीं। तथापि कर्ण को तू सामान्य वीर भी न

समझना । शौर्य, पराक्रम, बल, अस्त्रविद्या, इत्यादि में वह तेरे समान, किंबहुना कुछ अधिक ही है; इस लिए बड़ी दक्षता के के साथ युद्ध करना है । लाक्षागृह में तुम्हें जलाने का जो प्रयत्न हुआ उसका कारण कर्ण है; उसी प्रकार कपटद्यूत, सभा की विटम्बना और निष्ठुर मर्मभेदक भाषण आदि सब तुम्हारे दुःखों का मूल कर्ण ही है । कौरवों को भरोसा है कि, वह पांडवों को जीतेगा; और इसी भरोसे पर दुर्योधन ने युद्ध प्रारम्भ किया है; यह ध्यान में रख और यह भी सोच ले कि छै कौरव महारथियों ने अकेले अभिमन्यु को घेर कर मारा है । आज इन सब पापों का प्रायश्चित्त तू कर्ण को दे ।" श्रीकृष्ण के मुख से ये वचन सुन कर अर्जुन की सब चिन्ता दूर हो गई और उन्हें उत्साह तथा आवेश आ गया—(कर्णपर्व, अ० ७२-७४) ।

इधर धर्मराज के देखने को जब से कृष्णार्जुन चले गये थे तब से युद्ध का सब भार अकेले भीम ही पर आ पड़ा था; तथापि उन्होंने पराक्रम की पराकाष्ठा करके कौरवसेना का बराबर संहार किया । अर्जुन पहले पहल सेना में आकर भीम के पास गये और उन्हें धर्मराज के कुशलसमाचार बतला कर उन्होंने अपना रथ शत्रुओं की ओर चलाया; उनके पीछे पीछे भीम भी कौरवसेना में घुसे । भीम ने शकुनी को मूर्छित करके पृथ्वी पर गिरा दिया । उसे अपने रथ में डाल कर ज्योंही दुर्योधन भगने लगा त्योंही कौरवसेना ने भी वही मार्ग पकड़ा ! परन्तु कर्ण ने, उस सेना को रोक कर, अपना रथ पांचाल-सेना पर लगाया; और पांचो पांडु-पुत्रों को विरथ करके पांडवसेना पराभूत की । यह देख कर जब अर्जुन ने कहा कि, इन छोटे छोटे युद्धों से रथ को निकाल कर स्वयं कर्ण पर लगाओ तब श्रीकृष्ण कर्ण की ओर रथ ले चले । कर्ण ने जब देखा कि, अर्जुन का वह कपिध्वजयुक्त रथ वेग से हमारी

ओर आ रहा है तब वह शल्य से बोला, "यह देखो, अब अर्जुन का रथ मेरी ही ओर आता है। आज मैं उसे मार डाले बिना कभी न लौटूँगा। युद्ध में सदा एक ही पक्ष को जय प्राप्त होना असम्भव है; तथापि

कृतार्थोऽद्य भविष्यामि हत्वा वाप्यथवा हतः

उसे मार कर अथवा मैं ही मर कर आज अवश्य कृतार्थ होऊंगा!" इस प्रकार कह कर कर्ण दुर्योधन की ओर आया और अर्जुन को रोकने के लिए उसने दुर्योधन की ओर से चतुरंग सेना भिजवाई। परन्तु अर्जुन की बाणवृष्टि के सामने जब उसका कोई वश न चला तब तुरन्त ही कृप, भोज, अश्वत्थामा और दुर्योधन ने अर्जुन पर धावा किया। परन्तु उन्हें भी तुरन्त ही पराभूत करके और कौरवसैन्य को बाईं ओर छोड़ते हुए अर्जुन का रथ वेग से फिर कर्ण की ओर जाने लगा। उसके पीछे पीछे भीमसेन लगे ही थे। अर्जुन ने संशप्तक, म्लेच्छ, आदि योद्धाओं का और भीम ने हाथियों की सेना का भयंकर संहार जारी किया; इस कारण यह सब सेना भग कर कर्ण के आश्रय में चली गई।

भीमार्जुन ज्यों ज्यों कर्ण के रथ के समीप आने लगे त्यों त्यों युद्ध अधिक भयंकर और वेग से होने लगा। इस झपाटे में कर्ण ने कैकेयपुत्र, कैकेयसेनापति और धृष्टद्युम्न के लड़के को यमसदन भेज दिया; कर्ण का एक पुत्र भी पांडववीरों के बाणों से मारा गया। इस प्रकार अपूर्व संग्राम हो रहा था कि, इतने में भीम और दुःशासन के रथ आमने सामने आये! उसे देखते ही भीम के क्रोध और आवेश का पारावार नहीं रहा। उन्होंने पहले सपाटे में ही दुःशासन का धनुष और ध्वज तोड़ डाला; सारथी का सिर उड़ा दिया; और उसके कपाल पर बाण मार कर बड़ा भारी घाव किया। पर

मनसस्तस्य विच्छेदो न कदापि प्रजायते ॥१॥

सरस्वती के जल में खड़े होकर सहस्र वार सरस्वती का मंत्र जपै तो सरस्वती से उसका मन कभी दूर नहीं होता ॥ १ ॥

वेदव्यासोऽपि भगवान् यत्प्रसादादुदारधीः।
पुराणसंहिताकर्ता बभूवात्र न संशयः ॥ २ ॥

भगवान वेदव्यासजी भी जिसके प्रसाद से उदार-बुद्धिवाले होकर पुराण और संहिताओं के रचनेवाले हुए ॥ २ ॥

मणभद्र पुरी से भी भोटान "कैलास" मानसरोवर को कठिनता से मार्ग गया है।

मील पर सरस्वती गंगा जो भोटान कैलास मानतलाव (मानस-रोवर) की तरफ से आकर यहां पर अलकनन्दा से मिली सरस्वती-प्रयाग नाम से विख्यात है, पास ही मणभद्रपुरी (मारगा ग्राम है) गणेशगुहा, मुचकुन्दगुहा, व्यासजी के ग्रन्थ रचने की गुहा सामने के पर्वत पर श्यामकर्ण घोड़े का आकार आदि है।

मृत्यु आ गई और अब तू निर्भय हो गया!" भीमसेन का यह भयंकर और अमानुषी कृत्य देख कर कौरवसेना भय से भगने लगी; बहुतों ने आँखें बन्द कर लीं और कितनों ही के हाथ से शस्त्र छूट पड़े! इधर यह भीम-दुःशासन का युद्ध हो रहा था; उधर युधामन्यु ने कर्ण के भाई चित्रसेन को मार डाला!—(कर्णपर्व, अ० ७५-८३)।

इस प्रकार दुःशासन का वध देख कर १० कौरवों ने भीम पर धावा किया; परन्तु भीमकर्मा वृकोदर ने उन सब को दुःशासन का ही अनुगामी बना दिया! इधर नकुल के साथ कर्ण का लड़का वृषसेन भयंकर युद्ध कर रहा था। वृषसेन ने नकुल का सारथी और घोड़े मार कर उसके रथ को भी तोड़ डाला; नकुल ज्योंही हाथ में तलवार लेकर लड़ने लगा त्योंही उसने तलवार भी तोड़ डाली; और नकुल के हृदय पर एक बाण मार कर उसे घायल किया। तब नकुल भीम के रथ पर बैठा। पांच पांचाल राजपुत्र और पांच द्रौपदीपुत्रों ने वृषसेन शकुनी, अश्वत्थामा, इत्यादि कौरवों पर दृढ़ता से धावा करके युद्ध प्रारम्भ किया। नकुलपुत्र शतानीक ने कुलिंदराजपुत्र को मार डाला। इतने में अर्जुन ने एक ही सपाटे में वृषसेन का सिर और दो हाथ काट कर उसका वध किया! जब कर्ण ने देखा कि, हमारा प्रिय और शूरपुत्र मारा गया तब उसका बदला निकालने के लिए कर्ण ने स्वयं ही अर्जुन की ओर अपना रथ हँकवाया। श्रीकृष्ण ने जब देखा कि, कर्ण का रथ हमारी ओर आता है तब उन्होंने अर्जुन के शौर्य-धैर्य-पराक्रम की प्रशंसा करके और यह कह कर, कि महादेव के प्रसाद से कर्णवध करने के लिए अकेला तू ही समर्थ है, अर्जुन का तेज बढ़ाया। परन्तु उन्होंने यह भी इशारा दे दिया कि कर्ण महा पराक्रमी, शस्त्रवेत्ता और शूर धनुर्धर है और उसके समान योद्धा, तुझे छोड़ कर, और कोई नहीं है; अतएव स्थिर

में जल की पांच धाराएं नीचे गिरती हैं उनको जलरूप-धारी प्रभास, १ पुष्कर, २ गया, ३ नैमिषक्षेत्र, ४ और कुरुक्षेत्र, ५ जानो ॥

ततस्त्वपरतस्तीर्थं लोकपालाभिधं परम् ॥
यत्र संस्थापयामास लोकपालान् हरिःस्वयम् ।१।

वहां से पश्चिम की ओर लोकपाल तीर्थ है, जहां श्रीनारायण ने लोकपालों की स्थापना की थी ॥ १ ॥

यत्र स्नात्वा विधानेन कुर्यान्मध्याह्नकालिकाम् ।
संध्यां यः परमं ज्योतिर्जले पश्यति चक्षुषा ॥२॥

लिखा गया है इसको यात्रीगण ३। रोज में पार करसक्ते हैं, अधिक क्या कहें।

बदरीनाथजी के दर्शन कर लौटतीवार श्रीपुरी से (११) मील पंडुकेश्वर से (२) मील नीचे केवल लड़की का 'फय्या' नामक पुल पार कर "लोकपाल तीर्थ" को मार्ग पगडंडी से गया है, फय्या-पुल से (३) मील पर सीमउड़ार नामका गांव है, इस गांव के लोग

सौभाग्य से अब अर्जुन दावँ पर आ गया है; इस लिए कर्ण अब युद्ध बन्द करने के लिए कभी तैयार न होगा। और भी एक बात है; दुःशासन का वध करते समय भीम ने जो मर्म-भेदक भाषण किया है वह मेरे हृदय में शल्य की तरह टाँच रहा है। अब वह कुछ सख्य करने से निकल नहीं सकता।"
इसी समय शिविर से, घावों की ओषधि आदि करके, धर्मराज रथ पर बैठ कर युद्ध-चमत्कार देखने के लिए आये। कर्ण ने पहले नमस्कार के लिए अर्जुन के दस बाण मार कर युद्ध प्रारम्भ किया। इसके बाद इन दोनों समान वीरों का भयंकर अस्त्रयुद्ध होने लगा। अब यह हाल होने लगा कि, अर्जुन जो अस्त्र छोड़ते उनके विरुद्ध दूसरे अस्त्र छोड़ कर कर्ण उन्हें निष्फल करता। कर्ण ने जब श्रीकृष्ण का कवच भेद डाला तब अर्जुन ने एक अमोघ बाण मार कर कर्ण को मूर्छित किया और उसके रथ के आसपास के २००० वीर धराशायी कर दिये! खांडव-वन-दहन के समय अर्जुन के पंजे से एक अश्व-सेन नाग बच गया था; वह योगबल से, कर्ण को न मालूम होते हुए, उसके एक बाण में घुसा था। मूर्छा से जग कर बहुत दिन से, युक्तिपूर्वक, बचा रखा हुआ, यह अमोघ बाण, कर्ण ने हाथ में लिया और "हतोसि वै फाल्गुन" (अर्जुन, देख यह मारा गया!) कह कर उसे छोड़ दिया! श्रीकृष्ण ने जब देखा कि, यह भयंकर बाण आ रहा है तब उन्होंने, रथ एक बिलस्त नीचे करके, घोड़ों की भी गाँठें टेकवा दीं; अतएव इस बाण से अर्जुन का सिर नहीं कटा; पर उनका देदीप्यमान किरीट सिर्फ उड़ गया! अर्जुन सिर में सफेद साफा बांध कर फिर लड़ने लगे। अश्वसेन नाग ने, फिर स्वयं अलग हो, अर्जुन पर धावा किया; पर उन्होंने बाणों से उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले! और कुछ देर भयंकर युद्ध होने पर कर्ण के हृदय में घाव हो गया और वह मूर्छित होकर गिर पड़ा।

भविष्य बदरी । *
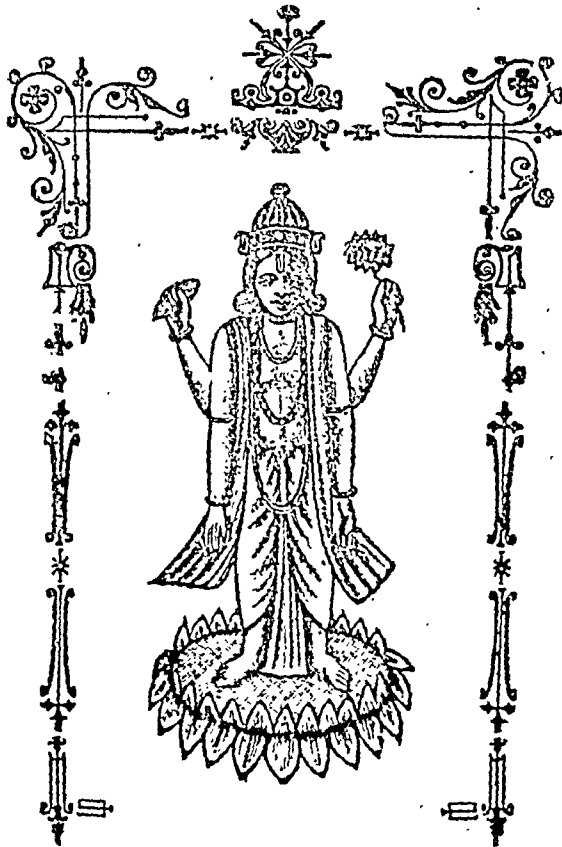
लौटकर फय्यापुल में आना चाहिये । फय्यापुल पार करके पूर्व-कथित जोशीमठ में आकर भविष्यबदरी नन्दादेवी आदि के दर्शन करते हुए कैलास यात्रा मानतलाव (मानस सरोवर) जाना चाहिये।

दशा में भरी सभा के बीच में खींच लाई गई और वहां, वड़ों के सामने, राजा लोगों तथा उसके पतियों के आगे, तुम सब ने उसकी विडम्बना की; और तू स्वयं उससे इस प्रकार के मर्मभेदक वचन बोला कि, "पांडव मर गये, नरक में चले गये; द्रौपदी! अब तू दूसरा पति कर," उस समय, हे कर्ण! तेरा धर्म कहां छिपा था? वनवास और अज्ञातवास, शर्त के अनुसार, पूर्ण करके पांडव अपना राज्य मांगते हैं और तुम लोग उन्हें राज्य नहीं लौटाते; यह भी एक धर्मकृत्य ही है? अकेले बालयोद्धा अभिमन्यु को तुम छै महारथियों ने घेर कर मार डाला, उस समय तुम्हें इस क्षत्रियधर्म का स्मरण क्यों नहीं आया? आज तक जब कभी तूने धर्म का पालन नहीं किया तब इसी समय धर्म की गप्पें मार कर तू क्यों कंठशोष कर रहा है? पांडवों का राज्य तुमने कपट और लोभ से प्रेरित होकर हरण कर लिया है; परन्तु पांडव तुमसे प्रत्यक्ष युद्ध करके-तुम्हारा वध करके-पराक्रम से अपना राज्य लौटा लेंगे।" श्रीकृष्ण के ये वचन सुन कर कर्ण का अन्त:करण दुःख, लज्जा और संताप से भर गया और वह रथ पर चढ़ कर फिर युद्ध करने लगा। आरम्भ में कुछ समय तक भयंकर युद्ध होता रहा। अन्त में कर्ण ने एक अमोघ बाण मार कर अर्जुन के हृदय पर घाव करके मूर्छित कर दिया। यह मौका देख कर कर्ण फिर रथ से नीचे उतर कर पहिया ऊपर निकालने लगा। कुछ देर बाद अर्जुन की मूर्छा जागी। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इशारा दिया कि, यही समय कर्ण के वध करने का ठीक है। तब अर्जुन ने एक बाण चला कर कर्ण का ध्वज तोड़ कर नीचे गिरा दिया। इसके बाद दूसरा एक बाण हाथ में लेकर अर्जुन ने उसमें अपना तप, गुरुशुश्रूषा और सत्य का सब पुण्य रख दिया और उसे ज्यों ही छोड़ा त्यों ही उसने, तीसरे पहर के करीब, अचानक, कर्ण का

तोयभवंनरंच ॥ २ ॥ प्रातर्नमामि बदरीपति-
पादपद्मं योगीशमानसमधुव्रतलुब्धकन्दम् ॥
यत्पांशुतो विशततापहृदाभिधेय श्रीभाविनोद-
विलसत्रिदशाभिवंद्यम् ॥३॥ नारायणं धृतकि-
रीटलसन्मणिमेखलंचक्रम्ब्बब्ज मुद्गरसुदर्शन-
चारुहस्तम् । पीताम्बरंस्मितलसन्मुखमालस-
न्तम् ॥ ४ ॥ प्रातर्वदामि बदरीश्वरमेवतीर्थं
नामानि विष्टपजना ध्रुदवानलानि । प्रह्लादना
रदसरिद्धरतप्तकुंडं नामानि विष्णुपद केवल
सार्थकानि ॥ सूक्तां मनःसरसिजे मुहुरुद्रदत्ते-
नेतां किरीटधृतहीरमणिप्रभाभिः । प्रातः
स्मृतिं स्मरति यो बदरीपतेस्तु प्रद्योतितस्य वपु-
षो लभते स्वभक्तिम् ॥ ६ ॥

इति श्रीबदरीनारायणप्रातःस्मरणं समाप्तम् ॥

अधिक है, यह बात निश्चित हो चुकी और हम अब दुर्बल हो गये। इस लिए मूर्खता से अपयश लेने की अपेक्षा यही श्रेयस्कर है कि, युधिष्ठिर के शरण जाकर, राज्य का अपना हिस्सा लेकर, सुलह कर ली जाय। धृतराष्ट्र और श्रीकृष्ण के कहने पर दयालु धर्मराज तुझे राज्य दिये बिना कभी न रहेगा। अपने प्राण बचाने के लिए, अथवा भय के कारण, मैं तुझे यह सलाह नहीं देता; किन्तु इसी हेतु से मैं यह सब कह रहा हूं कि, जिससे तेरा कल्याण हो; यह यदि तू न सुनेगा तो मरणसमय पश्चात्ताप करने का मौका आवेगा।" कृपाचार्य का यह भाषण सुन कर दुर्योधन ने एक लम्बी सांस ली और चुप बैठा रहा। कुछ देर विचार करके उसने उत्तर दिया:—"आपने मेरे हित की जो बातें अभी कहीं उनसे मेरे मन में, आपके विषय में, कोई विषाद उत्पन्न नहीं हुआ। परन्तु कपटद्यूत से राज्य हरण करके जिस धर्मराज को हम ने वनवास दिया; भरे दरबार में कैद करने का प्रयत्न करके द्रौपदी की विटम्बना करके, और अभिमन्यु का वध करके हमने जिस श्रीकृष्ण का वैर सम्पादन किया वह धर्मराज और वह श्रीकृष्ण, अब आगे हम पर विश्वास ही कैसे रखेगा? इस सर्व पृथ्वी का, सार्वभौम के नाते से, उपभोग करके, पांडवों के शरण जाकर प्राप्त किये हुए राज्य का अब मैं कैसे उपभोग करूं? सूर्य के समान अपने तेज से अनेक राजाओं को मैं पहले जीत कर चुका हूं और अब मैं दास की तरह धर्मराज के पीछे पीछे कैसे चलूं? संसार में राज्य और वैभव क्षणभंगुर हैं; इस लिये क्षत्रियों को शाश्वत कीर्ति ही का सम्पादन करना चाहिए; और युद्ध के बिना उसके मिलने की सम्भावना नहीं है। घर ही में बिछौने पर पड़े रह कर मरना क्षत्रियों के लिए अत्यन्त निन्दनीय है और रणशय्या

नन्दादेवी से कुछ उतराई लेकर कैलास का मार्ग मिल जाता है नित्तिग्राम से कुछ दूर तक याने होती मुकाम तक अंगरेज सरकार का राज्य है सड़क पुल अमन चैन से रमणीय है यहां से (४) मील पर (समूण गैठा) सरकारी पड़ाव है। समूण गैठा से (९) मील पर जूमा ग्राम है ये सरकारी पड़ावें हैं मार्ग चढाई उतारका है भोजन सामग्री कठिनता से मिलती है। जूमा से (९) मील पर मलारीग्राम है यहां पर २०० दो सौ तक मकानात हैं भोजन सामग्री सब मिल जाती है और ऊनी वस्त्र, सवारी के लिये किराए में कम मूल्य से घोड़े भी मिल जाते हैं। मलारी से (६) मील पर बांपाग्राम है यहां पर सरकारी चुंगी है भोट में विकनेवाली चीजें लिखी जाती हैं क्लर्क सरकार की तर्फ से है। बांपा से (५) मील पर नित्तिग्राम है यह ग्राम अच्छा है।

निति से-कैलास पर्वत मानसरोवर (मानतलाव) का मार्ग।

निति से (३) मील पर कसोड़ डीप मु० बकरीवालों का है क़सोड़ डीप से (४) मी० कालाजावर यहां पर भी मुकाम है। कालाजावर से (११) मील पर रिमाखिम मुकाक है रिमाखिम से (५) मील पर नानि होती है, यहां से (६) मील पर डागर मुकाम है। डागर से (६) मील पर साग मु० है साग से (६) मील पर शिवचिलम यहां पर भोटिया चीनियों का व्यापार का स्टेशन है निति वाटा, और हार, व्यांजो, दारमा आदि मुलकों के व्यापारी भोटिया (हूणदेशियों) से ऊंन, बकरी, चंवर पूछ, चंवर गाय, भोटिया घोड़ा, निमक, सुहागा घोड़ों के जीन याने घोड़े के

कौरव-पांडवों का भारी संग्राम शुरू हुआ। पहले ही सपाटे में नकुल ने चित्रसेन, सत्यसेन, आदि कर्ण के राजपुत्र, बड़े पराक्रम से मार डाले। शल्य अपनी सेना के साथ धर्मराज पर हम्ला करके युद्ध कर रहा था; वहाँ उनके आसपास कौरव-पांडव-योद्धाओं के द्वंद्वयुद्ध होने लगे। भीमसेन ने तोमर के प्रहार से शल्य का सारथी मार डाला। तब दोनों का गदायुद्ध शुरू हुआ। उसमें दोनों एक दूसरे के प्रहार से एकदम मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। यह देख कर कृपाचार्य शल्य को अपने रथ में डाल कर दूर ले गये। कुछ देर बाद मूर्छा से जगने पर शल्य फिर रथ पर चढ़ कर धर्मराज से युद्ध करने लगा। धर्मराज ने शल्य के आसपास के अनेक योद्धा और रथी मार डाले, तथा उसका ध्वज तोड़ कर नीचे गिरा दिया। परन्तु शल्य ने, लगातार बाणवर्षा करके, युधिष्ठिर को जर्जर कर डाला। यह देख कर सात्यकी, नकुल, सहदेव और भीमसेन ने शल्य पर एकदम सब ओर से शस्त्रों की मार शुरू की। पर शल्य ने उन सब की खबर ली और अपने पराक्रम से उसने सब को चकित कर दिया। अब दुर्योधन के मन में कुछ यह आशा उत्पन्न हुई कि, शल्य सब पांडवों को मार कर अन्त में हमें विजय प्राप्त कर देगा। इधर दूसरी ओर त्रिगर्त योद्धा और अश्वत्थामा के साथ अर्जुन का युद्ध हो रहा था। दोनों ओर से पराक्रम की चरमसीमा हो गई। अश्वत्थामा ने पांचाल-योद्धा सुरथ का वध किया। अर्जुन ने भी अश्वत्थामा के सहायक २ हजार रथी मार डाले। तीसरी ओर दुर्योधन और धृष्टद्युम्न का युद्ध निराला ही हो रहा था। इधर शल्य अकेले एक तरफ से, अर्जुन को छोड़ कर, बाकी चार पांडवों और सात्यकी से घनघोर युद्ध कर रहा था। बहुत देर तक शल्य हार न खाते हुए, बड़े वेग और पराक्रम से पांडवों के साथ

इनकी गुजर मुलक से जहागिर और यात्रियों के चढ़ावा से होती है यहां पर २० गज ऊंचा भी दीपक घृतपूरित हरसमय (अखंड) चलता रहता है ऐसे कई एक दीपक रहते हैं जोत के लिए यहां के राजा और रईसों ने फीमवा से गाय और बकरी २। २ तक प्रत्येक घरसें कैलास देव को चढ़ा देने का नियम किया है जिस्से घृत की कमी न होने पावे।

परिक्रमा उत्तर के गोनवासे आरम्भ है इस गोनवा में लांमा गुरु स पूजा करने के लिए दरखास्तं करनी पड़ती है मंजूर होने पर लांमा १ रकाबी पर १६ कटोरे रखकर देता है उन कटोरों में नाना प्रकारके नैवेद्य याने घी, चीनी, पंचमेवा, पीने की चाय, सत्तू आदिसे १६ कटोरों को पूरित करके ≤) तीन आने नगद देने से वहां चढ़ाया जाता है बाजे लोग गाय बकरी वस्त्र आदि यथाशक्ति चढ़ाया करते हैं यही प्रसाद वहां से भी मिलता है, मूर्ति यहां की ३० गज से भी ऊंची हर एक धातु की ढालुआं खूबसूरत बनी रहती हैं अगनित मूर्तियां बेशकीमती यहां हैं भोजनसामग्री यहां पर प्रायः भोटिया चाय और सत्तू चंवर गाय का कच्चा घृत गुड़ मिलता है। यहां की भाषा समझ में नहीं आती परन्तु दोभाषिया भी मिल जाते हैं मानसरोवर कोन परसे विना बादल हिम बरसता है।

मानसरोवर मानतलाव।

कैलास से-(१२) मील पर कैलास और हिमालयके बीच में है जिसको वहांवाले राकसताल भी कहते हैं, मानसरोवर (१५) मील लंबा और (११) मील चौड़ा है वैदिक और बौद्ध दोनों मजहबवालों

दुर्योधन ने किसी न किसी तरह उन्हें उत्साह दिलाया और उनसे पांडवों पर हम्ला कराया। पर पांडवों में विजयोत्साह की स्फूर्ति दौड़ गयी थी; इस लिए उन्होंने तुरंत ही इनका भी संहार कर डाला। बाकी बचे २१ हजार पैदल भी दुर्योधन ने भीमसेन पर भेजे; पर उनको भी भीम ने थोड़ी ही देर में भगा दिया! म्लेच्छ राजा शाल्व ने हाथी पर बैठ कर धृष्टद्युम्न पर धावा किया; पर धृष्टद्युम्न ने गदा के प्रहार से पहले शाल्व का हाथी मार डाला और फिर भाले से उसने शाल्व का भी सिर उड़ा दिया! इधर कृतवर्मा और सात्यकी, दोनों यादववीर, एक दूसरे से भिड़े थे। सात्यकी ने अपने प्रतिपक्षी को निःशस्त्र और विरथ किया। यह देख कर कृपाचार्य उसे अपने रथ में डाल कर दूर ले गये। इसके बाद कौरवपक्षीय योद्धा निराशा के वेग से और पांडवपक्षी वीर विजय के उत्साह से लड़ने लगे। चारों ओर मुख्य मुख्य महारथियों के द्वंद्वयुद्ध मच गये। शकुनी ने जब देखा कि, ये युद्ध नहीं निपटते तब उसने दस हजार गांधार सवारों के साथ पांडवसेना पर पीछे से हम्ला किया। उस पर धर्मराज ने ७०० हाथी, ५००० सवार और ३०० पैदल सेना के साथ, सहदेव को भेजा। पांडवसैन्य के पीछे इन दोनों फौजों में भयंकर संग्राम हुआ। अन्त में शकुनी अपने बचे हुए छै हजार सवारों के साथ अपनी सेना में चला गया; सहदेव भी अपनी बाकी सेना के साथ धर्मराज के पास आया। यह मौका देख कर शकुनी ने फिर धृष्टद्युम्न के पीछे अपने घोड़सवार लगाये। दोनों ओर के वीरों का फिर भयंकर संग्राम होने लगा। इस झटापट में हजारों गांधार घोड़सवार मारे गये और शकुनी के पास सिर्फ ७०० सिपाही रह गये। उनके साथ आकर वह दुर्योधन से बोला, "दुर्योधन, धैर्य मत छोड़ना, मैंने पांडवों का सब अश्वदल मार डाला, तू इतने रथी मार डाल; और फिर जो बाकी रह जायँगे उनकी खबर

है और फिर पुल के ऊपर दीवार उठाई है । यहां के कारीगर धातु की मूर्ति आदि ढालुआं अच्छी बनाते हैं और ऊनके जूते यहां पर ४० । ५० रूपये जोड़ी तक बनते हैं पशमिना आदि ऊनके वस्त्र अच्छे से अच्छे बनते हैं । कैलास से लासा मोहंनी का रास्ता है-तिब्बत, भोट, हूणदेश, चीन-इन नामोंसे विख्यात है ।

कैलास-मानसरोवर से-लौटतीवार शिवाचिलम निति होते हुए वही पूर्वकथित जोशीमठ में आना पड़ता है ॥ अब आपको बदरी-नारायण की यात्रा लाईन मिलगई है ॥

जोशीमठ से-लालसांगा-(चमोली)

तक पूर्वकथित मार्ग से आना होता है चमोली से पुल पार होकर २ चट्टियां पड़ और मठीयाणा बीच में हैं (७॥) मील पर नन्द प्रयाग अच्छी बस्ती और तीर्थ है।

विरहगंगा-माहात्म्य । *

तत उत्तरदिग्भागे नदी परमपावनी ।
व्रीहिकानाम विख्याता सर्वपापहरा मता ॥१॥

उससे उत्तर दिशा की ओर परमपवित्र और जल से पूर्ण पापको नाश करनेवाली व्रीहिकानाम की नदी विख्यात है ॥ १ ॥ (यहां पर स्नान करके लौटकर (४) मील चमोली में आकर यात्रा लाईन मिलती है) ॥

चमोली से बांया पुल पार कर (४) मील ऊपर पूर्वतर्फ "विरहीगंगा" त्रिसूली के घाक से निकल (२०) मील दशोली में बहकर अलकनन्दा में मिलगई है ।

का समय अब आ गया। कुलांगार दुर्योधन, और हमारे सब अपमानों तथा संकटों का मूल उसका मामा तू, दोनों इस समय जीते हो; अब मर्द की तरह सामना करके युद्ध करो।" इतना कह कर सहदेव आवेश के साथ लड़ने लगा। तुरंत ही उसने शकुनी का रथ और घोड़े मार कर उसका ध्वज गिरा दिया; और उसका धनुष भी तोड़ डाला। इस पर वह गदा, शक्ति, तोमर, इत्यादि शस्त्र फेंकने लगा: पर सहदेव ने उन्हें तोड़ डाला। अन्त में शकुनी भाला लेकर उसकी ओर दौड़ा; पर सहदेव ने पहले उसके दोनों हाथ काट कर फिर झपाटे के साथ सिर भी उड़ा दिया! शकुनी के मरने पर उसकी सेना थोड़ी देर लड़ती रही: पर आधी ही घड़ी में वह, और कौरवों की अन्य बची हुई सेना भी, प्रायः मारी गई। जो कुछ सेना रही वह दशों दिशा को भग गई—(शल्यपर्व, अ० १७-२८)।

दसवाँ प्रकरण।

भयंकर बदला।

स प्रकार कुरुक्षेत्र में अठारह दिन तक अठारह अक्षौहिणी सेना का भयंकर युद्ध हुआ और वहां जितने क्षत्रिय जमा हुए थे वे सब प्रायः मारे गये। पांडव-पक्ष की सात अक्षौहिणियों में से अन्त में दो हजार रथ, सात सौ हाथी, पाँच हज़ार घोड़-सवार और एक लाख पैदल सेना जीवित बची। परन्तु कौरवपक्ष की ग्यारहों अक्षौहिणी सेना का संहार हो गया। सिर्फ कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्मा ये तीन योद्धा और संजय जीते

बचे! संजय को पांडवों ने पकड़ लिया था; पर उन्होंने उसे जीवदान देकर छोड़ दिया। उपर्युक्त तीनों योद्धा अन्तिम युद्ध के बाद भग गये थे। अकेला दुर्योधन, अनाथ और असहाय अवस्था में, घोड़े पर फिरता था। अन्त की भीड़ में उसका यह घोड़ा भी मारा गया और वह भारतेश्वर दुर्योधन पूर्णतया दीन बन गया। उस समय उसे विदुर के शब्दों की अच्छी तरह याद आई। पर, पांडवों की सेना उस समय विजयोत्साह के साथ जयघोष करती हुई घूम रही थी; इस कारण बैठ कर विचार करने के लिए भी दुर्योधन को समय न था। अतएव, हाथ में गदा लेकर वह पैदल ही रणभूमि से पूर्वदिशा की ओर भगा। रणभूमि से कोस भर दूर एक सरोवर के किनारे जब दुर्योधन विश्राम ले रहा था तब संजय से उसकी भेंट हुई। उस समय दुःख के कारण पहले पहल किसीके मुख से शब्द नहीं निकला। अन्त में बड़े कष्ट से दुर्योधन ने संजय से कहा कि, "धृतराष्ट्र से यह सन्देशा बतला देना कि, मैं बहुत से घाव लगने के कारण व्याकुल हो गया हूं; पर जीता हूं और इस सरोवर में विश्राम लेता हूं।" संजय के चले जाने पर दुर्योधन उस सरोवर में घुसा; और माया से जल का स्तम्भन करके भीतर ही विश्रान्ति लेते हुए स्वस्थ पड़ रहा। संजय के बतलाने पर जब कृप आदि तीनों योद्धाओं को दुर्योधन का पता मालूम हुआ तब उन्होंने अपने थके हुए घोड़े फिर हांके और वे अपने रथ उस सरोवर के पास ले आये। दुर्योधन को बुला कर अश्वत्थामा ने कहाः—"राजा, इस समय उठ; पांडवों की सेना भी बहुत थोड़ी बाकी रह गई है और उसमें भी अधिकांश क्षत्रिय घायल हो गये हैं। यह मौका यदि सध जायगा तो हम, तुम, कृप और कृतवर्मा मिल कर, उनका तत्काल संहार करके, अब भी जय प्राप्त करेंगे।" इस पर दुर्योधन ने उत्तर दियाः—"बड़ी खुशी की बात है

जो तुम तीनों इस भयंकर युद्ध से जीते बच रहे। पर यह समय युद्ध करने के लिए उचित नहीं है। पांडवों की सेना में विजयानन्द की स्फूर्ति आ गई है और हम लोग श्रान्त तथा घायल हो गये हैं। इस लिए आज की रात विश्राम लेकर कल हम लोग युद्ध करेंगे। तुम्हारे मन में जो उदारता है और तुम्हारी मुझ पर जो भक्ति है वह उचित ही है; पर यह समय पराक्रम दिखलाने का नहीं है।" परन्तु दूसरे दिन तक मार्ग-प्रतीक्षा करते बैठने की यह सलाह अश्वत्थामा को पसन्द नहीं पड़ी। इस लिए वह बोलाः—"आज की रात खतम होने के पहले ही सब पांचाल और पांडवों का संहार करने की मैं प्रतिज्ञा करता हूं; जब तक मैं अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी न कर लूंगा तब तक यह कवच न निकालूँगा।" इस तरह उन चार योद्धाओं में अगले कर्तव्य के विषय में भवति न भवति होने लगी।

इधर कौरवसैन्य का इस प्रकार संहार हो जाने के कारण कौरवों के शिविर में बचे हुए नौकर-चाकर और राजस्त्रियों में बहुत ही हाहाकार मच गया। संजय और दुर्योधन के जीते बचे हुए अमात्यों ने, उन स्त्रियों को वाहनों पर बैठा कर जल्दी जल्दी से पलायन किया। युयुत्सु, जो पांडवों के पक्ष में आ मिला था वह भी, धर्मराज की आज्ञा से, उनके साथ नगर को चला गया। जो स्त्रियां राजमहल में भी कदाचित् ही सूर्य के सामने निकलती थीं वे जब सब के सामने शोक करती हुई राजमहल की ओर जाने लगीं तब नगरनिवासियों को भी बहुत खेद हुआ। युयुत्सु और संजय ने युद्ध का यह अन्त जब धृतराष्ट्र को बतलाया तब उसके और गांधारी के दुःख का पारावार नहीं रहा! इधर यद्यपि सब कौरवसेना नामशेष हो गई थी, तथापि दुर्योधन के हाथ से निकल जाने के कारण पांडवों के आनन्द में कुछ कमी आ गई थी। उन्होंने चारों ओर रणभूमि को खोज डाला; पर दुर्योधन का कहीं भी पता

न चला। तब यह काम अपने गुप्तचरों को सौंप कर पांडव शिविर को लौट आये। इधर सरोवर पर जिस समय अश्वत्थामा और दुर्योधन की बातचीत हो रही थी उसी समय भीमसेन के शिकारी लोग वहां पानी पीने के लिए गये। उन्होंने वह बातचीत सुनी और पांडवों के शिविर में आ कर दुर्योधन के छिप बैठने का सब हाल बतलाया। दुर्योधन का पता पा कर पांडवों को अत्यन्त आनन्द हुआ और अठारह दिन के युद्ध का अन्तिम निपटारा करने के लिए उनकी सेना, बाजेगाजे के साथ, जयघोष करती हुई, सरोवर की ओर आने लगी। पांडवों की सेना का कोलाहल सुन कर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा, दुर्योधन से विदा होकर, रथ में बैठ कर, शीघ्रता के साथ, दूर चले गये। एक बड़े वट-वृक्ष के नीचे सुभीते की और सुरक्षित जगह देख कर उन्होंने वह रात वहीं बिताने का निश्चय किया। इधर पांडव सरोवर के पास आ कर क्या देखते हैं कि, दुर्योधन माया से पानी का स्तम्भन करके भीतर छिपा बैठा है। धर्मराज की यह सलाह पड़ी कि, जब तक दुर्योधन माया के आश्रय से छिपा बैठा है तब तक वह, इस दशा में ,मारा नहीं जा सकता; अतएव उसके बाहर निकलते तक मार्गप्रतीक्षा करनी चाहिए। पर श्रीकृष्ण ने कहा कि मायावी योद्धा का वध माया से ही करना चाहिए; मार्गप्रतीक्षा करते रहने से कोई लाभ न होगा। कोई न कोई युक्तिप्रयुक्ति करके इस शत्रु का नाश ही कर डालना चाहिए। श्रीकृष्ण के इस कथन के बाद धर्मराज और दुर्योधन में इस प्रकार संवाद हुआः—

धर्मराजः—दुर्योधन, सब क्षत्रियों तथा अपने कुल का नाश करके अब डरपोक की तरह जीव बचाने के लिए सरोवर में क्यों छिपा बैठा है ? तेरा वह मान, गर्व, अकड़ और

बड़ाई कहाँ चली गई ? तू क्षत्रिय, कौरवों के प्रख्यात कुल में उत्पन्न हुआ है; पर युद्ध का अन्तिम निपटारा होने के पहले ही क्यों भग आया है ? क्षत्रियधर्म का उल्लंघन न करते हुए, बाहर निकल कर, हम से युद्ध कर; और हमारा वध करके पृथ्वी का राज्य कर अथवा रण में पतन हो कर स्वर्ग प्राप्त कर। दुर्योधनः—प्राणियों को संकट में यदि कुछ डर मालूम हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। पर मैं जो यहाँ आया हूँ सो डर के कारण, विषाद से, अथवा जी बचाने के लिए, नहीं आया हूँ। मैं निःशस्त्र, विरथ, असहाय हो कर, बहुत थक जाने के कारण, केवल विश्रान्ति के लिए, यहाँ आया हूँ। धर्मराज ! तुम कोई चिन्ता मत करो; मैं बाहर निकल कर अभी तुम से युद्ध करता हूँ। धर्मराजः—हमें कोई चिन्ता नहीं है। हम तो तुझे बहुत देर से खोज रहे हैं। इस लिए अभी बाहर निकल कर युद्ध कर। तू यदि मर जायगा तो तुझे स्वर्ग मिलेगा और यदि हम को मारेगा तो पृथ्वी का राज्य लेगा। दुर्योधनः—पृथ्वी का राज्य लेकर अब मुझे क्या करना है ? तुम सब को मार कर विजय प्राप्त करने का सामर्थ्य और तेज अब भी मुझ में है; पर जिनके लिए राज्य चाहिए वे भाई, पुत्र, स्नेही, पुरखे, आदि सब मारे गये और पृथ्वी भर के प्रायः सब क्षत्रिय, राजा और सम्पत्ति नष्ट हो गई हैं; यह पृथिवी अब विधवा के समान हो गई है; अब प्रसन्नतापूर्वक तू इसका उपभोग कर। मैं वल्कल धारण करके वन को चला जाऊंगा। धर्मराजः—सरोवर में छिप कर इस प्रकार के निष्कारण रुदन-गीत गाने की आवश्यकता नहीं है। अब तेरा पृथ्वी का स्वामित्व नष्ट हो गया; अतएव उसका राज्य मुझे दान करने का तुझे क्या अधिकार है ? यदि तुझे अधिकार भी होता तो भी तेरा दान किया हुआ राज्य मैं

कभी न लेता। क्योंकि दान का स्वीकार करना क्षत्रियों के लिए अधर्म है। पहले जब हम न्याय से, और कुलक्षय को टालने के लिए, अपना राज्य शान्ति के साथ मांग रहे थे तब तो तूने दिया नहीं और यह कहता रहा कि, सुई के अग्रभाग पर जितनी मिट्टी रहेगी उतनी भी न दूंगा; और अब तू सारी पृथ्वी दान करने के लिए तैयार है! यह आश्चर्य ही है! हमें ऐसा राज्य नहीं चाहिए। तुझे प्रत्यक्ष युद्ध में जीत कर और तेरा वध करके ही हम पराक्रम से राज्य प्राप्त करेंगे। बाहर आकर सच्चे क्षत्रिय की तरह युद्ध कर। तू और मैं दोनों जब तक जीते हैं तब तक सारा जगत् संशय में ही है कि, जय किसे मिला। पहले अनेक बार तूने हमारे प्राण लेने का प्रयत्न किया; पर अब अवश्य ही तेरा जीव मेरे हाथ में आ गया है। चाहे अब तू पृथ्वी भर का राज्य देने के लिए भले ही तैयार हो; तथापि, अब, तेरे प्राण नहीं बचते। दुर्योधनः—ठीक है, मैं तुम्हारे सब के साथ युद्ध करके तुम्हें मार डालता हूं; और मेरे लिए अब तक जो वीर रण में पतन हुए हैं उनका ऋण चुकाता हूं। पर यह ध्यान में रहे कि, मैं अकेला, निःशस्त्र, विरथ, श्रान्त और घायल हूं; अतएव तुम सब मुझ से एकदम न लड़ते हुए अलग अलग लड़ो। ऐसा करने से मैं अब भी तुम्हें अपना पराक्रम दिखला दूंगा। आज तक बहुत से युद्ध हुए, पर उनमें अप्रतिम गदायुद्ध किसीको देखने को नहीं मिला। इस लिए मेरे साथ गदायुद्ध करने के लिए तुम में से जो शूर वीर तैयार हो वह आगे बढ़े; फिर अपूर्व गदायुद्ध का चमत्कार मैं तुम्हें दिखलाता हूं। धर्मराजः—शाबास, तू भी क्षत्रियधर्म जानता है, यह अच्छा है। हे दुर्योधन! पुरुष की तरह बाहर निकल और चाहे जो शस्त्र लेकर हम में से चाहे जिस एक से युद्ध कर। इतना ही नहीं; किन्तु हम

में से चाहे जिस एक का यदि तू वध कर डाले गा तो हम तुझे राजा मान कर सब राज्य तुझको सौंप देंगे। सरोवर से बाहर निकल कर मर्द की तरह युद्ध कर; इस समय चाहे इन्द्र भी तेरी सहायता के लिए क्यों न आ जायँ; तथापि तू जीता न बचेगा।

इस प्रकार के मर्मभेदक भाषणों से दुर्योधन को स्फूर्ति और आवेश आ गया और वह नाग की तरह क्रोध से फुसकारता हुआ, कंधे पर गदा लेकर सरोवर से ऊपर निकल आया; और तैरते तैरते, त्वेष से, किनारे की ओर आने लगा। यह देख कर पांडवों ने तालियां बजाईं। इस कारण दुर्योधन और भी चिढ़ गया और गदा लेकर पांडवों के सामने आकर बोला:—अब तुम चाहे जितना हँसो; पर तुम्हें शीघ्र ही यमसदन भेज कर, मैं इसका प्रायश्चित्त, तुम्हें देता हूँ। गदा को छोड़ कर मेरे पास और कोई शस्त्र नहीं है, और शरीर पर कवच भी नहीं है; तथापि तुममें से चाहे जो गदा लेकर मुझसे लड़ने के लिए आगे बढ़े। एक के साथ अनेकों का एकदम युद्ध करना न्यायसंगत नहीं है और क्षत्रियधर्म के विरुद्ध है; यह तुम जानते ही हो। धर्मराज:—यह सब तो सच है; पर तुम सब लोग, शूर और क्षत्रियधर्म जाननेवाले होकर भी, जब अभिमन्यु पर एकदम टूट पड़े और उसका वध किया तब तुम्हारा यह न्यायविचार कहां गया था? मनुष्य जब वैभव से मदमत्त हो जाता है तब उसे यह नहीं देख पड़ता कि हमारे दुष्कृत्यों से स्वर्ग का द्वार बन्द होता है; पर संकट में पड़ने पर वह अवश्य ही धर्माधर्म का विचार करने लगता है। दुर्योधन, तू चाहे जैसा बर्ताव कर; पर हम अपना धर्म न छोड़ेंगे। कवच पहनो, शिरस्त्राण बाँधो, गदा लो;

अधिक क्या; प्राण छोड़ कर चाहे जो माँग लो, हम देने को तैयार हैं। चाहे जो हथियार लेकर हम पांडवों में से किसी एक को मार डालो; फिर हम तुझे ही राजा मान लेंगे। युधिष्ठिर का यह कहना सुन कर दुर्योधन ने कवच और शिरस्त्राण पहना; और हाथ में गदा लेकर वह बड़े गर्व के साथ बोला, " गदायुद्ध में मेरी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। पांडवों में से चाहे जो एक मेरे साथ गदायुद्ध करने के लिए आगे बढ़े। यह अब घड़ी भर ही में मालूम हो जायगा कि मेरा यह कहना सच है या गर्वोक्ति है। "

इस बातचीत के समय श्रीकृष्ण बिलकुल चुप थे, उन्होंने कुछ भी नहीं कहा। परन्तु जब उन्होंने देखा कि बारह वर्ष वनवास एक वर्ष अज्ञातवास और अठारह दिन के युद्ध की सब आपत्तियों, दुःखों और संकटों का तथा सारे पराक्रम के फल मिलने का जो मौका आ गया है वह युधिष्ठिर आप ही आप शत्रु के शिपुर्द कर रहा है तब उन्हें बड़ा खेद हुआ और उन्होंने कहा:—भीमसेन को छोड़ कर गदायुद्ध में दुर्योधन के सामने और कोई खड़ा भी नहीं रह सकता। और यह भी कुछ ठीक नहीं है कि भीमसेन जीत ही जाय। क्योंकि भीम चाहे शक्ति में अधिक हो; तथापि गदायुद्ध की कुशलता में दुर्योधन ही अधिक श्रेष्ठ है। इस कारण यह भी नहीं जान पड़ता कि भीमसेन न्यायपूर्वक दुर्योधन को जीत सकेगा। ऐसी दशा में युधिष्ठिर का यह कथन, कि हममें से चाहे जिसको मार कर तू राजा बन, बिलकुल अविचार और दुःसाहस का है। धर्मराज ने यह फिर एक प्रकार का द्यूत ही मचाया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जान पड़ता है, पांडु और कुन्ती के पुत्रों के भाग्य में सदा के लिए वनवास और भिक्षा ही बदी है; इनके कपाल में राज्यसुख बिलकुल ही नहीं लिखा।" श्रीकृष्ण का यह भाषण सुन कर भीम ने उनका संशय दूर किया। भीम ने

सब को आश्वासन दिया कि इस गदायुद्ध में दुर्योधन का वध करके मैं पांडवपक्ष को विजय और युधिष्ठिर को राज्य देता हूं तथा आज तक की कट्टर शत्रुता का फैसला करता हूं इसके बाद हाथ में गदा लेकर भीमसेन युद्ध के लिए तैयार हुए। कौरवों के, पहले के, सब दुष्कृत्यों को याद करके भीमसेन आवेश के साथ दुर्योधन से बोले:—धृतराष्ट्र ने और तुम कौरवों ने-जिन्होंने तुम्हारा कोई भी अपराध नहीं किया ऐसे—हम पांडवों की आज तक जो विटम्बना की, वारणावत नगर में और भरी सभा में जो जो अमानुषी कार्य किये उन सब की-अरे दुष्ट!-अब तू याद कर ले। तेरे इस नीच कृत्य के कारण ही हम लोगों के आजा भीष्म, गुरु द्रोण, प्रतापी कर्ण और शल्य तथा वैर का मूल कर्ता शकुनी और दुःशासन आदि तेरे भाई धराशायी हुए हैं और सिर्फ तू एक कुलांगार अधमाधम आज तक, किसी न किसी तरह जीता बचा है। पर अब मैं इस युद्ध में, तेरे प्राण, वैभव और राज्य का अपने पराक्रम से हरण करूंगा; संभाल!" इस पर दुर्योधन ने भी उतने ही आवेश से उत्तर दिया:—"भीम, व्यर्थ बकबक न करना; तुझे जो कुछ पराक्रम दिखलाना हो वह करके दिखला। गदा-युद्ध में मेरी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है और अब तक मुझे कोई इस युद्ध में जीत भी नहीं सका है, तथा आगे भी न्याय से जीत नहीं सकता। अभी जो तूने मेरे दुष्कर्म बत-लाये वे सब मैंने अवश्य किये हैं-मैंने अपने पराक्रम से तुम्हें वनवास दिया है, तुमसे विराट के घर की टहल करवाई है और वेष तक बदलवाया है, तथा इस युद्ध में भी, यदि मेरे बांधव मरे हैं तो तुम्हारे पक्ष की भी प्राणहानि कुछ कम नहीं हुई है-बराबर ही हुई है। इस गदायुद्ध में यदि मैं मारा गया तब तो अच्छी ही है; पर यदि तुम मुझे अन्याय से मारोगे तो तुम्हारा अपयश अवश्य अक्षय रहेगा। शरत्काल के मेघों

की तरह शुष्क गर्जना न करते हुए गदाप्रहारों की वृष्टि करके जो कुछ पराक्रम तुझे दिखाना हो सो इस समय दिखा" इस प्रकार वार्तालाप होने के बाद, अपनी अपनी गदा सम्हाल कर दोनों गदाधर वीर युद्ध के लिए तैयार हुए। इतने ही में इन दोनों के गदायुद्ध की शिक्षा देनेवाले, उनके गुरु, बलराम भी तीर्थयात्रा समाप्त करके, युद्ध देखने के लिए, आ गये। उन्हें जब सन्मानपूर्वक सब ने योग्य स्थान में बैठा दिया तब भीमसेन और दुर्योधन एक-दूसरे से भिड़े—(शल्यपर्व, अ० २९-३४)।

आपस में गदा-प्रहार शुरू होने के पहले भीमसेन ने फिर दुर्योधन को, उसके नीच कर्मों की याद दिला दी। उन्होंने कहा, "अब तुझे फिर हस्तिनापुर, धृतराष्ट्र, गांधारी या तेरी स्त्रियां देखने को नहीं मिलेंगी। तू मेरी गदा से जर्जर होकर मरने ही वाला है।" इस पर दुर्योधन ने उत्तर दिया कि, तेरी ऐसी घुड़कियों से डरनेवाला आदमी मैं नहीं हूं; जो कुछ तुझे करना हो सो, व्यर्थ बड़बड़ न करते हुए, प्रत्यक्ष कृति से कर दिखा। इस प्रकार बातचीत होने के बाद भीम-दुर्योधन ने आपस में, एक-दूसरे पर, प्रहार करना शुरू किया। भीम में बल अधिक था; पर दुर्योधन का गदायुद्ध का अभ्यास अधिक होने के कारण वह उसमें विशेष कुशल था। इस कारण, बहुत देर तक, भीम के लगभग सब प्रहार दुर्योधन ने चुका कर निष्फल कर दिये। इसके सिवा दुर्योधन के कई प्रहार भीम के लगे; पर सामर्थ्य में श्रेष्ठ होने के कारण भीम के चोट नहीं आई। युद्ध बड़े वेग से होने लगा। कभी दुर्योधन और कभी भीम गदाप्रहार से मूर्छित होने लगे। पर कुछ देर बाद सावधान होकर वे फिर लड़ने लगे। भीम-दुर्योधन के गदायुद्ध के गुणावगुण श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बतलाये और कहा कि न्याय से युद्ध करके भीम दुर्योधन का वध कर नहीं

सकता। कपटी से कपट और मायावी से माया किये बिना काम नहीं चल सकता। सभा में दुर्योधन ने जब द्रौपदी को बाईं जंघा खोल कर दिखलाई तब भीम ने जो प्रतिज्ञा की है वही इस समय जब पूरी की जायगी तभी पांडवों को जय मिल सकता है। श्रीकृष्ण का यह कथन सुन कर अर्जुन ने अपनी वामजंघा पर थाप देकर भीम को इशारा दिया। उसे समझ कर भीम, मौका देखते हुए, दक्षता से लड़ने लगे। लड़ते लड़ते भीम ने अपने एक प्रहार से जब दुर्योधन से घुटने टिकवा दिये तब पांडव पक्षियों ने जयघोष किया; इस कारण चिढ़ कर दुर्योधन कुछ असावधानी से लड़ने लगा। इधर भीमसेन की गदा के प्रहार भी अधिक वेग से होने लगे। उन प्रहारों को दुर्योधन ने उछल उछल कर और अन्य धोखे देकर बचाया। पर अन्त में जब एक बार दुर्योधन वार बचाने के लिए ऊपर उछला तब भीम ने उसकी जंघा पर. बड़े वेग से गदा चलाई। इस प्रहार के लगते ही दुर्योधन की जंघा टूट गई और वह चिल्लाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। तेरह वर्ष तक जो क्रोध और वैर अन्तःकरण में दबा हुआ था उसका यह अन्त देखकर सब पांडवपक्षी वीरों को आनन्द हुआ। भीमसेन का आवेश तो उस समय अनिवार्य था। दुर्योधन के पास जाकर उन्होंने उसके पहले के सब पापों और अपराधों की उसे याद दिलाई और बायें पैर की पहली लात से उसका मुकुट उड़ा कर फिर उसके मस्तक पर लात मारी। इसके बाद यह कह कर भीमसेन आनन्द से गर्जने लगे कि "भरी सभा में जिस समय द्रौपदी की विडम्बना हो रही थी उस समय हमें 'षंढ' कह कर हँसनेवाले सब कौरव, द्रौपदी के पुण्य से, दुर्योधनसहित गतप्राण हो गये हैं। हमने, कपटद्यूत, मिथ्याचार या आग लगाने आदि का आश्रय न करते हुए, अपने बाहुबल से, शत्रुओं को जीत कर, यमसदन भेज दिया

है। अब इसके लिए चाहे हमें स्वर्ग मिले चाहे नरकयातना भोगनी पड़े; उसकी हमें कोई चिन्ता नहीं!" पर इधर दयालु और धर्मात्मा युधिष्ठिर के मन की निराली ही स्थिति हो गई थी। धर्मराज ने जब देखा कि यह ग्यारह अक्षौहिणियों का अधिपति और राजा होकर भी, दुर्भाग्य के कारण, अन्त में अपने भाईबन्द, पुत्र और अमात्यों के सहित रण में हतवीर्य होकर धूल में लोट रहा है तब उनका अन्तःकरण द्रवित हो उठा; और उसमें भी जब उन्होंने देखा कि भीमसेन ने इसके लातें मारीं तब तो उनका अन्तःकरण बहुत ही करुणार्द्र हो गया। युधिष्ठिर ने यह कह कर भीम को दोष दिया कि, "तूने अपने वैर का, बुरे भले उपायों से, फैसला करके यद्यपि दुर्योधन का वध अवश्य किया तथापि, दुर्योधन, चाहे जैसा हो, राजा है और अपना भाई ही है। जब कि वह ऐसी दशा में मूर्छित पड़ा हुआ है तब उसके लातें मारना अनुचित ही है।" इसके बाद वे दुर्योधन के पास आकर बोले:— "दुर्योधन, तू इस पराजय पर शोक मत कर। अपने कर्म के फेर में पड़ कर ही कौरवपांडवों ने एक दूसरे का नाश किया है। तू रण में मरता है; इस लिए तुझे अवश्य ही स्वर्ग मिलेगा; और हम जीते रह कर, धृतराष्ट्र की विधवा पुतोहु और नतेहुओं के शाप सुनते हुए, दुःख में दिन काटेंगे।"

इधर धर्मराज तो इस प्रकार शोक कर रहे थे और उधर बलराम ने जब देखा कि हमारे एक शिष्य ने दूसरे शिष्य का गदायुद्ध का नियम तोड़ कर, वध किया तब उन्हें बहुत ही क्रोध आया। गदायुद्ध का यह नियम, कि नाभि के नीचे के भाग पर गदाधर को प्रहार न करना चाहिए, भीमने, दुर्योधन की जंघा पर प्रहार करके, तोड़ डाला; उसका प्रायश्चित्त देने के लिए बलराम अपना 'लांगल' शस्त्र हाथ में लेकर भीम पर दौड़ जाने लगे। तब श्रीकृष्ण ने उन्हें रोक लिया और सम-

माने लगे। "उन्होंने कहा, पांडव अपने फुफेरे भाई हैं। हम से उनका अकृत्रिम स्नेह भी है। भीम ने प्रतिज्ञा की थी कि दुर्योधन की जंघा गदा से तोड़ूंगा। क्षत्रिय के नाते से वह प्रतिज्ञा पूर्ण करना उनका कर्तव्य था। इसके लिए उन्हें शासन करना उचित नहीं है।" इस प्रकार की बातें कह कर श्रीकृष्ण अपने बड़े भाई का क्रोध शान्त कर रहे थे। पर इससे बलराम का समाधान नहीं हुआ और वे वैसे ही रथ में बैठ कर, क्रोध-पूर्वक, द्वारका को चले गये। धर्मराज को दुर्योधनवध पर जो दुःख हुआ और उसके सिर पर लात मारने के कारण भीम पर जो उन्हें क्रोध हुआ उसे शान्त करने का भी श्रीकृष्ण ने प्रयत्न किया। अन्त में युधिष्ठिर ने कहा, कि कौरवों ने जो अनुचित विटम्बना की; जो मर्मभेदक वचन कहे और वनवास देकर जो दुःख दिये उनका स्मरण हो आने से, भान न रहने के कारण, भीमसेन ने यह अधर्म किया।" इसके बाद उन्होंने भीम को क्षमा करके उनके कार्य का अनुमोदन किया। जो कौरव, पांडवों को अयोग्य रीति से सताते थे और उनके राज्योपभोग में विघ्न डालते थे उनका निर्दलन करके और पृथ्वी का निष्कंटक राज्य अपने बड़े भाई के चरणों में अर्पण करके भीमसेन भी कृतार्थ हुए।

भीम-द्वारा दुर्योधन के इस प्रकार मारे जाने पर पांडवपक्ष के तरुणवीरों को अत्यन्त आनन्द हुआ। भीमसेन ने दुःशासन का वध करके द्रौपदी की विटम्बना का जैसा भयंकर बदला निकाला उसी प्रकार दुर्योधन को भी रणभूमि में लोटा कर उसके सिर में लातों की ठोकरें लगाईं, यह बहुत अच्छा हुआ; इत्यादि वाक्य वे लोग इस प्रकार कहने लगे कि जिससे दुर्योधन को सुन पड़े! तब श्रीकृष्ण कुछ गम्भीरता और कुछ उपरोधिक रीति से बोलेः—" यह शत्रु धूल खाता हुआ पड़ा है; बार बार टोंचते हुए बोल कर इसे दुखाने से क्या प्रयोजन

है ? विदुर, भीष्म, द्रोण, आदि पुरुषों का उपदेश न सुन कर यह पापी जब निर्लज्जता से बर्ताव करने लगा तभी से यह मरा हुआ है। अब तो यह पुरुषाधम लकड़े के समान होकर गिर पड़ा है। अब कठोर भाषण करके इसको दुखाने से क्या मतलब है ?" श्रीकृष्ण का यह अधिक्षेप का भाषण सुन कर दुर्योधन को बहुत ही सन्ताप हुआ और पूँछ टूटे हुए सांप की तरह त्वेष से आधा ऊपर उठ कर वह बोला, "अरे कंस के दास के बच्चे ! मेरी जंघा तुड़वाने के लिए जो तूने अर्जुन के द्वारा भीमसेन को इशारा दिलवाया सो मैंने देखा। अधर्म से मुझे मार कर ऊपर से ऐसी बातें करते हो ! तुम्हें शरम नहीं आती ? तुमने शिखंडी को आगे करके भीष्म को मारा; अश्वत्थामा के मरने की झूठी गप्प उड़ा कर द्रोण का—जब वे निःशस्त्र थे तब—वध किया; कर्ण जब चक्र उठाने में लगा था तब तुमने उसका शिरच्छेद किया; और गदायुद्ध का धर्म छोड़ कर मेरी जंघा पर भी प्रहार किया। सरल युद्ध करनेवाले हम वीरों का कपट से वध होते हुए तूने निवारण नहीं किया; अतएव यही कहना चाहिए कि 'न ते लज्जा न ते घृणा' (तुझे लज्जा भी नहीं और दया भी नहीं)।" इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दियाः—"भीष्म, द्रोण, कर्ण तेरे ही दुष्कर्मों के कारण मारे गये हैं और तू भी अब अपने ही पापों का फल भोग रहा है।

याच्यमानो मया मूढ पित्र्यमंशं न दित्ससि।
पांडवेभ्यः स्वराज्यं च लोभात् शकुनिनिश्चयात् ॥

मूढ़, मैं याचना करने के लिए आया; तथापि तूने शकुनी की धुन में पड़ कर पांडवों का पितृपरम्परागत राज्यभाग और स्वराज्य, लोभ के कारण, उन्हें नहीं दिया, भीम को विष दिया, पांडवों को, कुन्तीसहित, लाक्षागृह में जला डालने का

प्रयत्न किया; भोलेभाले और अप्रवीण युधिष्ठिर को द्यूत के लिए बुला कर तूने कपट से उनका सर्वस्व हरण किया; द्रौपदी की, भरी सभा में, अमानुषी विडम्बना की; उसी समय, रे नीच! तू वध का पात्र हो चुका था। पांडवों के किये जो जो कपट तू बतलाता है वे सब तेरे ही कर्मों के फल हैं। केवल राज्यतृष्णा और राज्यलोभ में पड़ कर तूने जो जो पाप किये उन सब का परिणाम अब भोग।" दुर्योधनः—"खरे क्षत्रियों की तरह मैंने अध्ययन, दान और यज्ञयाग किये हैं। पृथ्वी का राज्य करके शत्रुओं को पैर तले दबाया है; दिव्य ऐश्वर्य और सुख, जो अन्य राजाओं को दुर्लभ है, वह, मैंने भोगा है। और अब भी मुझे वह मरण प्राप्त होता है जो सच्चे क्षत्रिय के लिए श्रेयस्कर है; अतएव अब हम सब स्वर्ग-सुख भोगने के लिए जाते हैं। तुम अवश्य ही जीते रह कर, निराश हुए रोते बैठे रहो।" मानी दुर्योधन का यह भाषण सुन कर उस पर देवों ने पुष्पवृष्टी की और धन्यवाद दिया।

इसके बाद पांडव, अपने सब वीरोंसहित, रथ पर बैठ कर, जयघोष करते हुए, कौरवों के शिबिर में लौट आये। श्रीकृष्ण के कहने पर, रथ में अपने अक्षय तरकस और गांडीव धनुष रख कर, अर्जुन नीचे उतरे; उनके पाछे पीछे श्रीकृष्ण ज्योंही रथ से नीचे उतरे त्योंही रथ का कपिध्वज एकदम गुप्त हो गया और रथ तथा घोड़े अकस्मात जल कर खाक हो गये। तब श्रीकृष्ण ने पांडवों को समझाया कि भीष्म और द्रोण आदि के छोड़े हुए भयंकर तथा दिव्य अस्त्रों के प्रभाव से यह रथ पहले ही जल गया था; पर मैं बैठा था; इस कारण वह अब तक बना रहा। इसके बाद सब वीर रथों से उतर कर शिबिर के तम्बुओं में विश्रान्ति लेने गये। श्रीकृष्ण, सात्यकी और पांच पांडव यह कह कर, कि कोई मंगलकर्म करना है,

शिविर में न रहते हुए दूर एक नदी के किनारे चले गये और उस रात को वहीं रहे।

अब धर्मराज को यह चिन्ता हुई कि यह समाचार गांधारी को कौन बतलावे कि अठारह दिन के भयंकर संग्राम में दुर्योधन आदि सब कौरव, भीष्मद्रोणादि महान् वीर, अपने पुत्र, आप्त और अन्य सब राजा मर गये और सब कौरवस्त्रियां तथा नतेहुवें विधवा हो गईं। इसके सिवा वे इस बात पर डरे कि, जब गांधारी, दुर्योधनादि अपने लड़कों के वध का हाल सुनेगी तब वह क्रोधाविष्ट होकर हमको शाप देकर भस्म कर देगी, और इतने भारी प्रयत्न से जो विजय प्राप्त हुआ है वह निष्फल हो जायगा। उन्होंने सोचा कि प्रत्येक समय सहायता और सलाह देकर श्रीकृष्ण ने ही यह विजय प्राप्त कराया है; अतएव इन्हींको गांधारी के पास भेजना चाहिए। यह सोच कर उन्होंने श्रीकृष्ण से वहां जाने की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण शीघ्रता के साथ रथ में बैठ कर वैसे ही सीधे हस्तिनापुर चले गये। राजमहल में जाकर जब श्रीकृष्ण ने वृद्ध और अंधे धृतराष्ट्र तथा गांधारी को देखा तब वे भी अपने दुःख को नहीं रोक सके। कुछ देर बाद मन स्थिर होने पर वे धृतराष्ट्र और गांधारी से बोलेः—"तुम्हारी, बड़ों की आज्ञा पाकर पांडव द्यूत खेले, वन में जाकर १२ वर्ष उन्होंने क्लेश भोगे और अज्ञातवास का एक वर्ष अपमान में व्यतीत किया। उनके लौट आने पर भरे दरबार में मैंने यह याचना की कि, पांडवों के लिए सिर्फ पांच गावँ दो; जिससे कुलक्षय न हो। पर भाग्य के चक्कर में पड़ कर, लोभ के कारण, तुमने कुछ नहीं सुना, उसका परिणाम यह हुआ है कि, कुरुक्षेत्र में सब क्षत्रियों का नाश हो गया है। धर्म, न्याय या स्नेह, आदि किसी दृष्टि से भी पांडवों की ओर दोष नहीं है और वे पूर्ववत् तुम्हारे साथ पितृभक्ति से वर्ताव करने के लिए तैयार हैं,

धर्मराज की तुम पर कितनी भक्ति है सो तुम्हें मालूम ही है। युद्ध में उसके द्वारा जो कुलक्षय और क्षत्रियनाश हुआ है उसके लिए उसे बहुत दुःख और लज्जा मालूम हो रही है और इसी कारण वह तुम्हारे सामने आने में डरता है। अब हमारी इतनी ही विनती है कि, पांडवों की ओर इस युद्ध का कुछ भी दोष न समझ कर तुम उनके साथ प्रेम का बर्ताव करो।" श्रीकृष्ण का यह कथन सुन कर गांधारी को थोड़ी सी चैन पड़ी। वह यह कह कर जोर जोर से रोने लगी कि वृद्ध, अंध, पुत्रहीन और अनाथ धृतराष्ट्र महाराज के लिए तथा मेरे लिए अब, हे श्रीकृष्ण, तुझको और पांडवों को छोड़ कर अन्य कोई आधार नहीं है। उस समय फिर उसको न समझा कर श्रीकृष्ण जल्दी जल्दी से, वैसे ही, पांडवों के पास लौट आये।

इधर कुछ लोगों ने कृप, अश्वत्थामा और कृतवर्मा से जा कर कहा कि, भीम के गदाप्रहार से दुर्योधन की जंघा टूट गई और वह पड़ा विलखता है। यह सुन कर वे तीनों रथी. रथ में बैठ कर शीघ्र ही वहां आये। जब उन्होंने देखा कि, सब राजाओं का सार्वभौम राजा और ग्यारह अक्षौहिणियों का अधिपति रक्त से सना हुआ धूल में पड़ा लोट रहा है तब उन्हें बहुत दुःख हुआ और वे शोक करने लगे। यह देख कर दुर्योधन ने यह कह कर उनका समाधान किया कि "जब तक जीता था तब तक अपने शत्रुओं के सिर पर पैर रख कर ऐश्वर्य और राज्यसुख भोगा। सच्चे क्षत्रिय की तरह हमने कभी लड़ाई में पीछा नहीं पकड़ा; और अन्त में, जब कि मैं सरलता से लड़ रहा था तब पांडवों ने, कपट से, और युद्ध के नियम तोड़ कर, हमको रण में गिराया है; अब हमें बहुत जल्द स्वर्गसुख मिलनेवाला है। ऐसी दशा में अश्वत्थामा आदि हमारे लिए कुछ भी शोक न करें।" दुर्योधन की यह

स्थिति देख कर अश्वत्थामा के मन का दुःख दूर हो गया, परन्तु उसे बहुत संताप और क्षेप आ गया और पांडवों का वध करके बदला निकालने की भी उसने प्रतिज्ञा की। उसे सुन कर दुर्योधन की अन्तकाल की वेदना जाती रही और क्षणमात्र के लिए उसे हर्ष हुआ। कृपाचार्य से पानी मँगा कर उसने अश्वत्थामा को, "अपना अन्तिम सेनापति" कह कर, अभिषेक किया—(शल्यपर्व, अ० ३५–६५)।

लाचारी से दुर्योधन को वहीं बिलखता हुआ छोड़ कर अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा, तीनों कौरव वीर, फिर उस विस्तीर्ण वटवृक्ष के नीचे आ रहे। रात हो जाने पर घावों और श्रमों से व्याकुल तथा थके हुए कृप और कृतवर्मा को शीघ्र ही गाढ़ निद्रा आ गई। पर पहले की सब बातें याद आ जाने के कारण अश्वत्थामा को बिलकुल नींद नहीं आई। अठारह दिन का युद्ध और उसमें पांडवों ने भीष्म, कर्ण, दुर्योधन, विशेषतः उसके पिता द्रोण का जो कपट से वध किया उसकी याद अश्वत्थामा को आ गई और इस कारण उसे जितना उद्वेग, संताप तथा दुःख हुआ उतनी ही उसे इस बात की चिन्ता भी हुई कि दुर्योधन के सामने अभी जो प्रतिज्ञा की है वह पूर्ण कैसे होगी। ये तीनों योद्धा जिस वटवृक्ष के नीचे रहे थे उसीके आश्रम से रात का बसेरा लेने के लिए हजारों कौवे वहां जमा हुए थे। कुछ देर बाद एक बड़ा उल्लू धीरे से, आहट न मिलने देते हुए गुप्तरीति से, उस वृक्ष पर आ बैठा, और उसने धीरे धीरे उस वृक्ष के सब कौवे मार डाले। अश्वत्थामा ने समझा कि इस उल्लू ने मानों हमें यह गुरूपदेश ही दे दिया कि पांडव और पांचालवीर जिस समय असावधान हों उस समय उनसे किस प्रकार बदला निकाला जाय। कुछ देर बाद उसने कृप और कृतवर्मा को जगाया और उनसे पूछा कि अब आगे हमें क्या करना चाहिए। तब इस

अश्वत्थामा को बिलकुल ही नींद नहीं आई। (पृ० २८४)

विषय पर उनमें इस प्रकार संवाद हुआ। कृपः—अविचारी, अदूरदर्शी और मूर्ख दुर्योधन, राज्यलोभ के कारण, अपने मित्रों की और पुरखों की हितवार्ता न सुन कर, इस युद्ध के लिए प्रवृत्त हुआ। इस काम में हमने भी इस पापी पुरुष को मदद की, इसी कारण हम सब पर आज यह दारुण प्रसंग आ पड़ा है। इस समय हमें जो कुछ करना चाहिए वह हमें आपस में ही निश्चित न करके धृतराष्ट्र, गांधारी और विदुर आदि वृद्ध तथा पूज्य पुरखों की सलाह लेना चाहिए। अश्वत्थामाः—"आज पांचाल और पांडववीर, विजय मिलने के आनन्द में, और अठारह दिन के युद्ध-श्रम से थके हुए, सुख से बेहोश सोते होंगे। उनके शिविर पर गुप्त रीति से छापा डाल कर, सब का संहार करने के लिए, और द्रोणादिकों के वध का बदला निकालने के लिए, यह बहुत अच्छा मौका है। यह अवसर व्यर्थ न खोना चाहिए।" कृपः—"तेरा यह विचार बहुत अच्छा है और तेरे समान वीर पुरुष, हमारी सहायता से, यह काम अवश्य कर सकता है। पर निद्रित और निःशस्त्र शत्रु का इस प्रकार वध करना घोर पाप है। इस लिए इस समय कवच और शस्त्र निकाल कर रख दे। आज की रात यहीं विश्राम करके, सुबह तरोताजा और होशियार होने पर, हम तीनों फिर पांडवों से युद्ध करेंगे।" अश्वत्थामाः—"तुम कहते हो सो सच है; पर स्वयं पांडवों ही ने युद्धधर्म का पालन कब किया है? उन्होंने इन अठारह दिनों में सैकड़ों बार उसका भंग किया है। भीष्म और मेरे पिता द्रोण को, निःशस्त्र दशा ही में, अर्जुन और धृष्टद्युम्न ने मारा है; भीम ने भी युद्ध का नियम तोड़ कर दुर्योधन को गदा के प्रहार से रण में गिराया है। इस प्रकार के पापी और अधर्मी पांचाल पांडवों को निद्रितावस्था में ही,

उनके शिविर पर गुप्त रीति से, छापा डाल कर मैं मार डालूंगा; फिर ऐसा करने से चाहे मुझे कीरीकीड़ों का ही जन्म क्यों न मिले और चाहे मुझे नरक भले प्राप्त हो!" इतना कह कर अश्वत्थामा ने अपना रथ सज्जित किया; वह पांडवों के शिविर की ओर चला। कृप और कृतवर्मा भी, समदुःखी के नाते से, उसकी सहायता करने को, उसी रथ से उसके साथ चले।

शिविर के समीप आने पर उन्होंने आपस में यह ठहराया कि, अश्वत्थामा तो छावनी में घुस कर कतल करे और कृप तथा कृतवर्मा, छावनी के दरवाजे पर खड़े होकर, बाहर भग जाने का प्रयत्न करनेवालों का वध करें। इस सलाह के अनुसार कृप और कृतवर्मा अपनी अपनी जगहों पर खड़े हुए और अश्वत्थामा गुप्त रीति से शिविर में घुसा। शिविर के रक्षक बेहोश सो रहे थे, अतएव उसे रोकनेवाला कोई नहीं था। अश्वत्थामा, यह सोच कर, कि जिसने हमारे पिता का वध किया है उस धृष्टद्युम्न ही को पहले मारना चाहिए, वह पहले पहल, उसीके तम्बू में घुसा और तुरंत ही जोर से एक लात मार कर उसे जगाया। वह पलँग पर से उठने भी नहीं पाया कि इतने ही में अश्वत्थामा ने बाल पकड़ कर उसको खींच लिया और नीचे पृथ्वी पर पटक कर उसके गले और छाती पर पैर रख कर वह खड़ा हो गया। इसके बाद अश्वत्थामा उसके मर्मस्थल में लात-घूसों की मार करने लगा! अश्वत्थामा से झपटते हुए और नखों से उसको खसोटते हुए धृष्टद्युम्न गहरी आवाज से बोला:—गुरुपुत्र! मुझे लात-घूसों से न मार कर शस्त्र से मेरा वध कर; जिससे मुझे सद्गति प्राप्त हो। उस समय अश्वत्थामा ने त्वेष से, सिर्फ इतना ही उत्तर दिया कि अरे कुलांगार,

आचार्यघातिनां लोका न संति कुलपांसन।

गुरुहत्या करनेवाले को सद्गति नहीं मिलती। इतना कह कर उसने सिर्फ लातघूसों ही से उसे मार डाला। धृष्टद्युम्न के तम्बू की यह गड़बड़ सुन कर शिविर के रक्षक और अन्य योद्धा जागृत हुए। पर यह कोई न समझ सका कि, शिविर में घुस कर यह गड़बड़ मचानेवाला कौन और कहां है। सबने समझा कि, कौरवपक्ष के एक राक्षस ने यह अघोर कर्म मचाया होगा। जिसे जो मार्ग मिला उसीसे वह भगने लगा। पर शिबिर के दरवाजों पर आते ही कृप और कृतवर्मा उन सब का संहार करने लगे। इधर छावनी के वीर सावधान होकर सशस्त्र नहीं हो पाये कि अश्वत्थामा ने युधामन्यु, उत्तमौजा, आदि योद्धाओं को, यज्ञ के पशुओं की तरह लातघूसों से मार डाला। शिखंडी आदि धृष्टद्युम्न के भाई और द्रौपदी के पांच पुत्र जल्दी जल्दी से सशस्त्र होकर इधर उधर बाणों की वर्षा करने लगे। पर उन सब को अलग अलग घेर कर अश्वत्थामा ने परशु और तलवार से उन सब का वध कर डाला। इस प्रकार अश्वत्थामादि तीनों वीरों ने सुबह तक शिविर के सब योद्धा मार कर उसे निर्जन कर दिया। श्रीकृष्ण, सात्यकी और पांच पांडव, जो पहले ही शिविर छोड़ कर चले गये थे वही, सिर्फ इस भयंकर कतल से बचे। पांडवपक्षीय सात वीरों को छोड़ कर बाकी सब किस प्रकार अकस्मात छापा मार कर कतल किये गये उसका आनन्ददायक समाचार उन तीनों ने दुर्योधन से जाकर बतलाया। उस समय दुर्योधन के प्राण कंठ तक आ गये थे और उसे मृत्युसमय की वेदनाएं हो रहीं थीं। तथापि उपर्युक्त खबर सुन कर उसे हर्ष हुआ। वह बोला, भीष्म, द्रोण अथवा कर्ण आदि में से कोई भी वीर जो पराक्रम नहीं कर सका वह कृप, और कृतवर्मा की सहायता से, स्वयं तूने कर दिखलाया है; इस कारण मुझे बहुत आनन्द हो रहा है, तुम्हारा

कल्याण हो; अब हमारी तुम्हारी फिर स्वर्ग में भेंट होगी ! इतने शब्द किसी न किसी प्रकार कह कर दुर्योधन ने प्राण त्याग किये !—(सौप्तिकपर्व, अ० १-९) ।

सौभाग्य से, कृतवर्मा की दृष्टि न पड़ने के कारण, सिर्फ धृष्टद्युम्न का एक सारथी इस भयंकर कतल से जीता बच कर भग गया था। उसने दूसरे दिन सुबह, धर्मराज के पास जाकर इस सारी भयंकर घटना का समाचार दिया। उसे सुन कर पांडवों को इतना दुःख हुआ कि वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ देर बाद जब सात्यकी आदि ने उन्हें जागृत किया तब युधिष्ठिर अत्यन्त शोक करने लगे। यह सोच कर कि, अठारह दिन भयंकर और अतुल पराक्रम करके हमारे भाइयों ने जो विजय प्राप्त किया उसका सब श्रेय एक रात में नष्ट हो गया; और सिर्फ असावधानी तथा लापरवाही से यश का और अपयश हो रहा, युधिष्ठिर बहुत विलाप करने लगे। इसके बाद यह भयंकर विचार उनके मन में आया कि द्रौपदी इस दुर्घना का हाल जब सुनेगी तब उसकी क्या दशा होगी। इस कारण उनका शोक दूना बढ़ गया। उन्होंने समझा कि जब द्रौपदी सुनेगी कि हमारा वृद्ध पिता, पराक्रमी भाई और तरुण शूर पाँच पुत्र मारे गये तब उसके ऊपर दुःख का मानो पहाड़ ही टूट पड़ेगा। युद्ध शुरू होने के पहले द्रौपदी आदि राजस्त्रियों को पांडवों ने उपप्लव्य नगर में रख दिया था। धर्मराज ने वहां से उन सब को लाने के लिए नकुल को भेजा। नकुल द्रौपदी आदि को लेकर दूसरे दिन लौट आया। द्रौपदी धर्मराज के पास आते ही दुःखशोक के मारे मूर्छित होकर गिरने लगी। इतने में भीम ने उसे सम्हाल कर पकड़ लिया। कुछ देर बाद सावधान होने पर वह युधिष्ठिर से बोलीः— " मेरे भाई, अपने लड़के और अभिमन्यु को मृत्युमुख में डाल

कर, आप स्वयं जीते रह कर, एक बार इस सारे राज्य के स्वामी बने न! जब से मैंने सुना कि उस पापी अश्वत्थामा ने मेरे पुत्रों और मेरे भाइयों का, निद्रितावस्था में, इस प्रकार, वध किया तब से मेरा हृदय जला जाता है। जब तक उस द्रोणपुत्र से युद्ध करके उसका वध न किया जायगा और जब तक इस प्रकार उसके दुष्कर्मों का बदला न निकाला जायगा तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण न करूंगी।" द्रौपदी के ये घोर वचन सुन कर युधिष्ठिर ने उत्तर दियाः—"द्रौपदी, तू शोक न कर, हमारे पुत्र धर्म से मरे हैं, उन्हें सद्गति ही मिलेगी। अश्वत्थामा आज कल बड़े विकट पहाड़ों में चला गया है। उसका वध किया जाय तो तू उस पर विश्वास कैसे करेगी?" द्रौपदी बोलीः—"उसके सिर पर जन्म ही से एक देदीप्यमान मणि है। उसे निकाल लाओ और अपने मस्तक पर धारण करो। इससे मेरा विश्वास होगा और मेरा दुःख कम होगा। इतना कह कर वह उस भीमसेन की ओर फिर कर बोली जिसका अवतार मानो दुष्टों का संहार करने ही के लिए हुआ थाः—"वारणावत नगर में और विराट नगर में जिस प्रकार तुमने अपने बाहुबल से मेरी रक्षा की उसी प्रकार इस समय भी, उस दुष्ट अश्वत्थामा को मार कर अपने पुत्रों के वध का बदला लो। यह काम करने योग्य दूसरा पराक्रमी पुरुष नहीं है।" द्रौपदी के ये वचन सुन कर भीमसेन ने रथ सजाया; और नकुल को सारथी बना कर वे अश्वत्थामा की तलाश में निकले।

परन्तु श्रीकृष्ण ने कहा कि, "अर्जुन के बाद अश्वत्थामा ही पर द्रोणाचार्य की प्रीति अधिक थी; इस कारण अर्जुन को छोड़ कर अश्वत्थामा और सब से अस्त्रविद्या में श्रेष्ठ है; उससे यदि भीम अकेले ही लड़ेंगे तो और का और ही संकट आ पड़ेगा; अतएव उनकी सहायता के लिए जाना आवश्यक है।"

।विचारणा न कर्त्तव्या न कर्त्तव्या कदाचन १५

इस कारण महाप्रसाद प्राप्त होने पर विना बिचारे ही स्वीकार करना चाहिये शंका विचार वा सन्देह करना उचित नहीं ॥ १५ ॥

साक्षाद्ब्रह्मस्वरूपोयं जगन्नाथो न संशयः ।
प्राप्तमात्रेण खादन्ति हृष्यन्ति च पुनः पुनः१६

श्रीजगदीश भगवान प्रत्यक्ष ब्रह्मस्वरूप हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं इसीलिये महाप्रसाद पातेही भक्षण करके बारं बार आनन्दित होते हैं ॥ १६ ॥

तेपि नीलाचलस्यापि हरेर्दर्शनतः फलम् ।
यस्यापि याचिका लक्ष्मीर्यस्य भोक्ता जगत्पतिः१७

क्योंकि नीलाचल तथा जगन्नाथजी का दर्शन और उनके महाप्रसाद को भक्षण महालक्ष्मीजी तथा जगत्पति भगवान् करते हैं ॥ १७ ॥

तदन्नाशनता विप्रा विष्णुलोके महीयते ।
इन्द्रद्युम्नोपि भूपालो नारदेन समन्ततः॥१८॥

छोड़ा; जिससे हमारा महत् संकट टल जाय और हमारे प्राण बच जायँ। अब यह अस्त्र मैं लौटा नहीं सकता। हां, मैं पांडवों पर से इसको निकाल लूंगा और उनके वंश की स्त्रियों के पेट में जो गर्भ होंगे उन पर मैं इसे छोड़ता हूं।" व्यास और श्रीकृष्ण ने यह बात मान ली। श्रीकृष्ण बोलेः--" आज तक तूने अनेक पाप किये हैं। तिस पर यह बालहत्या का पाप करके तो तूने पापों की पराकाष्ठा कर दी है। इस पाप का प्रायश्चित्त तुझे यह मिलेगा कि, तू सब व्याधियों से जर्जर होकर पीव और रक्त से भर जायगा और तीन हजार वर्ष तक जंगल-पहाड़ों में, मनुष्यों से दूर, भटकता फिरेगा।" व्यास ने भी कहा कि तूने ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियधर्माचरण किया और अन्त में ऐसे दारुण कर्म किये हैं, अतएव इसका प्रायश्चित्त सचमुच तुझे वैसा ही मिलेगा जैसा श्रीकृष्ण ने कहा है। अपने मस्तक का मणि चुपके धर्मराज को देकर अब तू वन को चला जा। अश्वत्थामा ने विवश होकर मणि निकाल दिया और वन को चला गया।

वह मणि लेकर पांडव तुरन्त ही शिविर को लौट आये। वहां द्रौपदी अन्न-जल छोड़े हुए बैठी ही थी। धर्मराज की आज्ञा पाकर भीमसेन उसके पास जाकर बोलेः—" द्रौपदी, यह अपना मणि ले। जिसने तेरे पुत्रों का वध किया उसका बदला मैंने ले लिया। अब शोक करना छोड़ दे। धर्मराज ने जब शिष्टाई करने के लिए श्रीकृष्ण को भेजने का विचार किया उस समय जो तूने ये मर्मभेदक वचन कहे कि, " तुम कौरवों से सलाह करते हो। तब तो यही कहना चाहिए कि मेरे पति नहीं, भाई नहीं, पुत्र नहीं, और श्रीकृष्ण, तू भी मेरा कोई नहीं " उनको अब याद कर ले। प्रतिज्ञा के अनुसार दुर्योधन का मैंने वध किया; क्योंकि वह हमें राज्य न देता था; दुःशासन का हृदय फाड़ कर उसका रक्त पान किया; अश्वत्थामा

को भी जीत कर और निःशस्त्र करके उससे मणि छीन लायें। हां, अवश्य ही, हमने गुरुपुत्र और ब्राह्मण जान कर उसे जीता छोड़ दिया है। द्रौपदी, वह जीवित भले ही हो; पर उसका सारा वैभव हमने छीन लिया है और अब उसका शरीर मात्र बाकी बचा।" इतने से द्रौपदी का समाधान हो गया। उसके कहने से और अपने गुरु का प्रसाद जान कर धर्मराज ने वह मणि अपने मस्तक पर धारण कर लिया—(सौप्तिकपर्व, अ० १०–१८)।

श्रीकृष्ण का बतलाया हुआ युद्ध का हाल, धृतराष्ट्र, गांधारी, कुंती और कौरवस्त्रियों ने जब फिर विस्तारपूर्वक संजय के मुख से सुना तब उन्हें असीम दुःख हुआ। वृद्ध धृतराष्ट्र ने जब सुना कि, हमारे सौ पुत्र भीमसेन के गदा-प्रहारों से, एक के बाद एक, मारे गये तब दुःख और संताप के कारण वह कुछ देर के लिए मूर्छित हो गया। विदुर ने यथाशक्ति उसे समझाया। उन्होंने कहा, कौरव युद्ध करते करते खरे क्षत्रिय की तरह रण में पतन हुए हैं और उन्होंने स्वर्ग प्राप्त किया है; उनके लिए शोक करना ठीक नहीं है। कुरुक्षेत्र के भयंकर संहार की खबर जब अन्तःपुर में पहुँची तब कौरवस्त्रियों के हृदयभेदक आक्रोश से अन्तःपुर भर गया। धृतराष्ट्र और विदुर सब कौरवस्त्रियों तथा कुंती, गांधारी आदि को शिविकाओं में बैठा कर, उनके सहित, कुरुक्षेत्र की रणभूमि को चले। राजकुल की ये अलंकारहीन स्त्रियां, बाल खुले छोड़ कर और एक वस्त्र पहन कर जब पालकियों से, हस्तिनापुर के मार्गों पर, इस प्रकार, जाने लगीं तब नगर-निवासी स्त्रीपुरुषों को पराकाष्ठा का दुःख हुआ; और चारो ओर रोने का कोलाहल मच गया। हस्तिनापुर से धृतराष्ट्र के चलने की खबर पाकर धर्मराज भी अपने भाई, द्रौपदी और पांचालस्त्रियों के सहित उनकी अगवानी के लिए गये

धर्मराज ने वह मणि अपने मस्तक पर धारण कर लिया।
(पृ० २९२)
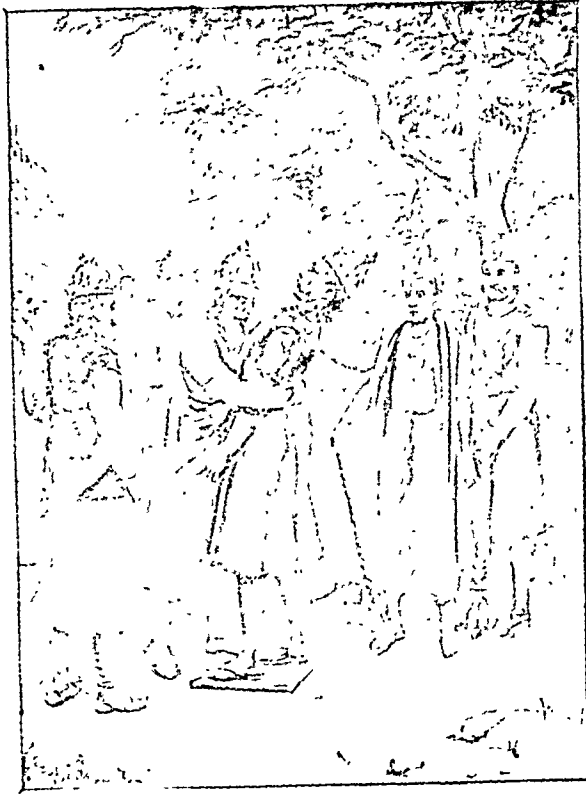
धृतराष्ट्र और भीम-प्रतिमा।

(पृ० २६२)

स्वगृहात्प्रव्रजेन्मौनी जपन्नष्टाक्षरंमनुं ॥ ५ ॥

और हाथमें अक्षत और द्रव्य सहित जल ले (अहं सेतु यात्रां करिष्ये) मैं सेतुयात्रा करूंगा ऐसा संकल्प कर मौन हो अष्टाक्षर मन्त्र (श्रीरामेश्वरायनमः अथवा पंचाक्षर मंत्र (नमः शिवाय) को जपता हुआ घर से निकले ॥ ५ ॥

पंचाक्षरंनाममंत्रं जपेन्नियतमानसः
एकवारंहविष्याशीजितक्रोधोजितेंद्रियः ॥ ६ ॥

एकाग्र हो एकबार हविष्य अन्न (होमनेयोग्य) भोजन करे, काम क्रोध आदिको और इन्द्रियों को जीत करके॥६॥

पादुकाछत्ररहितस्तांबूलपरिवर्जितः
तैलाभ्यंगविहीनश्चस्त्रीसंगादिविवर्जितः ॥ ७ ॥

जूता न पहिरे, छाता न लगावे, पान न खाय, तेल न लगावे और स्त्रीसंग न करे ॥ ७ ॥

शौचाद्याचारसंयुक्तःसंध्योपास्तिपरायणः
गायत्र्युपास्तिकुर्वाणस्त्रिसंध्यंरामचिंतकः ॥ ८ ॥

सदा पवित्रतादि आचार, संध्यावन्दन, गायत्री की

युद्ध करने दिया। यह तेरा ही अपराध है, और इसी कारण अपने कुल का तथा सब क्षत्रियों का नाश हुआ है। ऐसी दशा में भीम के मारने की इच्छा तुझे क्यों करनी चाहिए? भीम के मारने से क्या तेरे कौरवपुत्र जी थोड़े ही सकते हैं!" श्रीकृष्ण के ये वचन सुन कर धृतराष्ट्र को बहुत पश्चात्ताप हुआ। और पुत्रप्रेम के कारण उसके हाथ से जो पातक होनेवाला था उसे श्रीकृष्ण ने बचा दिया; इस कारण उसने श्रीकृष्ण को बहुत धन्यवाद किया। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने भी उसके चरणों में सिर नवाया। धृतराष्ट्र ने उन्हें आंसुओं से नहला कर पितृवात्सल्यपूर्वक आलिंगन दिया— (स्त्रीपर्व, अ० १–१३)।

इसके बाद पांडव, श्रीकृष्ण और द्रौपदी के साथ, गांधारी से मिलने गये। यद्यपि गांधारी यह जानती थी कि, कुन्ती के समान ही हमें और धृतराष्ट्र को पांडवों का पालन तथा संरक्षण करना उचित है; दुर्योधन, शकुनी, कर्ण और दुःशासन की चांडालचौकड़ी के कारण ही युद्ध होकर यह संहार हुआ, पांडवों की ओर उसका कुछ भी दोष नहीं है। परन्तु उसे दुःख और क्रोध इन बातों का था कि, भीम ने दुःशासन का हृदय फाड़ कर अनार्य की तरह उसका रक्त पान किया, दुर्योधन की जंघा पर अधर्म से गदाप्रहार करके उसे मारा; और १०० कौरवों में से एक भी बाकी नहीं रखा; एक भी पुत्र नहीं रहने दिया जो बुढ़ापे में उन दोनों का आधार होता। ये सब बातें गांधारी ने कह सुनाईं और भीम ने उन्हें कबूल भी किया। पर भरी सभा में दुःशासन-दुर्योधन ने द्रौपदी की जो विटम्बना की उसकी भीम ने गांधारी को याद दिलाई; और बिनती की कि, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए और उपर्युक्त अमानुषी कर्म का बदला लेने के लिए हमने यह काम किया, उसके लिए क्षमा दो। गांधारी ने जब पूछा कि, धर्म-

राज कहाँ है तब धर्मराज ने उसके पैरों पर सिर रखा और कहा:--" मित्रहत्या, भ्रातृहत्या करनेवाला और सब क्षत्रियों के नाश का कारणीभूत यह निष्ठुर और निर्दयी युधिष्ठिर तेरे सामने खड़ा है; उसे शाप देकर भस्म कर। मुझ पापी को अब धन, राज्य अथवा प्राण लेकर क्या करना है? धर्मराज का यह कथन सुन कर गांधारी कुछ भी नहीं बोली। उसके पैर पड़ने के लिए वे जब नीचे लचे तब गांधारी को युधिष्ठिर के पैरों के नख मात्र देख पड़े इस लिए वे नख गांधारी की दृष्टि के तेज से जल कर काले हो गये। कुछ देर बाद गांधारी का क्रोध शांत हो गया और उसने सब पांडवों को पास बुला कर माता की तरह उन्हें पुचकारा। इसके बाद द्रौपदी और पांडव कुंती के पास गये। तेरह वर्ष में माता की भेट होने कारण सब को रोमांच हो आया और अत्यन्त दुःख हुआ। द्रौपदी को फिर अपने पुत्रों की याद आई और वह रोने लगी। कुंती ने उसको और पांडवों को समझाया तथा फिर उनको साथ लेकर वह गांधारी के पास आई। सब की सब से भेट हुई और एक दूसरे को आपस में एक दूसरे ने किसी न किसी तरह समझाया—(स्त्रीपर्व, अ० १४–१५)।

इसके बाद वे सब लोग कुरुक्षेत्र के मैदान में आये। रण-भूमि पर फैली हुई और स्यार-गीधों के झुंडों से वेष्टित अपने पुत्रों की, पिताओं की, भाइयों की और पतियों की लाशें देख कर वे स्त्रियां अत्यन्त हृदयभेदक विलाप करने लगीं। अपने १०० लड़कों–विशेषतः दुर्योधन–की लाशें देख कर गांधारी के दुःख का पारावार नहीं रहा। इसके बाद विदुर, संजय, युयुत्सु, धौम्य, सुधर्मा के द्वारा धर्मराज ने वीरों के दहन की सब तैयारी करवाई। कुछ देर बाद सब कुरुक्षेत्र में चन्दन, अगर और अन्य लकड़ियां, रथ, शस्त्र और बाणों की चिताएं तैयार होकर जलने लगीं। दहन-समय के मंत्र, स्त्रीपुरुषों के

विलाप, और स्यार-गीधों के शब्दों से कुरुक्षेत्र भर गया । वहां की विधि समाप्त होने पर सब लोग भागीरथी के किनारे लौट आये । वहां सब ने मृतों का तर्पण किया । कुन्ती ने उस समय धर्मराज और अन्य पांडवों को बतलाया कि, कर्ण सूत-पुत्र नहीं था; किन्तु वास्तव में पांडवों का बड़ा भाई ही था । यह सुन कर उन्हें-विशेषतः धर्मराज को-पराकाष्ठा का दुःख हुआ । धर्मराज ने समझा कि कुंती ने यदि यह बात हमें पहले ही से बतला दी होती कि, कर्ण हमारा बड़ा भाई है, तो सभा की विटम्बना, वनवास के दुःख, युद्ध और उसका संहार आदि सब बातें टल जातीं । इस लिए युधिष्ठिर को बहुत दुःख हुआ । उन्होंने कर्ण को अपना बड़ा भाई समझ कर औरों के साथ उसका भी और्ध्वदेहिक कर्म किया—(स्त्रीपर्व, अ० १६-२७) ।

ग्यारहवाँ प्रकरण ।
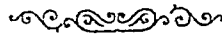
भीष्म का अन्तकाल का उपदेश ।

घोर युद्ध के कोलाहल में और शस्त्रों की खनखनाहट में यद्यपि धर्मराज के मन को दुःख अथवा पश्चात्ताप का स्पर्श नहीं हुआ था, तथापि युद्ध समाप्त होने के बाद जब उन्होंने रणभूमि में इधर उधर फैली हुई लाशें देखीं, स्त्रियों का हृदयभेदक शोक और विलाप सुना और उत्तरक्रिया के लिए गंगातीर पर जो जनसमुदाय जमा हुआ था उसे जब धर्मराज ने देखा तब उनके धर्मशील, कोमल और दयालु अन्तःकरण में

दुःख और कुछ पश्चात्ताप होने लगा। उसमें भी जब युधिष्ठिर ने देखा कि, कर्ण के समान शूर पराक्रमी और दानशील बड़ा भाई हमारे हाथ से मारा गया तब उन्हें बहुत ही खेद हुआ। गंगा के किनारे उत्तरक्रिया करने के बाद कुछ दिन युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, आदि सब लोग वहीं रहे। उनसे मिलने के लिए नारद और अन्य ऋषि वहां आये। युधिष्ठिर ने उनसे अपने दुःख का कारण बतलाया और यह पूछा कि, जिस समय खूब घोर युद्ध हो रहा था उस समय कर्ण के रथ का चक्र पृथ्वी ने क्यों निगल लिया? तब नारद ने कर्ण का पूर्ववृत्तान्त इस प्रकार बतलायाः—"ब्रह्मास्त्र छोड़ कर द्रोणाचार्य ने कर्ण को अन्य सब अस्त्र सिखलाये। कर्ण न तो ब्राह्मण ही था और न तपोनिष्ठ क्षत्रिय ही था; इस कारण द्रोणगुरु ने उसे वह अस्त्र नहीं सिखाया था। तब कर्ण परशुराम के पास गया। और झूठ-मूठ यह कह कर कि, "मैं भृगुगोत्री ब्राह्मण हूं," वह उनके पास रहने लगा। वहां एक ब्राह्मण की होमधेनु कर्ण के हाथ से मारी गई। इस लिए उसने कर्ण को यह शाप दिया कि, "अरे युद्ध में पृथ्वी तेरे रथ का चक्र निगल लेगी और तेरा कट्टर शत्रु तेरा सिर काट डालेगा।" कर्ण को ब्राह्मण समझ कर परशुराम ने उसे ब्रह्मास्त्र छोड़ने और लौटाने के सब मंत्र सिखला दिये। बाद को एक दिन की बात है कि, परशुरामजी अपना सिर कर्ण की जांघ पर रखे हुए सो रहे थे। इतने ही में एक कीड़ा आकर उसकी जंघा कुतरने लगा। इस डर से, कि हिलने-डुलने से गुरु की निद्रा टूट जायगी, कर्ण ने वह वेदना चुपके से सहन कर ली; पर उसकी जंघा से निकला हुआ रक्त जब परशुराम के शरीर में लगा तब वे जग पड़े। रक्त निकलने का कारण कर्ण से मालूम होने पर जामदग्न्य ने समझा कि, इतना दुःख सहन करने का धैर्य ब्राह्मण में नहीं हो सकता; अतएव यह कोई ब्राह्मण नहीं जान पड़ता। सच्चा

प्रार्थनामंत्रः ।

प्राच्यांदिशिचसुग्रीवंदक्षिणस्यांनलंस्मरेत् ।२४॥
प्रतीच्यांमैंदनामानमुदीच्यांद्विविदंतथा ।
रामंचलक्ष्मणंचैवसीतामपियशस्विनीं ॥ २५ ॥
अंगदंवायुतनयं स्मरेन्मध्येविभीषणं ।
पृथिव्यांयानितीर्थानिप्राविशंस्त्वांमहोदधे २६
स्नानस्यमेफलंदेहिसर्वस्मात्त्राहिमांभसः ।
हिरण्यशृंगमित्याभ्यांनाभ्यांनारायणंस्मरेत् २७

प्रार्थना के मंत्र से प्रार्थना करे हिरण्यशृङ्गं वरुणं प्रपद्ये तीर्थम्मे देहि याचितः यन्मयाभुक्तमसाधूनां पापेभ्यश्च प्रतिग्रहः इन मन्त्रों को पढ़ नाभि स्थल में श्रीनारायण का ध्यान करे ॥२४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

ध्यायन्नारायणंदेवंस्नानादिषुचकर्मसु ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोतिजायतेनेहवैपुनः ॥ २८ ॥

स्नानादि कर्मों में नारायण का ध्यान, पुनर्जन्म रहित ब्रह्मलोक का देनेवाला है ॥ २८ ॥

सर्वेषामपिपापानांप्रायश्चित्तंभवेत्ततः ।

युधिष्ठिर को अनेक प्रकार से समझाया तब वे सिंहासन पर बैठने के लिए राजी हुए।

इसके बाद धर्मराज अपने रथ में बैठे, भीमसेन उनके सारथी हुए। अर्जुन ने उन पर श्वेत छत्र धारण किया; और नकुल-सहदेव ने चवँरें तथा मोर्छलें, उन पर ढारने के लिए, हाथ में लीं! इस ठाट-बाट से धर्मराज ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया। लोगों ने उनके सन्मानार्थ नगर के मार्ग, चौक और मन्दिर, तोरण, वन्दनवार और पताकाओं से शृंगारित किये थे। इस प्रकार नगर के सारे स्त्री-पुरुषों ने प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया। १३ वर्ष वनवास करके लौटे हुए इन शूर, पराक्रमी, तेजस्वी और धर्मात्मा राजपुत्रों को देख कर प्रजा-जनों को बहुत ही आनन्द हुआ। हां, सिर्फ दुर्योधन के एक राक्षस मित्र ने, चार्वाक ब्राह्मण के रूप में आकर, अवश्य ही इस आनन्दोत्सव में विघ्न डालने का प्रयत्न किया। वह बोला, "इन सब ब्राह्मणों का मत है कि राज्य के लिए अपने कुल, जाति और गुरु का वध करनेवाला तू राजा हुए है, तुझे धिक्कार है।" यह सुन कर धर्मराज ने जब सब ब्राह्मणों का मत लिया तब सब ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उन तपोनिष्ठ ब्राह्मणों ने क्रोध करके सिर्फ हुंकार से ही उस नीच राक्षस का वध किया! इसके बाद श्रीकृष्ण ने योग्य समय में अच्छे मुहूर्त पर धर्मराज को सिंहासन पर बैठाया और स्वयं अपने हाथ से पांचजन्य के पवित्र उदक से उन्हें राज्याभिषेक किया! राज्यप्रबन्ध के लिए भिन्न भिन्न मंत्री और अधिकारी नियत करके युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र की ही अनुमति से राज्य करने का वचन दिया। जो वीर युद्ध में पतन हुए थे उनके स्मरणार्थ उन्होंने धर्मशाला, पौसरे, अन्नछत्र, तालाब, कुएँ, आदि बनवाये और उनकी अनाथ स्त्रियों का तथा अबोध बालकों का गौरव-पूर्वक पालनपोषण किया। इस प्रकार यह राज्याभिषेक-उत्सव

समाप्त होने पर सब राजा और क्षत्रिय अपने अपने देश को चले गये—(शान्तिपर्व, अ० १-४६)।

इधर अन्त के आठ दिनों की सब लड़ाइयां हुईं और धर्मराज का राज्याभिषेक भी हुआ और उधर वृद्ध वीर भीष्म शरपंजर में पड़े हुए उत्तरायण की बाट देख रहे थे। राज्याभिषेक हो जाने पर, कुछ दिनों के बाद, युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से मिलने गये। उस समय श्रीकृष्ण ध्यानस्थ बैठे थे; इस कारण उनकी ओर से युधिष्ठिर को कोई उत्तर नहीं मिला। परन्तु जब धर्मराज को यह चिन्ता हुई कि, जो त्रिलोकी का प्रभु है वह किसका ध्यान कर रहा है, तब श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि, भीष्म इस समय मेरा ध्यान कर रहे हैं; अतएव मेरा अन्तःकरण उनमें लगा है! इसके बाद पांडव और श्रीकृष्ण रथ पर बैठ कर रणभूमि में, जहां भीष्म पड़े हुए थे, गये। इधर भीष्म जब से अर्जुन के बाणों से घायल होकर रथ से नीचे गिरे थे तब से, उत्तरायण होने तक, प्राण धारण करने का निश्चय करके, उन्होंने अपना मन, वाणी और कर्म श्रीकृष्ण में लगा दिया था। श्रीकृष्ण और पांडव भीष्म के पास आकर नम्रता से बैठ गये। श्रीकृष्ण ने उनकी प्रकृति के विषय में प्रश्न किये। इसके बाद उन्होंने भीष्म से प्रार्थना की कि, इतने वर्ष में आप को जो राजधर्म, क्षत्रियधर्म, आश्रमधर्म और नीति आदि का अनुभव मिला है उसका युधिष्ठिर को बोध करके इनका दुःख दूर करो। इस पर भीष्म ने दीनवाणी से श्रीकृष्ण को उत्तर दियाः—"मेरा शरीर बाणों के घावों से व्याकुल हो गया है। मन और बुद्धि चंचल और मूढ़ हो गयी है। मुझे बारम्बार मूर्च्छा आती है। केवल तेरी ही कृपा से मैं अब तक जीवित हूं। मुझसे बोला नहीं जाता। अतएव इसके लिए क्षमा चाहता हूं।" उस समय भक्तप्रेम से श्रीकृष्ण का हृदय भर आया और उन्होंने यह वर दिया, "तुम्हारी मूर्च्छा, वेदना,

क्लेश और मोह आदि सब नष्ट हो जायँगे।" इतने में दिन डूब गया और भीष्म की आज्ञा पाकर पांडव आदि सब लोग अपने अपने महलों को लौट आये।

दूसरे दिन पांडव, श्रीकृष्ण, युद्ध से बचे हुए थोड़े बहुत राजा और क्षत्रिय तथा ऋषि भीष्म के पास गये। श्रीकृष्ण ने फिर सूचित किया कि, अभी उत्तरायण शुरू होने के लिए कुछ दिन का अवकाश है; अतएव इतने समय में भीष्म अपने ज्ञान विद्या और अनुभव के द्वारा युधिष्ठिर को उपदेश करें। भीष्म ने कहा कि योगेश्वर श्रीकृष्ण के प्रसाद से हमारे शरीर की सारी वेदनाएं बिलकुल नष्ट हो गईं और हमारे अन्तःकरण में सावधानी तथा बुद्धि में नूतनता आ गई है। इसके बाद उन्होंने पूछा कि. राजधर्म और राजनीति का उपदेश स्वयं श्रीकृष्ण ही ने युधिष्ठिर को क्यों नहीं किया? इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "मैं स्वयं इस लिए उपदेश न करके आप से कराता हूं कि, जिससे भक्त की कीर्ति और यश बढ़े!" भीष्म ने देखा कि धैर्य, क्षमा, ब्रह्मचर्य, शांति, सत्य, बुद्धिमत्ता, आदि गुण युधिष्ठिर में ही सब से अधिक हैं; अतएव राजधर्म के विषय में प्रश्न करने के लिए यही पुरुष योग्य है। इस लिए उन्होंने युधिष्ठिर को अपनी शंकाएं पूछने के लिए आज्ञा दी। इसके अनुसार राजनीति और अन्य अनेक विषयों के सम्बन्ध में युधिष्ठिर को जो संशय थे उनके विषय में वे नित्य प्रश्न करने लगे और भीष्म उनका समाधान करने लगे। इस प्रकार मरण, काल तक भीष्म के मुख से जो बराबर बोधामृत बहता रहा वह श्रीव्यास ने महाभारत के 'शांति' और 'अनुशासन' पर्वों में भर दिया है—(शांतिपर्व, अ० ४७-५५)।

पहले पहल धर्मराज ने यह प्रश्न किया कि, राजधर्म कौन सा है और राजाओं के कर्तव्य क्या हैं? इस पर भीष्म ने जो उत्तर दिया और आगे भी बहुत स्थलों में राजधर्म और क्षात्रधर्म

के विषय में जो विचार महाभारत में पाये जाते हैं उनसे यह बात सब के ध्यान में आ जायगी कि पूर्वकाल के एतद्देशीय क्षत्रियों, राजाओं के विषय में आर्यों के कैसे उदात्त विचार थे। भीष्म बोलेः—प्रथमतः राजा धर्मशील होना चाहिए और प्रजा के हित के लिए देवता तथा ब्राह्मणों का उसे पूजन करना चाहिए। उसे सदा उद्योगी और उत्साही रहना चाहिए। जब किसी कार्य में निष्फलता प्राप्त हो तब उसे सिद्ध करने के लिए राजा को दूने साहस से फिर प्रयत्न करना चाहिए। राजा को चाहिए कि वह सत्य का आश्रय कभी न छोड़े। प्रजा पर हुकूमत करते हुए, वसन्तऋतु के सूर्य की तरह, उसे आवश्यकता से अधिक सौम्यता या कठोरता भी न दिखानी चाहिए।

> यथा हि गर्भिणी हित्वा स्वप्रियं मनसोऽनुगं।
> गर्भस्य हितमादत्ते तथा राज्ञाप्यसंशयं॥
> वर्तितव्यं कुरुश्रेष्ठ सदा धर्मानुवर्तिना।
> स्वप्रियं तु परित्यज्य यद्यल्लोकहितं भवेत्॥

जिस प्रकार गर्भिणी स्त्री अपने मन के अनुसार प्रिय कार्य न करते हुए उसीका स्वीकार करती है जो गर्भ को हितकारक होता है, उसी प्रकार राजा को भी चाहिए कि, वह राजधर्म के अनुसार चल कर, अपना प्रिय कार्य न करते हुए, वही करे जो प्रजा के लिए हितकारक हो। प्रजाहित, सत्यपालन, व्यवहार-सरलता और आत्मसंयमन के गुण अपने में लाना राजाओं का सनातनधर्म है। जिसका मन सदा सन्देहयुक्त रहता है, जिसका किसी पर भी विश्वास नहीं रहता, जो प्रजा का सर्वस्व लूटना चाहता है, और जिसका बर्ताव सरल नहीं होता, ऐसे लोभी राजा से, उसके रिश्तेदार और इष्ट-

मित्र भी प्रतिकूल हो जाते हैं। जिस प्रकार बाप के घर में लड़के निर्भय वर्तते हैं वैसे ही प्रजा जिसके राज्य में सुख से रहती है, जिसके नागरिक लोग न्याय-अन्याय जाननेवाले होते हैं और अपना वैभव निर्भयता से दिखाते हैं, (शां० प० अ० ५५, श्लोक ३३-३७) लोग कर्तव्य करने में दक्ष और उसके लिए प्राण देने को तत्पर, झगड़े-बखेड़े करने से पराङ्मुख, राजनिष्ठ और उदार होते हैं वही राजा " भूपति " की पदवी के लिए योग्य है। सब प्रकार से प्रजा की रक्षा करना राजा का प्रथम कर्तव्य है। जो राजा अपना यह कर्तव्य न करता हो उसका, शिक्षण न देनेवाले गुरु का और अपमान करनेवाली पत्नी का–इन तीनों का–प्रजा इस प्रकार तत्काल त्याग कर दे जैसे समुद्र में फूटी हुई नाव त्याग दी जाती है—(शां० प० अ० ५७, श्लोक ४४–५५)।

परन्तु, युधिष्ठिर ने प्रश्न किया कि, जब सब मनुष्यों के हाथ, पैर, आदि अंग बराबर ही होते हैं और सुख-दुःख, जन्म-जरा-मरण, सब के लिए बराबर ही हैं; तथा सब मानवजाति की योग्यता भी बराबर ही है तब फिर एक मनुष्य अन्य सब पर सत्ता क्यों चलावे ? और यह चाल क्यों चली है ? इस पर भीष्म ने यह इतिहास बतलाया कि, पहले राजा आदि कुछ न होते हुए प्रजाजन ही आपस में न्यायपूर्वक एक दूसरे की कैसी रक्षा कर लेते थे; परन्तु फिर मत्सर, द्वेष और लोभ पैदा हो जाने के कारण उनकी रक्षा करने के लिए एक राजा की कैसे आवश्यकता पड़ी। इसके बाद देवों ने पृथु, मनु, आदि राजा पृथ्वी पर कैसे भेज दिये। चारों वर्णों के कर्तव्य भली भांति से होना सब प्रकार से राजा पर अवलम्बित है।